ISSN : 2394 6989

अक्षय खेती

2023

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत–खलिहान को समर्पित पत्रिका

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

ISSN : 2394 6989

2023 दशम् वर्ष

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत–खलिहान को समर्पित पत्रिका

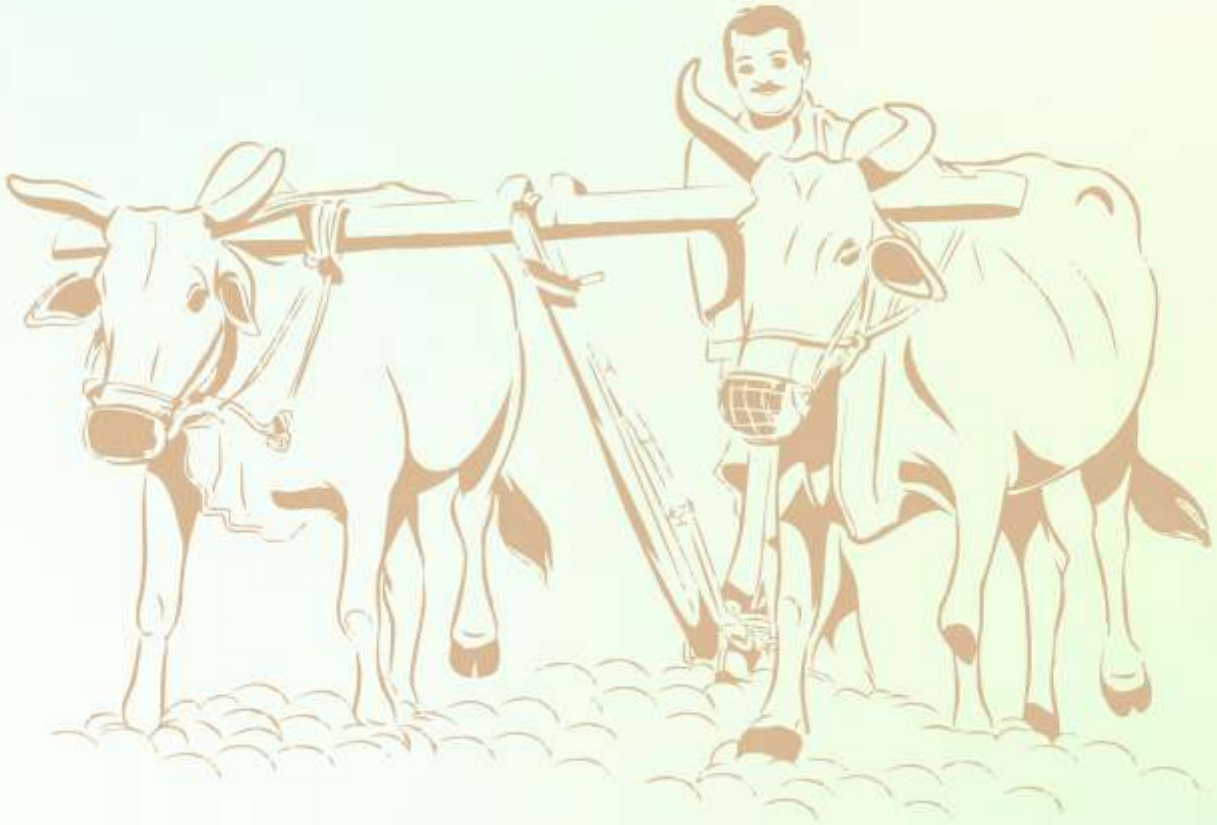

भाकृअनुप ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर

पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना – 800 014 (बिहार)

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत–खलिहान को समर्पित पत्रिका

–:: प्रकाशक ::–

निदेशक

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

–:: संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति एवं संपादक मंडल ::–

डॉ. अनुप दास, निदेशक	अध्यक्ष
डॉ. आशुतोष उपाध्याय, प्रभागाध्यक्ष	उपाध्यक्ष एवं संयोजक
डॉ. बाल कृष्ण झा, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. शंकर दयाल, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. पंकज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. रजनी कुमारी, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. तारकेश्वर कुमार, वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. कुमारी शुभा, वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. मनीषा टम्टा, वैज्ञानिक	सदस्य
श्रीमती प्रभा कुमारी, सहायक प्रशासनिक अधिकारी	सदस्य
श्री उमेश कुमार मिश्र, हिंदी अनुवादक	सदस्य-सचिव

नोटः अक्षय खेती में प्रकाशित लेखों में विचार, रेखांकन, छाया चित्र एवं अन्य सामग्री लेखकगण की है। इस संबंध में संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।

मुद्रकः रिद्धिमा इंटरप्राईजेज, राजेन्द्र नगर पटना–800 016
मोबाईल नं.:– 7992457574

डॉ. हिमांशु पाठक
सचिव, डेयर एवं महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग
एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001
दूरभाष : 23382629, 23386711 फैक्स: 91-11123384773
ई–मेल : dg.icar@nic.in

संदेश

विगत दो दशकों से भी अधिक समय से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना देश के पूर्वी क्षेत्र के लिए कृषि से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में लगातार अपना बहुमूल्य योगदान दे रहा है । फसल उत्पादन, भूमि एवं जल संसाधनों के प्रबंधन, खाद्यान्न, बागवानी, डेयरी प्रबंधन, बकरी पालन, जलीय फसलों, मात्स्यिकी, पशुधन, कुक्कुट पालन, कृषि प्रसंस्करण की उन्नत तकनीकों के माध्यम से यह संस्थान पूर्वी क्षेत्र के लघु एवं सीमांत किसानों की आय में वृद्धि हेतु निरंतर प्रयासरत है।

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दिशा में संस्थान जलवायु अनुकूल कृषि, समेकित कृषि प्रणाली, फसल विविधीकरण, पोषण वाटिका, ड्रोन तकनीक, किसान उत्पादक संगठन, पशुधन एवं मात्स्यिकी प्रबंधन तथा सौर ऊर्जा जैसे कई अन्य विषयों पर भी सराहनीय शोध कार्य कर रहा है।

इसके अतिरिक्त वर्ष 2023 से आई ए आर आई – पटना हब के रूप में इस संस्थान ने शिक्षण के क्षेत्र में एक नया कदम रखा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगामी वर्षों में कृषि शिक्षण में भी यह संस्थान नई ऊँचाइयों को छूएगा एवं अपनी एक अमिट छाप छोड़ेगा।

मुझे यह जानकर अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है कि यह संस्थान अपनी गृह पत्रिका **'अक्षय खेती'** वर्ष 2023 (दशम् वर्ष) का प्रकाशन कर रहा है। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ तथा संपादक मंडल के सभी सदस्यों एवं लेखकगणों को हार्दिक बधाइयाँ एवं शुभकामनाएं देता हूँ।

(हिमांशु पाठक)

भाकृअनुप
ICAR
डॉ. सुरेश कुमार चौधरी
उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कक्ष क्र. 101, कृषि अनुसंधान भवन– II, नई दिल्ली–110 012

संदेश

पूर्वी राज्यों में कृषि को और भी सुदृढ़ बनाने के लिए देश की नवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम दौर में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना की स्थापना वर्ष 2001 में हुई थी। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रभाग के अंतर्गत यह संस्थान अपने शोध कार्यों के माध्यम से अपनी सेवाएं पूर्वी क्षेत्र के किसानों एवं अन्य हितधारकों, जो प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण क्षेत्र में होते हुए भी संसाधन विहीन हैं, को प्रदान कर रहा है।

लगभग 23 वर्षों से यह संस्थान पूर्वी क्षेत्र में मृदा परीक्षण, पोषक तत्वों का समेकित प्रबंधन, मृदा उर्वरता में वृद्धि, विभिन्न सिंचाई पद्धतियों और जल के बहु–आयामी उपयोग जैसे कई अन्य उत्कृष्ट शोध, प्रशिक्षण एवं प्रसार कार्यों में निरंतर कार्यरत है।

देश के पूर्वी क्षेत्र के किसानों में जागरूकता बढ़ाने एवं उन तक नई–नई तकनीकियों को पहुंचाने में संस्थान द्वारा प्रकाशित 'अक्षय खेती' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान है। मैं सभी लेखकों और संपादक मंडल के सदस्यों को धन्यवाद देता हूँ, जिनके माध्यम से आम जनमानस तक हिंदी में वैज्ञानिक लेखन पहुँच रहा है।

पत्रिका के 10वें वर्ष के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाइयाँ एवं शुभकामनाएं।

(सुरेश कुमार चौधरी)

डॉ. अनुप दास
निदेशक–सह–अध्यक्ष
संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर
पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना–800 014
दूरभाष : 0612–2223962 फैक्स : 0612–2223956
ई–मेल : director.icar-rcer@icar.gov.in

संदेश

कृषि हमारे देश के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी का काम करती है। देश की ज्यादातर जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए इस पर निर्भर है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना ने कृषि से संबंधित विभिन्न आयामों, जैसे फसल उत्पादन, भूमि एवं जल प्रबंधन, मत्स्य पालन, बागवानी, पशुधन प्रबंधन, बकरी एवं मुर्गीपालन आदि विषयों पर विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों के माध्यम से कृषि को मजबूत करने के लिए प्रौद्योगिकियों को शामिल करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे किसान एवं अन्य हितधारक लाभान्वित हो रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर कृषि क्षेत्र में नई–नई तकनीकों एवं आधुनिक उपकरणों के प्रयोग में काफी तेजी देखने को मिली है। इन नवाचारों एवं प्रौद्योगिकियों के आम किसानों में बढ़ते प्रचलन से कृषि उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे न सिर्फ किसानों की आय बढ़ी है बल्कि देश में साल दर साल रिकार्ड कृषि उत्पादन भी हो रहा है।

संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका **अक्षय खेती – 2023** (दशम् वर्ष) के इस अंक में कृषि के विभिन्न पहलुओं पर सरल भाषा में आलेख प्रकाशित किए गए हैं। सभी लेखकगण और संपादक मंडल के सदस्यगण निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

अनुप दास

(अनुप दास)

डॉ. आशुतोष उपाध्याय
उपाध्यक्ष
संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

संदेश

कृषि क्षेत्र में इतनी ताकत है कि देश की अर्थव्यवस्था पर कभी भी कोई संकट आए, तो यह क्षेत्र देश को उस संकट से उबार सकता है। वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है, जैसे जलवायु परिवर्तन, उत्पादन में गिरावट, मृदा स्वास्थ्य में कमी, बढ़ती आबादी हेतु खाद्य एवं पोषण सुरक्षा इत्यादि।

बदलती जलवायु के परिप्रेक्ष्य में जलवायु अनुकूल प्रौद्योगिकियों को अपनाकर वैश्विक जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों और उसकी शमन रणनीतियों के बारे में किसानों के बीच जागरूकता पैदा की जानी चाहिए। इस दिशा में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना दो दशकों से ज्यादा समय से किसानों एवं अन्य हितधारकों को कृषि से संबंधित विभिन्न आयामों, जैसे फसल उत्पादन, भूमि एवं जल प्रबंधन, मत्स्य पालन, बागवानी, पशुधन प्रबंधन, बकरी एवं मुर्गीपालन आदि विषयों पर प्रशिक्षण देता आ रहा है।

राजभाषा हिंदी हमारे हृदय की सहज एवं सरल भाषा है, जिसके माध्यम से तकनीकी ज्ञान को किसानों तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है। मेरा मानना है कि इस तरह की पत्रिका के प्रकाशन से जलवायु अनुकूल प्रौद्योगिकियों, समेकित कृषि प्रणाली, कृषि मशीनरी, उपयुक्त फसल किस्मों और पशु नस्लों के चयन आदि सहित कृषि की आधुनिक तकनीकों की जानकारी बढ़ाने में बहुत मदद मिलेगी ।

मैं **अक्षय खेती – 2023** (दशम् वर्ष) के सफल प्रकाशन की कामना करते हुए संपादक मंडल के समस्त सदस्यों एवं लेखकगणों को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

आशुतोष उपाध्याय

(आशुतोष उपाध्याय)

विषय–सूची

क्रम	आलेख	पृष्ठ
01.	आम महोत्सव–सह–किसान मेला एवं आम प्रदर्शनी का भव्य आयोजन महेश कुमार धाकड़, मीनू कुमारी एवं अरूण कुमार सिंह	01–02
02.	कृषि सिंचाई में सौर ऊर्जा के अनुप्रयोग संतोष माली, सुशांत कुमार नायक, रेशमा शिंदे, अरुण कुमार सिंह एवं आशुतोष उपाध्याय	03–07
03.	धान की खेती में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन बुद्ध प्रिय मौर्य, देवकरन, हरि गोविंद, रामकेवल, मांधाता सिंह, सुदीप सरकार, विपिन कुमार एवं राकेश कुमार	08–12
04.	पोषण सुरक्षा के लिए बाजरा उत्पदान की उत्तम प्रबन्ध तकनीकी मान्धाता सिंह, हरि गोविन्द, देव करण, रामकेवल, आरिफ परवेज एवं बुद्धप्रिय मौर्य	13–16
05.	जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में कृषि वानिकी का महत्व अभिषेक कुमार, संजीव कुमार, अनुप दास, शिवानी, वेद प्रकाश, रचना दूबे एवं उमेश कुमार मिश्र	17–19
06.	सेम की वैज्ञानिक खेती: पोषण सुरक्षा एवं आय वृद्धि के लिए एक वरदान आर. एस. पान, जयपाल सिंह चौधरी, मीनू कुमारी, वीरेंद्र कुमार यादव, अजित कुमार झा एवं अरुण कुमार सिंह	20–23
07.	आनुवंशिकी स्तर पर दूध की गुणवत्ता एवं उसका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव सूर्यमणि कुमार एवं संजीव कुमार	24–25
08.	कृषि प्रगति के पर्यावरणीय प्रभाव वेद प्रकाश, आशुतोष उपाध्याय, अकरम अहमद, कीर्ति सौरभ, पवन जीत, अभिषेक कुमार एवं सोनका घोष	26–29
09.	खरपतवार प्रबंधन में नैनो टेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग सोनका घोष, कीर्ति सौरभ, शिवानी, मणिभूषण, वेद प्रकाश एवं आशुतोष उपाध्याय	30–32
10.	गंडक नदी के दियारा क्षेत्र में कृषि अन्वेषण: मानचित्रण एवं समाधान अकरम अहमद, अमिताभ डे, आशुतोष उपाध्याय, रोहन कुमार रमण, मणिभूषण एवं वेद प्रकाश	33–35
11.	टिकाऊ किसान उत्पादक संगठन (एफ पी ओ) का विकास वीरेन्द्र कुमार यादव, अनिर्वाण मुखर्जी, रवि शंकर पान, उज्ज्वल कुमार, धीरज कुमार सिंह, विकास, अजित कुमार झा, रीना कुमारी कमल एवं अरुण कुमार सिंह	36–41
12.	नवजात बछड़ों के स्वास्थ्य में फेनुस का महत्व शंकर दयाल, रजनी कुमारी, ज्योति कुमार एवं राकेश कुमार	42–44
13.	पूर्वोत्तर राज्यों में बैकयार्ड मुर्गी पालन: किसानों की आय दोगुना करने के सिद्ध प्रौद्योगिकी राकेश कुमार, पी. सी. चंद्रन, शंकर दयाल, रजनी कुमारी, प्रदीप कुमार राय, ज्योति कुमार, अमिताभ डे एवं कमल शर्मा	45–48
14.	पोषक तत्वों से भरपूर एवं महत्वपूर्ण दलहनी सब्जियां: पोषण सुरक्षा के आयाम मीनू कुमारी, आर.एस.पान, अरूण कुमार सिंह, स्मरणिका मिश्रा एवं कुमारी शुभा	49–52
15.	पोषण सुरक्षा की ओर बढ़ते कदम शिवानी, कीर्ति सौरभ, सोनका घोष, संजीव कुमार, उमेश मिश्र, आशुतोष उपाध्याय एवं अभिषेक कुमार	53–55

विषय–सूची

क्रम	आलेख	पृष्ठ
16.	वर्षाश्रित क्षेत्रों में जल प्रबंध नीति आशुतोष उपाध्याय, पवन जीत, अकरम अहमद एवं अनुप दास	56–60
17.	संक्रामक बोवाइन राइनोट्रैकाइटिस: संकर नस्ल पशुओं में बांझपन की एक गंभीर समस्या पंकज कुमार, रश्मि रेखा कुमारी, मनोज कुमार त्रिपाठी, उमेश कुमार मिश्र, तारकेश्वर कुमार एवं मनीष कुमार	61–64
18.	समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में नैनोफर्टिलाइजर का उपयोग कीर्ति सौरभ, शिवानी, गोविन्द मकराना, वेद प्रकाश, आशुतोष उपाध्याय, अनुप दास, अनिल कुमार सिंह, सोनका घोष एवं रवि रंजन	65–68
19.	उत्तराखंड की निचली पहाड़ियों में सेब के फेनोलॉजी और अन्ना किस्म (कम द्रुतशीतन कल्टीवर) की अनुकूलन क्षमता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव नेहा चंद एवं मनीषा टम्टा	69–71
20.	पशुओ में मिर्गी रोग के प्रकार, कारण एवं उपचार रश्मी रेखा कुमारी, निर्भय कुमार, पंकज कुमार एवं मंजू कुमारी	72–75
21.	मेलिया दुबिया (मालाबार नीम): तेजी से बढ़ने वाला एक बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति आलोक कुमार सिंह, विपिन कुमार सिंह, माखन सिंह कराडा, धीर अग्निहोत्री, संग्राम चव्हाण एवं अभिषेक कुमार	76–79
22.	फीरोमोन ट्रैप द्वारा फसलों में कीट प्रबंधन रामकेवल, मोनोबुल्लाह, आरिफ परवेज, जयपाल सिंह चौधरी, अभिषेक कुमार एवं रचना दूबे	80–82
23.	कृषिवानिकी में पोपलर की खेती विशाल जौहर, संग्राम चव्हाण, छवि सिरोही, उथप्पा ए आर, अभिषेक कुमार एवं गौरी रावले	83–85
24.	समेकित कृषि प्रणाली अपनाए–बेहतर लाभ पाएं संजीव कुमार, शिवानी, अजय कुमार, मणिभूषण एवं अनुप दास	86–89
25.	लबलब बीन (सेम): पूर्वी भारत में विविधता और महत्व कुमारी शुभा, मीनू कुमारी, शिवानी, अरबिन्द कुमार चौधरी, संजीव कुमार, अजित पाल एवं उमेश कुमार मिश्र	90–91
26.	आत्मनिर्भर बिहार हेतु मखाना का महत्व धीरज कुमार सिंह, अभय कुमार, उज्जवल कुमार, अनिर्बन मुखर्जी एवं रोहन कुमार रमण	92–94
27.	मत्स्य पालन में अजोला का महत्त्व विवेकानन्द भारती, कमल शर्मा, तारकेश्वर कुमार, एस. के. अहिरवाल, जसप्रीत सिंह एवं अमरेन्द्र कुमार	95–97
28.	हिन्दी पखवाड़ा – 2023 अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी एवं उमेश कुमार मिश्र	98–99
29.	कवि उद्‌गार (नारी, भाग्य, बेटियाँ, सोचता हूँ, शिक्षा एक उम्मीद, लक्ष्य, लक्ष्य, लक्ष्य क्या है लक्ष्य, जिंदगी एक नजरिया, जिंदगी, तू खेल मुसाफिर) ऋषिका कुमारी, तानिया ठाकुर, आशुतोष कुमार, अंशु, आदित्य मिश्रा, अमन, राखी एवं मन्नत	101–103
30.	अखवारों की नजर से भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना उमेश कुमार मिश्र, उज्ज्वल कुमार, अभय कुमार, धीरज कुमार सिंह एवं अभिषेक कुमार	104–107
31.	कृषि अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2023 में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ	108–112

आम महोत्सव –सह– किसान मेला एवं आम प्रदर्शनी का भव्य आयोजन

● महेश कुमार धाकड़, मीनू कुमारी एवं अरूण कुमार सिंह
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर–कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

दिनांक 7 जून, 2023 को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, प्लाण्डु, राँची में आम महोत्सव –सह– किसान मेला का भव्य आयोजन किया गया। इस समारोह के मुख्य अतिथि महामहिम राज्यपाल माननीय श्री सी. पी. राधाकृष्णन ने मंगलदीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। इस अवसर पर श्री अबुबक्कर सिद्दीख, सचिव, कृषि, पशुपालन एवं सहकारिता विभाग, झारखण्ड सरकार, राँची तथा डा. सुरेश कुमार चौधरी, उप महानिदेशक (प्रा.सं.प्र.), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली अनेक गणमान्य अतिथि उपस्थित थे। मुख्य अतिथि माननीय राज्यपाल महोदय के आगमन के अवसर पर स्मृति स्वरुप एक रुद्राक्ष के पौधे को रोपित किया गया। माननीय द्वारा इस अवसर पर आम की विभिन्न उन्नत किस्मों की प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया गया जिसमें केन्द्र द्वारा संरक्षित लगभग 160 से अधिक किस्मों के आम प्रदर्शित किए गए। साथ ही इस प्रदर्शनी में, किसानों द्वारा लाई गई अनेक आम की किस्में भी शामिल की गईं। माननीय राज्यपाल महोदय ने कार्यक्रम के दौरान प्रदर्शित संस्थान की प्रौद्योगिकियों का भी दौरा किया।

आम महोत्सव –सह– किसान मेला कार्यक्रम की शुरूआत में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना के निदेशक डा. अनुप दास द्वारा आगत अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्थान की गतिविधियों, कृषि अनुसंधान एवं विकसित एवं हस्तांतरित कृषि तकनीकों, शोध प्रकाशनों, प्राप्त पुरस्कारों आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया ।

श्री अबुबक्कर सिद्दीख, सचिव, कृषि, पशुपालन एवं सहकारिता विभाग, झारखण्ड ने कहा कि आम आधारित कृषि प्रणाली को अपनाकर किसान अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। उन्होंने कहा कि पारम्परिक कृषि के स्थान पर आधुनिक कृषि प्रणाली को अपनाकर कई परिवारों को रोजगार एवं खाद्य सुरक्षा प्रदान की जा सकती है । उन्होंने राज्य उपस्थित किसानों को राज्य सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का लाभ उठाने के लिए प्रेरित किया ।

डा. सुरेश कुमार चौधरी, उप महानिदेशक (प्रा.सं.प्र.),

अक्षय खेती

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कहा कि देश के पूर्वी पठारी भाग की जलवायु बागवानी फसलों की खेती के लिए अत्यंत अनुकूल है तथा इस क्षेत्र के अधिकांश किसान आम की खेती करते हैं। आम के वृक्ष फल देने के साथ–साथ ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव को कम करने, मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं नमी को बनाये रखने में सहायक हैं जिससे पर्यावरण संतुलन बना रहता है। संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास ने इस अवसर पर बताया कि अनुसंधान केन्द्र, प्लाण्डु द्वारा आम की उत्पादकता बढ़ाने हेतु कई उन्नत तकनीकों का विकास किया गया है। इन्हें अपनाकर किसान अपने आम के बागों से अधिक उत्पादन ले सकते हैं। इस आम महोत्सव –सह– किसान मेला से किसानों को आम की खेती की उन्नत तकनीकों को अपनाकर लाभान्वित होंगे।

आम महोत्सव–सह–किसान मेला के अवसर पर माननीय राज्यपाल ने बधाई दी और कहा कि यह केवल स्वादिष्ट आमों का उत्सव नहीं है, बल्कि यह हमारे किसानों के प्रयासों और समर्पण को सलाम है । कृषि हमारे राज्य की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। हमारे सुखी और अन्नदाता किसानों की समृद्धि से ही समृद्ध झारखंड का निर्माण हो सकता है। हमें किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान खोजने में सक्रिय रहना चाहिए। यह आम उत्सव आम की नई किस्मों, अत्याधुनिक तकनीकों और नवीन उत्पादों को लोकप्रिय बनाने में सहायक सिद्ध होगा। इस मौके पर माननीय राज्यपाल द्वारा पूर्वी भारत के विभिन्न राज्यों से आये प्रगतिशील किसानों को उनके उत्कृष्ट कार्यों के लिए सम्मानित किया गया एवं संस्थान के वैज्ञानिकों को भी उत्कृष्ट अनुसंधान कार्यों के लिए पुरस्कृत किया गया। साथ ही उन्होंने केंद्र के प्रकाशनों तथा केंद्र द्वारा निर्मित प्रसंस्कृत उत्पाद, 'स्वर्ण मैंगो मसाला रोल' का विमोचन किया।

इस अवसर पर किसानो की समस्याओं के समाधान के लिए एक तकनीकी सत्र का भी आयोजन किया गया। तकनीकी सत्र में किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए विशेषज्ञों द्वारा किसानो का मार्गदर्शन किया गया। तकनीकी सत्र में नाबार्ड, मनरेगा, एन.एच.एम. और प्रदान एन.जी.ओ. के प्रतिनिधियों ने झारखंड राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं और आम वृक्षारोपण कार्यक्रम पर व्याख्यान दिया। तकनीकी सत्र की अध्यक्षता एनआरसी लीची के निदेशक डॉ. विकास दास, डॉ. विशाल नाथ, ओएसडी, आई.सी.ए.आर.–आई.ए.आर.आई. झारखंड और डॉ. एस. कुमार, पूर्व प्रधान एफ.एस.आर.सी.एच.पी.आर., प्लांडू, राँची ने की। इस अवसर पर विद्यार्थियों के लिए आम स्मरण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विजेता विद्यार्थियों को विशेषज्ञों द्वारा पुरस्कृत भी किया गया।

इस कार्यक्रम में झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ के किसानों, छात्रों, राज्य लाइन विभागों के प्रतिनिधियों, वैज्ञानिकों और आई.सी.ए.आर. संस्थानों और कृषि विज्ञान केन्द्रों के कर्मचारियों सहित लगभग 700 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

कृषि में सिंचाई हेतु सौर ऊर्जा के अनुप्रयोग

• संतोष माली[1], सुशांत कुमार नायक[1], रेशमा शिंदे[1], अरुण कुमार सिंह[1] एवं आशुतोष उपाध्याय[2]
[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर – कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा करीब 54.6 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से खेती से जुड़ी हुई है। कृषि से संबंधित कई प्रकार के व्यवसाय हैं जैसे मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, पशुपालन आदि। कृषि के हर क्षेत्र में ऊर्जा की जरूरत होती हैं। कृषि कार्य जैसे की जुताई करके खेत को तैयार करना, फसल बुआई, सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण, कीट नियंत्रण, फसल कटाई, इन सब कामों मे हमें ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। कुछ कृषि कार्य तो मानव श्रम या पशु शक्ति से किए जाते हैं तो कुछ कामों मे हम कृषि यंत्रो की मदत लेते हैं जो कि पेट्रोल या डीजल जैसे इंधनों से चलते हैं तथा पेट्रोल और डीजल के दाम दिन–ब–दिन बढ़ते जा रहे हैं। कृषि मे काम करने वाले मानव श्रमिकों की दैनिक वेतन में भी काफी वृद्धि हो रही है। ऊर्जा के बढ़ते हुये दामों के कारण खेती में लाभ और लागत का अनुपात कम होने लगा है। ऐसी परिस्थितियों में ऊर्जा स्त्रोतों के विकल्पों पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। कई सारे विकल्पों मे एक विकल्प सबसे उभरकर सामने आता हैं वो है सौर ऊर्जा। चूँकि सूरज की रोशनी हर जगह मुफ्त मे उपलब्ध है, हमें ऊर्जा के इस स्वच्छ स्रोत का भरपूर उपयोग करना होगा। पिछले कुछ सालों में सूरज की रोशनी को ऊर्जा में बदलने के लिए काफी अनुसंधान किया गया है। सौर ऊर्जा के इस्तेमाल के नए पहलू विकसित किए गए है। हालाँकि वर्तमान समय में पारंपरिक संसाधनों के माध्यम से विद्युत उत्पन्न करना निरन्तर महंगा होता जा रहा है और इसका ठोस विकल्प सिर्फ सौर ऊर्जा ही है। भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के ज्यादातर देश सौर ऊर्जा का इस्तेमाल कर रहे हैं।

सौर ऊर्जा क्या है ?

सौर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य की रोशनी है। सौर ऊर्जा वह उर्जा है जो सीधे सूर्य से प्राप्त की जाती है। सूर्य की रोशनी से प्राप्त होने वाली उर्जा को विद्युत में परिवर्तित कर विभिन्न प्रयोगों में लाया जाता है। आज मनुष्य ने ऐसी तकनीक विकसित कर ली है, जिससे धरती पर पड़ने वाली सूरज की किरणों को विद्युत् उर्जा, ऊष्मा ऊर्जा, प्रकाश ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। सौर ऊर्जा एक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है। नवीकरणीय ऊर्जा का मतलब एक ऐसी उर्जा से है, जो कभी खत्म नहीं होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार धरती पर सूर्य की किरणें आगामी 500–600 करोड़ वर्षो तक उपलब्ध रहेंगी। इस प्रकार हम सौर ऊर्जा का इस्तेमाल कर अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेंगे। सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा में कई खास विशेषताएं हैं। जो इस स्रोत को आकर्षक बनाती हैं। इनमें इसका अत्यधिक विस्तारित होना, अप्रदूषणकारी होना व अक्षुण होना प्रमुख हैं। पर्यावरण संरक्षण मे सौर ऊर्जा बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है और इसी वजह से भी लोगों का रुझान सौर ऊर्जा की तरफ बढ़ रहा है।

भारत मे सौर ऊर्जा

उल्लेखनीय है कि भारत समृद्ध सौर ऊर्जा संसाधनों वाला देश है। भारत मे सौर ऊर्जा की उपलब्धता औसतन 200 मेगावाट ऊर्जा प्रति वर्ग किलोमीटर है। सम्पूर्ण भारतीय भूभाग पर 5000 लाख करोड़ किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर के बराबर सौर ऊर्जा आती है जो कि विश्व की संपूर्ण विद्युत खपत से कई गुने अधिक है। बिना धुंध व बादल रहित दिनों में प्रतिदिन औसतन 4 से 7 किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर तक ऊर्जा सम्पात होता है। भौगोलिक स्थितियों के अनुसार भारत की गिनती ऐसे देशों में होती है, जहाँ साल में लगभग 250 से 300 दिन भरपूर मात्रा में धूप रहती है। जिसके कारण भारत का भविष्य सौर उर्जा के मामले में काफी बेहतर है। दुनिया मे भारत सबसे कम दामों में सौर उर्जा का उत्पादन करनें वाले देशों में से एक है। भारत ने पिछले कुछ वर्षों में सौर ऊर्जा विकास एवं विस्तार के क्षेत्र में बाकी देशों से बेहतर प्रयास किये हैं।

सोलर सेल की कार्यप्रणाली

सूरज की किरणों से बिजली बनाने के लिए विशिष्ट प्रकार की सतह का इस्तेमाल किया जाता है जिसे सोलर पैनल

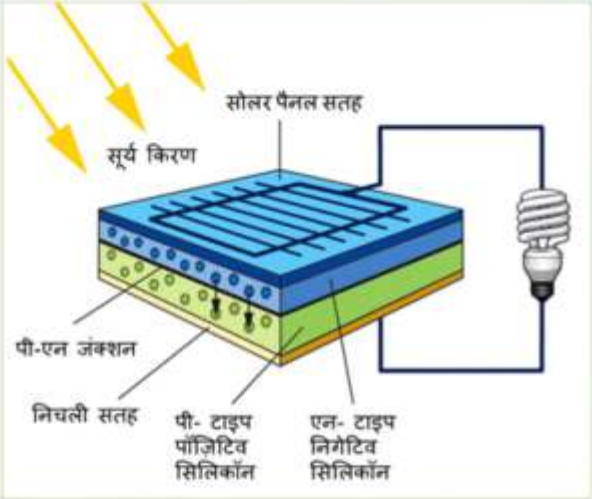

सोलर सेल की कार्यप्रणाली

कहते है। सोलर पैनल एक ऐसा उपकरण होता है जो सूर्य से निकलनें वाली किरणों में मौजूद फोटोन कणों को सोलर पैनलों की सहायता से विद्युत् में परिवर्तित किया जाता है। सोलर पैनल में सिलिकॉन से बने हुए फोटोवोल्टिक सेल लगे होते है, जैसे ही इन सेलों पर सूर्य की किरणें पड़ना शुरू होती है, वैसे ही फोटॉन की ऊर्जा अवशोषित हो जाती है और ऊपरी परत में पाए जाने वाले इलेक्ट्रॉन सक्रिय हो जाते हैं। धीरे–धीरे यह ऊर्जा पूरे पैनल में प्रवाहित होती है, जिससे बिजली का उत्पादन होता है।

सौर पंपों का उपयोग

सोलर वाटर पंप का प्रयोग मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र में किया जाता है, जो सिंचाई लागत को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सोलर वाटर पम्पिंग तकनीक अब कृषि के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी लगातार लोकप्रिय होती जा रही हैं। कृषि के साथ साथ सोलर पंपों का उपयोग पेयजल आपूर्ति, डेरी फार्मिंग,मछली पालन एवं घरेलू पानी आपूर्ति के क्षेत्र मे भी किया जा रहा है।

कृषि सिंचाई मे सोलर पंप

खेती की प्रक्रिया बेहद जटिल होती है लेकिन कृषि यंत्रों की मदद और तकनीक ने इसे थोड़ा सरल बना दिया है। सिंचाई खेती के लिए लाइफलाइन की तरह होती है। यदि खेती में सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था होगी तभी अन्य सहायक व्यवसाय भी चल पाएंगे। गर्मी के मौसम में जायद फसलों में पानी की अधिक आवश्यकता होती है। ऐसे में सिंचाई के पंप किसी वरदान से कम नहीं हैं। किसानों के लिए अधिक आर्थिक लागत परेशानी का कारण बनती है लिहाजा सस्ते उपकरण के साथ–साथ ऊर्जा के किफायती स्रोत का इस्तेमाल जरूरी हो जाता है। पारम्परिक कृषि पंप बिजली या महंगे ईंधन पर चलते हैं जिससे सिंचाई का काम तो हो जाता है लेकिन लागत अधिक आने से किसान परेशान होते हैं। सौर ऊर्जा से चलने वाले कृषि पंप मुफ्त उपलब्ध सूर्य के प्रकाश का इस्तेमाल करता है। सोलर वाटर पंप पानी लिफ्ट करने और जमीन की सिंचाई करने के लिए सोलर पावर का उपयोग करते हैं जिससे इन्हे ग्रिड बिजली की आवश्यकता नहीं होती। लिहाजा इसका परिचालन खर्च बेहद ही कम या नगण्य होता है। यह बिजली और डीजल जैसे महंगे ऊर्जा पर निर्भरता को भी काफी हद तक कम कर देता है।

डीजल पंपों को सौर सोलर पंपों से ज्यादा इसलिए वरीयता दी जाती रही है क्योंकि इन्हें स्थापित करने की आरंभिक लागत अत्यंत ही कम होती है। लेकिन एक बार डीजल पंप के जरिये सिंचाई कार्य आरंभ हुआ तो लगातार इसमें ईंधन की जरूरत पड़ती है। जबकि सौर पंपों को स्थापित करने की आरंभिक लागत तो अधिक है लेकिन इन्हें चलाने के लिए ईंधन खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती। इस तरह से दीर्घावधि में देखें तो सौर पंप डीजल पंप की तुलना में एक कम लागत वाला सिंचाई का साधन है। सोलर पंपके उपयोग से किसानों को कई प्रकार की सुविधाएं मिली हैं। लिहाजा केंद्र एवं राज्य सरकारें भी इसके इस्तेमाल को बढ़ावा दे रही हैं। किसानों की सिचाई जरूरतों को पूरा करने हेतु भारत को इस तकनीक का सर्वोत्तम उपयोग करना होगा।

किसान के खेत मे सोलर पंप का उपयोग

सोलर पंप के घटक

सोलर वाटर पंप नई टेक्नोलॉजी के वाटर पंप हैं जो सोलर पावर द्वारा ऑपरेट होते है। इन्हे सोलर पंपिंग सिस्टम, सोलर सबमर्सिबल पंप और सोलर पंप के नाम से भी जाना

जाता है। इस सिस्टम में आमतौर पर सोलर पेनल्स, सोलर इन्वर्टर, कंट्रोलर और कभी–कभी सोलर बैटरी होती है।

मोटरः सोलर पंप और मोटर पूरे पंपिंग सिस्टम का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह वह हिस्सा है जो पानी को ऊपर खिचने तथा अपने डेलीवेरी स्थान तक पहुंचाने का कार्य करता है। यह हिस्सा, सोलर सबमर्सिबल या सोलर सरफेस, दोनों तरह के पंपों में शामिल रहता है।

सोलर पैनलः पम्पिंग सिस्टम में बिजली उत्पन्न करने के लिए सोलर पैनलों का उपयोग किया जाता है। यह सूर्य की रौशनी को डीसी बिजली में परिवर्तित करते हैं। सोलर पैनल दो प्रकार के होते हैं–पॉलीक्रिस्टलाइन पैनल और मोनोक्रिस्टलाइन पैनल। आप अपनी आवश्यकता के अनुसार किसी भी प्रकार के पेनल्स को इनस्टॉल कर सकते हैं।

पंप कंट्रोलरः पंप कंट्रोलर डीसी सोलर पंप का एक महत्वपूर्ण अंग है। चूंकि डीसी सोलर पंपों में सोलर इनवर्टर का उपयोग नहीं किया जाता है और वे सीधे सोलर पैनलों द्वारा चलते हैं। इसलिए इन सिस्टम्स में निर्धारित वोल्टेज और स्थिरता बनाए रखने के लिए सोलर कंट्रोलर्स का उपयोग किया जाता है।

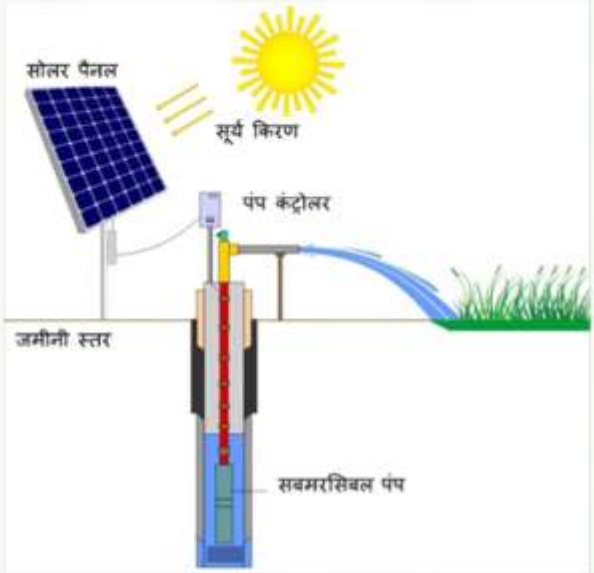

सोलर पंप की प्रणाली

सोलर पंप का काम सोलर पैनल से शुरू होता है। सोलर पंप सीधे सोलर पंप कंट्रोलर के माध्यम से सोलर पैनल से जुड़ता है। इसलिए जब भी सूरज की रोशनी सोलर पैनल से टकराती है तब बिजली पैदा होती है। आप जब और पंप चालू करते हैं तो यह पानी लिफ्ट करना शुरू कर देता है। यदि आप एसी सोलर वाटर पंप का उपयोग कर रहे हैं तो सोलर पेनल्स द्वारा उत्पन्न बिजली सोलर इन्वर्टर से होकर गुजरेगी। इसके लिए आपको अपने सोलर पंप के साथ सोलर इन्वर्टर भी स्थापित करना होगा। सोलर इन्वर्टर डीसी बिजली को एसी बिजली में बदल देगा और फिर इसे पंप में सप्लाई कर देगा ताकि एसी पंप भी सोलर विद्युत से चल सके।

सोलर वाटर पंप की तकनिकियाँ

सोलर पंप और सोलर सबमर्सिबल पंप के परिचालन के लिए तीन तकनिकियाँ उपलब्ध हैं। इन तकनिकियों का विवरण नीचे दिया गया है:

ऑन–ग्रिड सोलर पंपः ऑन–ग्रिड सोलर सिस्टम में सोलर पैनल पावर ग्रिड से जुड़ा हुआ होता है। यदि सोलर पैनल पंप के जरूरत से ज्यादा बिजली पैदा कर रहे होंगे तो अतिरिक्त बिजली अपने आप ही नेट मीटरिंग के माध्यम से पावर ग्रिड को निर्यात हो जाएगी। ग्रिड को निर्यात की गई बिजली की मात्र को रेकॉर्ड्स मे रखा जाएगा और सरकार या तो इसका मुआवजा देगी या इसे अगले बिजली बिल में एडजस्ट करेगी।

हाइब्रिड सोलर पंपः हाइब्रिड सोलर पंप में सोलर पंप चलाने के लिए बिजली के तीन स्त्रोत होते हैं। पहला सोलर पावर, दूसरा ग्रिड इलेक्ट्रिसिटी और तीसरा सोलर बैटरी। दिन में वाटर पंप सोलर पावर द्वारा ऑपरेट होगा, रात में यह ग्रिड द्वारा और जब दोनों (सोलर पावर और ग्रिड) उपलब्ध नहीं होंगे तो इसे बैटरी द्वारा ऑपरेट किया जा सकता है।

सोलर पंप VFD ड्राइवः वीएफडी ड्राइव को 'परिवर्तनीय आवृत्ति संचालक' कहा जाता है। वीएफडी एक प्रकार का मोटर नियंत्रक है जो बिजली की आपूर्ति की आवृत्ति (frequency) और वोल्टेज को बदलकर एक इलेक्ट्रिक मोटर चलाता है। वीएफडी में क्रमशः स्टार्ट या स्टॉप के दौरान मोटर के रैंप–अप और रैंप–डाउन को नियंत्रित करने की क्षमता होती है। सोलर पंप टथ्व ड्राइव मौजूदा पंप

को सोलर पंप में बदल देता है। वीएफडी टाइप के पंप की लोकप्रियता दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। ऐसे ग्रामीण क्षेत्र जहां बिजली की कमी वहाँ पर वीएफडी के माध्यम से किसान ग्रिड न होने पर भी अपने पंपों को ऑपरेट कर सकते हैं।

सोलर पंप के फायदे

1. **बाहरी ईंधन की जरूरत नहीं:** सोलर पंप का सबसे बड़ा फायदा यही है कि इसे लगाने के बाद किसानों को ऊर्जा के किसी महंगे स्रोतों पर जैसे कि पेट्रोल, डीजल आदि पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है।
2. **दूरदराज के इलाकों में कारगर:** सोलर पंप को दूरदराज के इलाके जहाँ बिजली की आपूर्ति नहीं होती है, वहाँ भी अससनी से स्थापित किया जा सकता हैं। आधुनिक तकनीक जैसे कि रिमोट कंट्रोल द्वारा भी इसे चालू या बंद किया जा सकता है।
3. **कम परिचालन लागत:** सोलर कृषि पंप सूर्य के प्रकाश का इस्तेमाल करता है जो की मुफ्त मे उपलब्ध है। लिहाजा इसका परिचालन खर्च बहुत ही कम आता है। यह बिजली और डीजल जैसे महंगे ऊर्जा स्रोतों पर किसान की निर्भरता को भी बहुत ही कम कर देता है।
4. **ज्यादा आर्थिक लाभ:** सोलर पंप के परिचालन का खर्च ना के बराबर है। इसके रखरखाव मे भी पैनल की सफाई रखने के अलावा कुछ ज्यादा खर्च नहीं है। कुल मिलाकर सौर ऊर्जा कृषि पंप बहुत ही लाभकारी है।
5. **विश्वसनीय:** पारम्परिक बिजली वाले पंप के इस्तेमाल मे किसान बिजली कटौती, कम वोल्टेज, मरम्मत के लिए मिस्त्री का न मिलना जैसी समस्या से परेशान होते है। लिहाजा विशेष परिस्थिति में भी सोलर पंप किसानों की मदद के लिए फायदेमेंद हो सकता है ।
6. **महिलाओं के अनुकूल:** डीजल पंप की तुलना मे सोलर पंप को ऑपरेट करना काफी आसान होता है। चूंकि इसमे हैंडल घुमाकर इंजिन को चालू नहीं करना होता है, तो घर की महिलाएं भी सोलर पंप को बहुत ही आसानी मात्र एक बटन दबाकर इसे चालू या बंद कर पाती है।
7. **पर्यावरणीय लाभ:** सोलर पावर से चलने वाला पंप अलग–अलग स्थानों पर पानी उपलब्ध कराने के लिए एक बेस्ट तकनीक है जो पर्यावरण और सामाजिक रूप से फायदेमंद हैं। सोलर पंप सूरज की रोशनी जैसे स्वच्छ ईंधन से चलते हैं जिससे ये वायु प्रदूषण नहीं करते हैं। सोलर पंप के चलाने से कोई भी हानिकारक पदार्थ या वायु मुक्त नहीं होता है जिससे कि पर्यावरण के लिए समस्या पैदा हो सके। चूंकि सोलर पंप को पावर ग्रिड के बिजली की आवश्यकता नहीं होती, ये कार्बन फुटप्रिंट भी कम करते हैं।
8. **आवश्यकतानुसार उपलब्धता:** सोलर पंप जरूरत के समय हमेशा किसान के लिए उपलब्ध रहता है। जब अधिक गर्मी पड़ती है और सिंचाई के लिए पानी की अधिक जरूरत होती है, ऐसे समय सोलर पैनल भी अधिक बिजली पैदा करता है, और किसान अपनी पानी की जरूरत को पूरा कर सकता है।
9. **आसान स्थापना और स्थानांतरण:** सोलर पंप की स्थापना और स्थानांतरण करना सरल एवं आसान होता है। किसी विशेषज्ञ की मदद से किसान स्वयं इसे स्थापित तथा अपनी जरूरतों के अनुसार इसे स्थानांतरित भी कर सकते हैं।
10. **सबसिडी एवं लंबी आयु:** केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर सोलर पंपों के लागत पर भारी सबसिडी दे रही हैं। कुछ राज्यों मे तो 90 प्रतिशत तक की सबसिडी उपलब्ध हैं। सोलर पंप की वर्किंग आयु 25–30 साल तक आँकी गयी हैं। इतने सालों तक सोलर पंप बिना रुके सेवा दे सकता है।

सोलर पंप को अपनाने से सिंचाई लागत कम हो रही है और धीरे–धीरे छोटे–मंझोले किसानों के लिए भी कृषि अधिक मुनाफा देने वाली साबित हो रही है। बिना किसी अतिरिक्त लागत और बोझ के सिंचाई का काम करना हो तो सौर ऊर्जा पंप एक बेहतरीन विकल्प है।

सौर उर्जा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनायें चलायी जा रही है। इन योजनाओं के माध्यम से लोगो को सौर उर्जा के प्रति जागरूक करने के साथ ही बहुत ही कम दामों पर सोलर पैनल उपलब्ध कराये जा रहे हैं। जिसके फलस्वरूप भारत में पिछले कुछ वर्षो से सौर ऊर्जा के इस्तेमाल में काफी वृद्धि हुई है। सौर पंप के लिए किसानों को योजना के अनुसार सब्सिडी दी जा रही है। यूं तो केंद्र और राज्य सरकार की अनेक योजनाएं चल रही है लेकिन यदि सोलर पंप की बात की जाए तो इस पर सरकार द्वारा किसानों को 60 से 90

प्रतिशत तक की सब्सिडी दी जाती है। इन्ही योजनाओं में एक योजना है 'पीएम–कुसुम' योजना।

पीएम–कुसुम योजना

केन्द्र सरकार के 'गैरपरम्परागत और नवीकृत ऊर्जा मंत्रालय' की 'पीएम–कुसुम योजना' एक लोकप्रिय और महत्वकांक्षी योजना है। इसका मुख्य उद्देश्य सौर ऊर्जा को खेती के क्षेत्र में प्रोत्साहित करके किसानों की कमाई बढ़ाने में मदद करना है। पीएम कुसुम योजना का पूरा नाम 'प्रधान मंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान' है। इसकी घोषणा मार्च 2019 में हुई थी और रूपरेखा जुलाई 2019 में जारी हुई। कुसुम योजना के तहत किसानों को अपने खेतों या घर की छत पर सौर ऊर्जा संयंत्र लगाने और डीजल या बिजली से चलने वाले पम्पिंग सेट्स को सौर बिजली से चलाने वाले सोलर प्लांट को लगाने के लिए बेहद रियायती दरों पर सहायता दी जाती है। कुसुम योजना के तहत किसानों को सौर ऊर्जा संयंत्र लगाने के लिए 60 फीसदी अनुदान या आर्थिक मदद देकर प्रोत्साहित किया जाता है। कुसुम योजना के लाभार्थी किसानों को सोलर प्लांट की कुल लागत में से सिर्फ 10 फीसदी रकम का इन्तजाम खुद करना पड़ता है। बाकी राशि बैंक से कर्ज के रूप में मुहैया करवायी जाती है। कुसुम योजना का लाभ उठाने के इच्छुक किसान अपने नजदीकी बैंक या नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय की वेबसाइट www-mnre-gov-in पर पूरी जानकारी ले सकते हैं। हालाँकि आज से कुछ वर्ष पूर्व सौर उर्जा के बारें में लोगो को बहुत ही कम जानकारी थी परन्तु भारत सरकार के अथक प्रयासों और सोलर पैनल की खरीद पर विभिन्न प्रकार से सब्सिडी मिलने के कारण लोगो का रुझान इस तरफ काफी तेजी से हुआ है। वर्तमान समय में सौर ऊर्जा का प्रयोग गांवों से लेकर शहरों तक किया जा रहा है।

सोलर प्लांट से आमदनी

सौर ऊर्जा का प्रयोग न केवल स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देने वाला है बल्कि यह आय अर्जन का भी एक बेहतर जरिया साबित हो सकता है। ऐसे में किसान अपने उपयोग के बाद बचे हुए सौर ऊर्जा को पावर ग्रिड में बेच सकते हैं। एक तो यह लागत के हिसाब से किफायती है, वहीं यह कई प्रकार से लाभ पहुंचाता है। अनुसंधान मे ऐसा पाया गया है कि सिंचाई और फसल से होने वाली कमाई के अलावा सोलर बिजली बेचकर 2 हेक्टेयर जोत का किसान करीब साढे छह लाख रुपये की अतिरिक्त आमदनी पा सकता है। इसीलिए जरूरी है कि किसान कुसुम योजना जैसी योजनाओं का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाएं। सोलर प्लांट लगाने वाले किसान या भूमि मालिक को 60 हजार से लेकर एक लाख रुपये सालाना की अतिरिक्त कमाई हो सकती है।

सोलर पंप कैसे चुने?

अगर आप सबसे सटीक क्षमता वाला सोलर वाटर पंप खरीदना चाहते हैं तो सोलर पंप खरीदने के समय कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को ध्यान मे रखना आवश्यक है। सबसे पहले अपने पानी की खपत की गणना करके पानी के कितने प्रवाह (लिटर प्रति मिनट) की आवश्यकता है ये सुनिश्चित करें। इसके बाद जमीन मे पानी के स्तर की गहराई को जान लें। इन दो जानकारियों से पंप की क्षमता तय करें। हो सके तो इसमे किसी एक्सपेर्ट या सोलर पंप डीलर की इसमें राय जरूर ले। अपने पानी के स्रोत के अनुसार सोलर पंप के टाइप, यानि कि सतह या सबमरसीबल का चयन करें।

निष्कर्ष

आज के दौर मे जहाँ पारंपरिक इंधनों एवं मानव श्रमिकों के बढ़ते दाम किसान के लिए समस्या का कारण बन रहे हैं। ऐसे में खेती–बाड़ी मे ऊर्जा की जरूरत को पूरा करने के लिए सौर ऊर्जा एक बहुत ही प्रभावी विकल्प बन कर उभर रहा है। सूरज की रोशनी से चलने वाले सोलर पंप किसानों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। भारत में ही नहीं, बाकी देशों में भी कृषि सिंचाई मे सोलर पंप को बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है जिससे किसानों की सिंचाई की समस्या हल हो रही है और किसान की आय में भी बढ़ोतरी हो रही है। हमारे क्षेत्र के किसान भी पीएम–कुसुम जैसी योजनाओं का लाभ उठाकर सोलर पम्प या सोलर फार्म को स्थापित कर अपनी आमदनी और सामाजिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

धान की खेती में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

• बुद्ध प्रिय मौर्य[1], देवकरन[1], हरि गोविंद[1], रामकेवल[1], मांधाता सिंह[1], सुदीप सरकार[2], विपिन कुमार[3] एवं राकेश कुमार[4]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर – कृषि विज्ञान केंद्र, बक्सर
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
[3]डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर
[4]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

धान दुनिया की लगभग आधी आबादी का मुख्य तथा गन्ना और मक्का के बाद उत्पादन के आधार पर इसका तीसरा स्थान है। हालांकि बढ़ती जनसंख्या, खपत और कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता बढ़ती खाद्य की मांग को पूरा करने के लिए मौजुदा कृषि और प्राकृतिक संसाधनों पर असहनीय दबाव डाल रही है। टिकाऊ कृषि प्रणालियों के तहत खाद्य सुरक्षा को हासिल करना विकासशील देशों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गई है, जो गरीबी को कम करने के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण हो गई है। इस चुनौती से बचने के लिए फसल उत्पादकों ने अपने खेतों में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों जैसे कुछ अन्य निविष्टियों का गैर–विवेकपूर्ण इस्तेमाल करना शुरू कर दिया, जिसके कारण पर्यावरण को बचाने जैसी चुनौती भी हमारे लिए पैदा हो गई है जो कि हमारे देश और पर्यावरण के लिए सही नहीं है।

तराई क्षेत्र या निचली भूमि में उत्पादन होने वाला धान की उर्वरक खपत कुल उर्वरक खपत का 14.0 प्रतिशत है, जिसकी चावल की बढ़ती मांग के कारण और भी बढ़ने की संभावना है। नाइट्रोजन, फासफोरस एवं पोटाश (एन.पी.के.) उर्वरक का गैर–विवेकपूर्ण और असंतुलित उपयोग न केवल देशी मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों के भंडार को कम करता है, बल्कि हमारे पर्यावरण को भी भारी नुकसान पहुंचाता है। भारत में 1960 के दशक के मध्य से पहले एन.पी.के. उर्वरक की खपत 1 मिलियन टन से भी कम थी जो 2014–15 के दौरान बढ़कर 25 मिलियन टन से भी अधिक हो गई। हालांकि एन.पी.के. उर्वरक के बढ़ते खपत के फलस्वरूप

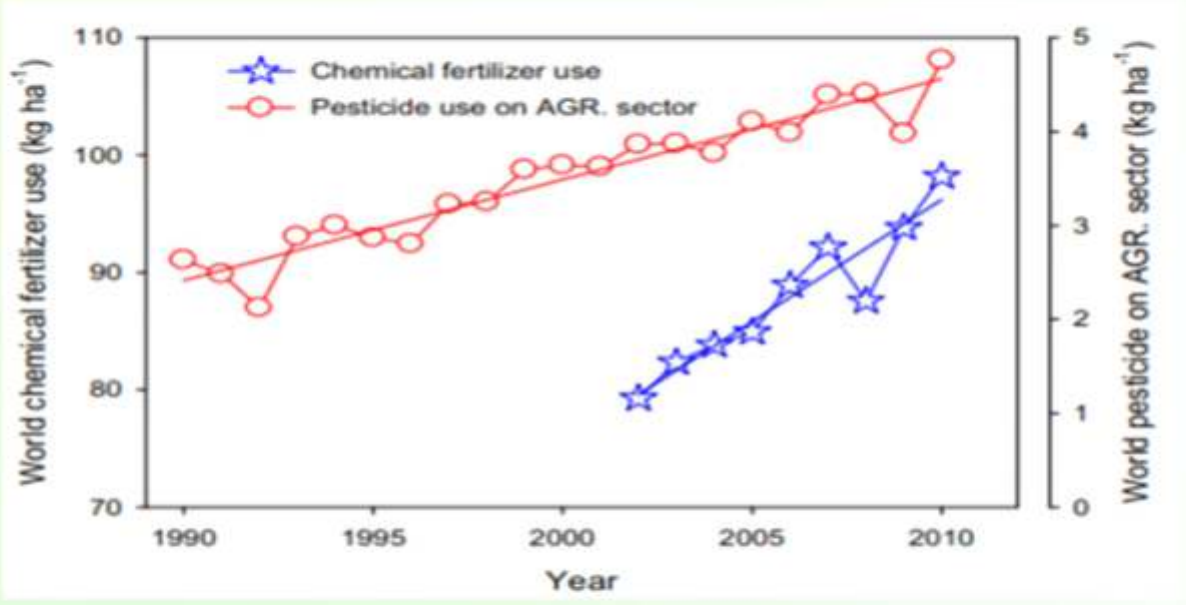

आकृति 1: 2002 से वैश्विक रासायनिक उर्वरक का उपयोग और 1990 से कृषि क्षेत्र पर कीटनाशक का उपयोग

धान के उत्पादन में भी काफी वृद्धि दर्ज की गई। धान का उत्पादन 1950–51 में 20.58 मिलियन टन थी जो 1990–91 के दौरान बढ़कर 89.48 मिलियन टन हो गई । 2022–23 के दूसरे अग्रिम अनुमान के अनुसार देश में कुल खाद्यान्न उत्पादन रिकॉड 3235.54 लाख टन होने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष 2021–22 की तुलना में 79.38 लाख मीट्रिक टन अधिक है।

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, अम्लीकरण, यूट्रोफिकेशन आदि धान की टिकाऊ उत्पादन के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रहें हैं । अकेले रासायनिक उर्वरक के उपयोग से जुड़े प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए जैविक खाद और रासायनिक उर्वरकों का एकीकृत अनुप्रयोग सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है। जैविक और रासायनिक उर्वरकों का संयुक्त निविष्ट न केवल पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता को बढाते हैं, बल्कि धान की उत्पादन और उपज गुणों में वृद्धि भी करते हैं। बढती आबादी की दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए धान की उत्पादन को भी बढाना चाहिए और इसके लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन आई.एन.एम. जैसी प्रणाली को भी सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। विभिन्न जैविक स्रोतों के साथ रासायनिक उर्वरकों का संयुक्त निविष्ट मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने और लंबी अवधि तक उच्च फसल उत्पादकता को बनाए रखने में सक्षम होती है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (आइ एन एम)

पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव के साथ वांछित फसल उत्पादकता को बनाये रखने के लिए उच्चतम स्तर पर पौधों की पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र मे एक नई पद्यति को शामिल किया गया जिसमें सभी संभव पोषक तत्वों का विवेकपूर्ण इस्तेमाल किया जाता है जिसे हम एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन आई.एन.एम. के नाम से जानते हैं। आई.एन.एम. में फसल की तत्काल पोषक तत्वों की आवश्यकता रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से पूरी की जाती है। अतः रासायनिक उर्वरक के प्रयोग की दर और समय का तालमेल फसल के वास्तविक समय की मांग के साथ किसानों को सुनिश्चित करना चाहिए। जबकि जैविक स्रोतों से प्राप्त होने वाली पोषक तत्वों की धीमी और दीर्घकालिक उपलब्धता फसल की दीर्घकालिक आवश्यकता को भी पूरा करने में मदद करती है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के तहत किसानों को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि हम सिर्फ एक फसल को न लेकर एक फसल प्रणाली को अपनाएँ एवं एक अकेले भूखंड या क्षेत्रफल की जगह एक कृषि प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करें।

लक्ष्य

- उत्पादक व टिकाऊ कृषि को सुनिश्चित करना।
- स्थायी फसल उत्पादकता को सुनिश्चित करने के लिए मिट्टी की पोषक आपूर्ति क्षमता का रख रखाव।
- उच्च पोषक उपयोग दक्षता को सुनिश्चित करना, पोषक तत्व को कम से कम नुकसान एवं हानिकारक पर्यावरणीय प्रभावों को कम करना।
- रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि कृषि अनुप्रयोग को कम करना जिससे खेती की लागत कम हो और लाभप्रदता में वृद्धि हो।
- कृषि उत्पादन के प्राकृतिक संसाधन के आधार को नुकसान पहुँचाए बिना किसानों की सामाजिक और आर्थिक आकांक्षाओं को पूरा करना।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के घटकः–

- **अकार्बनिक या सिंथेटिक उर्वरकः**– रासायनिक उर्वरकों का संतुलन अनुपात और अनुशंसित मात्रा में उपयोग फसल उत्पादन को बढाने का सबसे सुगम एवं तेज तरीका हैं। इनका उपयोग अपरिहार्य है क्योंकि संपूर्ण पोषक तत्वों की मांग को केवल जैविक खादों एवं जैविक उर्वरकों से पूरा नही किया जा सकता है। इसके अलावा, केवल रासायनिक उर्वरक मिट्टी के स्वास्थ्य और फसल उत्पादकता को बनाए रखने में असमर्थ है क्योंकि वे जैविक खादों के माध्यम से होने वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति करने में असमर्थ होते हैं। संसाधनों के कुशल उपयोग के लिए उत्पादक सामग्री के इस्तेमाल करने का समय और तरीका दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण है।
- **जैविक खादः**–जैविक खाद मुख्य रूप से पशुओं के गोबर, मूत्र और पौधों के अवशेषों से तैयार की जाती है। यह मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों मे सुधार करती है। यह रासायनिक खाद के उर्वरक उपयोग दक्षता में भी सुधार लाती है । खेतों की खाद भारत में सबसे महत्वपूर्ण और आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली जैविक खाद है। कई जाँचकर्ताओं ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि जैव उर्वरकों के साथ संयोजन में जैविक और अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग न केवल पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में किया

जाता है बल्कि मिट्टी के आर्गेनिक या कार्बनिक कार्बन की मात्रा, समग्र स्थिरता और नमी–धारण क्षमता में सुधार के लिए मिट्टी संशोधक के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

❖ **जैव खाद (कम्पोस्ट):**– जैविक कचरे के अपघटन की प्रक्रिया को कम्पोस्टिंग कहा जाता है और अपघटित सामग्री को कम्पोस्ट कहा जाता है । इस प्रक्रिया के तहत जैविक व कार्बनिक पदार्थों को सूक्ष्म जीवों की सहायता से गलाया व सड़ाया जाता है एवं उनका विघटन किया जाता है और पौधों के भोजन के लिए तैयार किया जाता है। बायो कम्पोस्ट खाद का उपयोग भी अन्य देशी खाद की तरह किया जाता है। जिस तादाद मे आप देशी खाद डालते हैं उसी तादाद में आप कम्पोस्ट भी डाल सकते हैं। बिजाई से पहले ही इसे अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दें। बेहतर गुणवता वाली बायों कम्पोस्ट से फसलों को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। जिससे फसलों की गुणवता में भी इजाफा होता है। इसमें लाभदायक सूक्ष्म जीवों की मात्रा अधिक होती है जिससे ये मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों को पौधों तक उपलब्ध करवाते हैं । यह मिट्टी की उर्वरक क्षमता को भी बनाये रखने में मदद करती है। इसके उपयोग से रासायनिक खाद पर होने वाले खर्च को भी कम किया जा सकता है एवं खेती से होने वाली अपनी आय में भी इजाफा किया जा सकता है। उन्नत जैव खाद प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करके पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तापूर्ण जैविक खाद उत्पन्न करने के लिए अब तक पर्याप्त शोध किए गए हैं ।

❖ **फसल अवशेष:**– फसल के अवशेषों मे पौधों के विकास के लिए आवश्यक हैं और कुछ हद तक मिट्टी की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार के लिए इनका उपयोग कृषि क्षेत्रों मे किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में जानवरों के लिए सूखे चारे के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। भारत में चावल, गेंहूँ और गन्ना जैसे फसल अवशेषों का विशाल भंडार है, जो पौधों के पोषक तत्वों के काफी समृद्ध स्रोत हैं ।

❖ **हरी खाद:**– सही समय पर हरी फलीदार पौधों की खड़ी फसल को फल लगने से पहले मिट्टी में हल चलाकर दबा देने से या मिला देने से जो खाद बनती है उसे हरी खाद कहते हैं। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए हरी खाद एक सस्ता विकल्प है। कोई फसल बुआई के पहले उस खेत में हरी मुलायम या फलीदार पौधों को लगाकर उसी खेत में मिला दिया जाता है, जिससे ये हरी खाद में परिवर्तित हो जाते हैं।

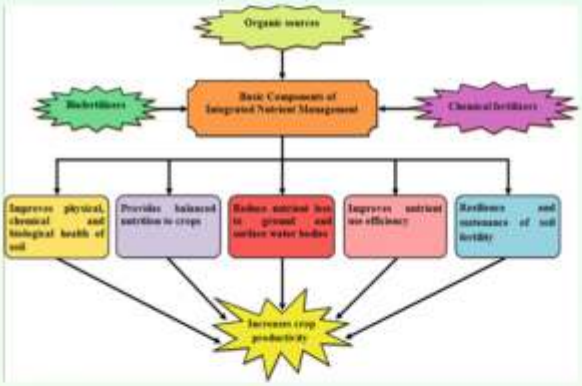

आकृति 2 : टिकाऊ चावल उत्पादन के लिए आईएनएम के घटक और उद्देश्य

हरी खाद वाली फसल में निम्नलिखित गुण होने चाहिए:–

- ✓ हरी खाद के लिए जिस फसल का चुनाव करें वह ज्यादा लागत वाली न हो अर्थात इसे उगाने में बहुत कम खर्च हो।
- ✓ ऐसी फसल लें जिसे सुरक्षा की कम जरूरत पड़े।
- ✓ रोगों या कीटों का कम से कम प्रकोप हो तथा जल्दी बढने व उपज देने वाली फसल हो।
- ✓ किसी भी परिस्थिति या वातावरण में उगने में सक्षम हो।
- ✓ खरपतवार को दबाकर जल्द बढ़त प्राप्त करें।

आकृति 3: हरी खाद की फसल – ढैंचा (सेसवानिया एक्यूलेटा)

हरी खाद के लिए ऊपर बताए गए गुणों के अनुसार नीचे कुछ हरी खाद वाली फसलों के नाम दिए गए हैं जो हरी खाद के लिए उत्तम मानी जाती है: लोबिया, उड़द, मूँग, ढैंचा, बरसीम एवं ज्वार आदि। ढैंचा इन सब में सर्वोतम मानी जाती है।

❖ **जैव–उर्वरक (बायो फर्टिलाइजर)** :– जैव उर्वरक ऐसे पदार्थ होते है जिनमें सूक्ष्म जीव होते हैं, जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाकर पौधों और पेड़ो के विकास को बढ़ावा देने में मदद करते हैं । ये मिट्टी के प्राकृतिक पोषक चक्र को बहाल करने और मिट्टी में मौजूद जैविक पदार्थों की मात्रा को बढाने में भी मदद करते हैं। मिट्टी की स्थिरता और स्वास्थ्य में सुधार करते हुए जैव–उर्वरकों के प्रयोग से स्वस्थ पौधों को विकसित किया जा सकता है। अभी तक के हुए शोधों से यह अनुमान लगाया गया है कि जैव–उर्वरक सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर हमारी निर्भरता को कम करेंगे, लेकिन वे उन्हें पूरी तरह से प्रतिस्थापित करने में सक्षम नहीं होंगे।

कुछ महत्वपूर्ण प्रकार के जैव–उर्वरक इस प्रकार हैं:–

✓ **सहजीवी नाइट्रोजन–फिक्सिंग बैक्टीरिया** :– राइजोबियम जैसे सहजीवी नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया पौधों से भोजन और आश्रय प्राप्त करते हैं और बदले में उन्हें नाइट्रोजन प्रदान करते हैं।

✓ **अजोला–एनाबेना सह जीवन**:– एजोला वैश्विक स्तर पर पाये जाने वाला एक छोटा, यूकेरियोटिक, जलीय फर्न है। प्रोकैरियोटिक नीले हरे शैवाल ऐनाबेना एजोला इसकी पत्तियों में सहजीवन के रूप में रहते है और पौधों को पोषण प्रदान करते हैं। एनाबेना, अजोला फर्न की पत्ति की गुहाओं में पाया जाता है । इसका मुख्य रूप से उपयोग धान की फसल में नाईट्रोजन स्थिरीकरण को बढाने के लिए किया जाता है। फर्न (अजोला) जब सड़ जाते है तब वे धान के पौधों के लिए पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

✓ **फ्री–लिविंग नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया** :– मुक्त रूप से रहने वाले बैक्टीरिया मिट्टी में पाये जाते हैं, और वे नाइट्रोजन स्थिरीकरण भी करते हैं । इनमें क्लोस्ट्रीडियम, एजोटोबैक्टर और वैसिलस पॉलीमीक्सिन शामिल हैं ।

जैव–उर्वरक की महत्ता को सिद्ध करने वाले गुणों में शामिल हैं :– मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार लाना, पौधों को रोगजनकों से बचाना, पर्यावरण प्रदूषण से बचाना, मिट्टी में मौजूद हानिकारक पदार्थों का विनाश आदि। जैव–उर्वरक का उपयोग किसान अपने खेतों में विभिन्न तरीके से कर सकते हैं, जिनमें से कुछ मुख्य उपयोग है :–

✓ पौध की जड़ों को जैव उर्वरक में डुबाना
✓ बीजोपचार
✓ मृदा उपचार

धान की फसल में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की जरूरत

खनिज उर्वरकों के बढते उपयोग और बेहतर सिंचाई सुविधाओं के साथ कम अवधि की उच्च उपज वाली किस्मों के साथ सघन चावल की फसल के परिणामस्वरूप् फसल उत्पादकता में शानदार वृद्धि हुई है। हालांकि इससे पौधों के पोषक तत्वों के स्रोतों के रूप में जैविक खादों का क्रमिक प्रतिस्थापन हुआ है। सब्सिडी वापस लेने के बाद फास्फोरस और पोटैशियम के उर्वरकों की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है, जिसके कारण किसानों द्वारा उनकी खपत में कमी आई है। कृषक समुदाय की कम क्रय शक्ति और मृदा स्वास्थ्य के मुद्दे ने जैविक पुनर्चक्रण में फिर से रूचि पैदा कर दी है। धान की फसल में उपयोग के लिए उपलब्ध जैविक स्रोतों में एफ वाइ एम जैसी भारी जैविक खाद, फसल क्रम में उगाई जाने वाली तेजी से बढने वाली फलीदार झाड़ियाँ, गली–मुहल्ले में उगने वाले फलीदार पेड़ और मल्च सामग्री के रूप में उनकी कटाई का उपयोग करना शामिल है। हरी खाद और नाइट्रोजन के उपयोग से खरीफ और रबी चावल की सर्वाधिक उपज प्राप्त हुई है।

धान की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए फलीदार झाड़ियों या हरी खाद वाले पौधों को फायदेमंद माना जाता है। मूंग और ढैंचा धान की उत्पादकता को बढाने के लिए हरी खाद के रूप में एक अच्छा विकल्प है जो कि 50–55 दिनों के अंदर 100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर तक जमा करने की क्षमता रखता है। जब धान– गेंहूँ फसल चक्र प्रणाली में किसान अपने खेतों में सेसबानिया कैनबिना या लथाइरस सैटिवस जैसी फलीदार फसल को शामिल करते हैं तो उनके खेतों की उर्वरक उपयोग दक्षता में सुधार होता है। अन्य फलीदार फसल जैसे ल्यूकेना ल्यूकोसेफला और

ग्लिरिसिडिया नेपस को जोड़ने से भी फसल की नाइट्रोजन की आवश्यकता को काफी हद तक पूरा किया जा सकता है। धान – धान फसल प्रणाली की उत्पादकता को लगभग 1 टन प्रति हेक्टेयर तक बढ़ाया जा सकता है। किसान अपने धान के खेतों में छोटी अवधि की फलियां जैसे लोबिया व मूंग को शामिल करके 30 किलोग्राम उर्वरक नाइट्रोजन की बचत कर सकते हैं । इन फसलों की कटाई के बाद इनके अवशेषों को खेत में जुताई कर देनी चाहिए जिससे खेत की उर्वरा शक्ति बरकरार रहे। इसी प्रकार नीले हरे शैवाल को धान के खेतों में शामिल करने से धान की नाइट्रोजन उर्वरक की आवश्यकता को पूरा किया जाता है और यह लगभग 25 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से योगदान करती है। शैवाल की अपनी एक कार्य शैली है जिसके तहत ये अपनी संख्या में गुणन करते हैं और धान की खेत को एक कालिन की तरह ढक देतें हैं जो मिट्टी में शामिल होने पर विघटित हो जाता है और धान की फसल के नाइट्रोजन उर्वरक की आवश्यकता को पूरा करता है। अजोला, जो एक जलिय फर्न है, इसे धान के खेतों या टैंको में उगाया जाता है और 4–6 सप्ताह के बाद मिट्टी में मिला दिया जाता है। अजोला लगभग 25–30 किलोग्राम न

आकृति 4: धान की फसल पर अजोला फर्न का प्रभाव

निष्कर्ष

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन फसलों की उपज, मृदा स्वास्थ्य एवं संसाधन उपयोग दक्षता को बढाने में मदद करती है। इसके अलावा यह जलवायु अनुकूल कृषि के साथ–साथ संरक्षण कृषि के तहत फसल अवशेषों का प्रबंधन करने के लिए दुनिया भर में एक प्रभावी कृषि प्रौद्योगिकी के रूप में उभरकर सामने आया है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन निश्चित रूप से खाद्य–उत्पादन की समवर्ती आवश्यकताएं तथा भारतीय किसानों के लिए आर्थिक, पर्यावरण और सामाजिक व्यवहार्यता को बनाए रखने जैसे लक्ष्यों को प्राप्त करनें में मदद करेगी।

पोषण सुरक्षा के लिए बाजरा उत्पादन की उत्तम प्रबन्ध तकनीक

• मान्धाता सिंह, हरिगोविन्द, देव करण, राम केवल, आरिफ परवेज एवं बुद्धप्रिय मौर्य
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर – कृषि विज्ञान केंद्र, बक्सर

भारत दुनिया का एक अग्रणी बाजरा उत्पादक देश है। भारतवर्ष में लगभग 85 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बाजरे की खेती की जाती है, जिसमें से 87 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा राज्यों में है। देश के शुष्क तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों में यह प्रमुख खाद्य है और साथ ही पशुओं के पौष्टिक चारे के रूप में भी बाजरे की खेती की जाती है। पोषण की दृष्टि से जहाँ इसके दानों में अपेक्षाकृत अधिक प्रोटीन (10.5 से 12.5%) और वसा (4–5%) मिलती है वही कार्बोहाइड्रेट (67%), खनिज तत्व (3%), कैल्शियम, केरोटिन, राइबोफ्लेविन (विटामिन बी 2) और नियासिन (विटामिन बी 6) भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। गेहूं एवं चावल की अपेक्षा बाजरे में लौह तत्व भी अधिक होता है। अधिक ऊर्जा होने के कारण बाजरे को सर्दी के मौसम में खाने में अधिक प्रयोग किया जाता है। बाजरा के चारे में प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस और खनिज लवण उपयुक्त मात्रा में एवं हाइड्रोसायनिक अम्ल सुरक्षित मात्रा में पाया जाते हैं।

भारत के कुल बाजरा क्षेत्र का लगभग 95 प्रतिशत असिंचित है, जिससे मानसून की अनिश्चितता के कारण भी बाजरा की उत्पादकता में उतार–चढ़ाव रहता है। इसके अतिरिक्त, कुछ रोगों और कीटों का प्रकोप एवं वैज्ञानिक तरीके से फसल प्रबंधन नहीं होने से भी इस फसल की पैदावार अन्य खरीफ की अनाज वाली फसलों की तुलना में कम हो जाती है। परन्तु यदि सही किस्म का चुनाव और खेती के लिए उन्नत सस्य तथा पौध संरक्षण तकनीकियां अपनाई जाएं तो बाजरा की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

भूमि एवं जलवायु

भूमि– बाजरे की फसल अच्छी जल निकास वाली सभी प्रकार की भूमियों में ली जा सकती है, परन्तु बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम है। बाजरे के लिए भारी भूमि कम अनुकूल रहती है और इसके लिए अधिक उपजाऊ भूमियों की आवश्यकता नहीं होती है।

जलवायु

बाजरे की खेती गर्म जलवायु और 400 से 600 मिलीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में भली–भांति की जा सकती है। 32 से 37° सेल्सियस तापमान बाजरे के लिए उपयुक्त माना गया है। यदि पुष्पण अवस्था में वर्षा हो जाए या फव्वारों से सिंचाई कर दी जाए तो फूल धुल जाने के कारण बाजरे में दानों का भराव कम हो जाता है। बालियों में दाना भरने की अवस्था में यदि नमी अधिक हो और तापमान कम हो तो अर्गट रोग के प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है।

फसल पद्धतियां

बाजरे की फसल के साथ यदि दलहनी फसलों (जैसे–मूंग, ग्वार, अरहर, मोठ और लोबिया) को अन्तः फसल के रूप में बोया जाए तो न केवल बाजरे के उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि दलहनी फसल के कारण मिट्टी की उर्वरता में भी सुधार होता है और अतिरिक्त दाल उत्पादन से कृषकों की आय में भी वृद्धि होती है। यह सभी दलहन वर्गीय फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती है जिससे मिटटी में

नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप उर्वरकों से नाइट्रोजन कम देना पड़ता है, जिससे कृषि लागत में कमी आती है।

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाना महत्वपूर्ण है। बाजरे के लिए निम्न एकवर्षीय फसल चक्रों को अपनाना चाहिए, जैसे–

1. बाजरा – गेहूं या जौ
2. बाजरा –सरसों या तारामीरा
3. बाजरा – चना, मटर या मसूर
4. बाजरा – गेहूं या सरसों – ग्वार, ज्वार या मक्का (चारे के लिए)
5. बाजरा –सरसों – ग्रीष्मकालीन मूंग।

बाजरे की किस्में: राज 171, पूसा 322, पूसा– 443, पूसा– 383, एच एच बी– 216, एच एच बी– 223, एच एच बी– 67 उन्नत, JKBK–26, पूसा संकर बाजरा 1201 आदि।

चारे के लिए बाजरे की किस्में– राज बाजरा चरी– 2, जाइन्ट बाजरा, ए वी के बी– 2, ए वी के बी– 19, जी एफ बी– 1, पी सी बी– 164, नरेन्द्र चरी बाजरा – 2 आदि।

खेत की तैयारी

गर्मियों में गहरी जुताई करें और उत्तम जल निकास के लिए खेत को समतल कर लें। बाजरे की अच्छी फसल लेने के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए एवं इसके बाद दो–तीन बार जुताई करके बुवाई करनी चाहिए। दीमक के प्रकोप वाले क्षेत्रों में 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से फोरेट (10 G) अन्तिम जुताई से पूर्व डालनी चाहिए। बाजरे की खेती शून्य जुताई विधि द्वारा भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए खेत को समतल करना तथा मिटटी पर पूर्व फसल के अवशेषों या अन्य वानस्पतिक अवशेषों का आवरण बनाए रखना लाभप्रद होता है।

फसल बुआई

बारानी क्षेत्रों में मानसून की पहली बारिश के साथ ही बाजरे की बुवाई कर देनी चाहिए। उत्तरी भारत में बाजरे की बुआई के लिए जुलाई का प्रथम पखवाड़ा सर्वोत्तम है। 25 जुलाई के बाद बुआई करने से 40 से 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रतिदिन पैदावार में नुकसान होता है। बुआई के लिए 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। बाजरे की फसल 45 से 50 सेंटीमीटर की दूरी पर कतारों में बोनी चाहिए। बुवाई के 10 से 15 दिन बाद यदि पौधे घने हों तो पौधों की छंटाई कर देनी चाहिए और पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 सेंटीमीटर रखनी चाहिए जिससे प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में 1.75 से 2 लाख पौधे प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकें। इस संख्या में पौधे उगाने से बाजरे की अधिकतम उपज ली जा सकती है।

फसल रोपाई

यदि मानसून देरी से आए या किन्हीं कारणों से समय पर बुवाई न कर सकें तो बाजरे की फसल को देरी से बोने की अपेक्षा इसकी रोपाई करना अधिक लाभप्रद पाया गया है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में पौध रोपाई के लिए लगभग 500 वर्गमीटर क्षेत्र में 2 से 3 किलोग्राम बीज उपयोग करते हुए जुलाई माह के प्रथम सप्ताह में नर्सरी तैयार करनी चाहिए। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए भली प्रकार से खेत की तैयारी करें और 12 से 15 किलोग्राम यूरिया डालें, 2 से 3 सप्ताह बाद पौध की रोपाई मुख्य खेत में करनी चाहिए। जब पौधों को क्यारियों से उखाड़े तब जड़ों की क्षति कम करने के लिए ध्यान रखें कि नर्सरी में पर्याप्त नमी हो। जहां तक संभव हो रोपाई बारिश वाले दिन करनी चाहिए। बाजरे की रोपाई करने के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. रोपाई विधि द्वारा बाजरा उगाने से जुलाई के तीसरे सप्ताह से अगस्त माह के प्रथम पखवाड़े तक भी रोपाई कर अच्छी पैदावार ली जा सकती है।
2. बाजरे की रोपाई वाली फसल शीघ्र पकती है एवं बाद में कम तापमान हो जाने से फसल पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।
3. रोपाई वाली फसल अपेक्षाकृत भारी वर्षा का सामना अच्छी तरह से कर लेती है।
4. रोपाई के समय रोगग्रस्त, कमजोर व बेमेल पौधों को पहचान कर अलग किया जा सकता है। इस प्रकार सभी पौधे स्वस्थ रहेंगे तो बाजरा उत्पादन भी अधिक होगा और लाभ में वृद्धि होगी।
5. रोपाई विधि द्वारा बोई गई फसल में बढ़तवार अच्छी होती है और कल्ले व बालियों की संख्या भी अधिक होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

सिंचित क्षेत्र– मिटटी परीक्षणों के आधार पर संस्तुत

उर्वरकों का उपयोग करना अधिक लाभप्रद रहता है। परन्तु यदि मिटटी परीक्षण के परिणाम उपलब्ध नहीं है तो सिंचित क्षेत्रों में बाजरे के लिए उर्वरकों की आवश्यकता इस प्रकार है, जैसे– नाइट्रोजन 80 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, फॉस्फोरस 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और पोटाश 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर।

बारानी क्षेत्रः बारानी क्षेत्रों के लिए निम्नानुसार उर्वरकों की आवश्यकता होती है, जैसे–

नाइट्रोजन 60 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, फॉस्फोरस 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और पोटाश 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर। सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में जस्ते की कमी हो तो 5 किलोग्राम जस्ता प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। जैव उर्वरकों जैसे एजोस्पिरिलम व फास्फोरस घोलक जैव उर्वरक के द्वारा बीजोपचार करके बुआई करना फसल के लिए अधिक लाभप्रद रहता है। सिंचित व असिंचित दोनों परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फास्फोरस, पोटाश एवं जस्ते की पूरी मात्रा लगभग 3 से 4 सेंटीमीटर गहराई पर मिट्टी में डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा बुवाई के 30 से 35 दिन बाद मिट्टी में उपयुक्त नमी होने की स्थिति में डालनी चाहिए।

जल प्रबंधन

बाजरा की फसल मुख्यतः बारानी क्षेत्रों में ली जाती है, परन्तु फूल आते समय व दाना बनते समय नमी की कमी होना अधिक हानिकारक है। अतः यदि सिंचाई का स्रोत उपलब्ध हो तो इन क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई करना लाभप्रद होता है। बाजरा जल भराव से भी प्रभावित होता है इसलिए जल निकास का समुचित प्रबंध करें।

खरपतवार प्रबंधन

बाजरे की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए 1 किलोग्राम एट्राजीन या पेंडिमिथालिन 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। यह छिड़काव बुआई के बाद और अंकुरण से पूर्व करते हैं। इसके साथ–साथ बाजरे की बुआई के 20 से 30 दिन बाद एक बार खुरपी, कुदाल या वीडर से खरपतवार निकाल देने चाहिए।

कीट प्रबंधन

बाजरे की फसल में प्रायः निम्नलिखित कीटों का प्रकोप होता है, जैसेः

दीमकः इसके प्रकोप को रोकने के लिए 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से क्लोरोपाइरीफॉस का पौधों की जड़ों में छिड़काव करें या हल्की वर्षा के समय मिट्टी में मिलाकर बिखेर दें।

तना मक्खीः इसकी गिडारें और इल्लियां प्रारंभिक अवस्था में पौधों की बढ़वार को काट देती हैं जिससे पौधे सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से फॉरेट या 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फ्यूराडोन (3 प्रतिशत) खेत में डालना चाहिए।

श्वेत गिड़ारः यह पौधों की जड़ों को काटकर फसल की विभिन्न अवस्थाओं में बाजरे को नुकसान पहुंचाती है। इसकी रोकथाम के लिए फ्यूराडॉन 3 प्रतिशत या फॉरेट 10 प्रतिशत दोनों को 12 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बाजरे की बुआई के समय मिट्टी में डालना चाहिए अथवा क्लोरीपायफॉस 20 ई सी का 4 मिली प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

मृदु रोमिल आसिताः यह रोग हरी बाली रोग या डाउनी मिल्ड्यू के नाम से भी जाना जाता है। यह फफूदी जनक रोग है। यह रोग अंकुरण के समय व पौधों की बढ़तवार के समय शुरू होता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बढ़तवार रूक जाती है। प्रातःकाल में पौधों की निचली पत्तियों पर सफेद चूर्णनुमा पदार्थ दिखाई देता है। रोग की उग्र अवस्था में प्रभावित पौधों पर बालियां नहीं बनती हैं। जब इस रोग का प्रकोप बाली बनने की अवस्था में होता है तो बालियों पर दानों के स्थान पर छोटी–छोटी हरी पत्तियां उग जाती हैं। रोगग्रस्त पौधों की सूखी पत्तियां खेत में गिरने से फसल अगले वर्ष भी इस बीमारी से–ग्रस्त हो सकती है।

रोकथाम

1. इसकी रोकथाम के लिए सदैव प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें।
2. बुआई से पहले रिडोमिल एम जेड– 72 या थाइम से 3 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बीजोपचार करके बुआई करें।

3. खेत में रोगग्रस्त पौधे दिखाई देने पर पौधों को समय–समय पर उखाड़कर जला देना चाहिए।

4. उपयुक्त फसल चक्र अपनाकर भी मृदु रोमिल आसिता रोग की रोकथाम की जा सकती है।

5. खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत की दर से डाइथेन जेड– 78 या 0.35 प्रतिशत की दर से कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का पर्णीय छिड़काव करके इस रोग की रोकथाम की जा सकती है। आवश्यकता होने पर 10 से 15 दिन बाद पुनः एक छिड़काव करना चाहिए।

अर्गट– यह रोग बाली बनते समय बाजरे को नुकसान पहुंचाता है। रोगग्रस्त पौधों में बालियों पर शहद जैसी चिपचिपी बूंदें दिखाई देती हैं। शहद के समान दिखाई देने वाला यह पदार्थ कुछ दिनों बाद सूखकर गाढ़ा पड़ जाता है। इस जहरीले पदार्थ को अर्गट के नाम से जाना जाता है। जो मानव और पशुओं के लिए हानिकारक होता है। बाजरे की संकर किस्मों में यह रोग अधिक फैलता है।

रोकथाम

1. फसल की बुआई उचित समय पर करें, अगेती बुआई करने से फसल में फूल आते समय तापमान कम नहीं होता और आर्द्रता भी अधिक नहीं होती जिससे रोग का प्रकोप कम रहता है।

2. सदैव प्रमाणित बीज ही उपयोग में लें और उपयुक्त फसल चक्र अपनाएं।

3. खेत में रोगग्रस्त बालियों को काटकर जला देना चाहिए।

4. बीजों में मिले हुए रोगजनक स्क्लेरोसिया या अर्गट के पिण्डों को दूर करने के लिए बीजों को 10 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर अलग कर देना चाहिए। उसके बाद बीजों को धोकर साफ करें तथा सुखाकर बुआई करें।

5. बीजों को 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बेविस्टीन द्वारा उपचारित करके बोएं।

6. खड़ी फसल में रोग की रोकथाम के लिए बेविस्टिन 0.1 प्रतिशत या जिराम 0.1 प्रतिशत का 2 से 3 बार पर्णीय छिड़काव करें।

उपज

यदि आधुनिक विधि से बाजरे की खेती की जाए तो सिंचित अवस्था में इसकी उपज 3 से 4.5 टन दाना और 9 से 10 टन सूखा चारा प्रति हेक्टेयर और असिंचित अवस्था में 2 से 3 टन प्रति हेक्टेयर दाना एवं 6 से 7 टन सूखा चारा मिल जाता है।

भंडारण

बाजरे के दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाएं और दानों में नमी की मात्रा 8 से 10 प्रतिशत होने पर उपयुक्त स्थान पर भंडारण करें।

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में कृषिवानिकी का महत्व

● अभिषेक कुमार, संजीव कुमार, अनुप दास, शिवानी, वेद प्रकाश, रचना दूबे एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

मानव जीवन के लिए संतुलित पर्यावरण आवश्यक है, लेकिन बढती हुयी जनसंख्या के कारण लकड़ी, इंधन एवं चारे की आपूर्ति हेतु वनों पर बढ़ता दबाव भूमि संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन के लिए खतरनाक साबित हो रहा है, जो एक गंभीर चिंता का विषय है। बदलते मौसम एवं जलवायु परिवर्तन के कारण चरम मौसमी घटनाओं जैसे बाढ़, सूखा, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, ग्रीष्म व शीत लहरों द्वारा कृषि की उत्पादकता में होने वाली कमी सर्वविदित है। कृषि योग्य भूमि पर दबाव बढ़ने से मृदा स्वास्थ्य निरंतर बिगडता ही जा रहा है, जिससे भविष्य में खाद्यान आपूर्ति की गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है । ऐसी परिस्थिति में आवश्यक है कि भूमि उपयोग तथा कृषि के उन विकल्पों का चयन किया जाए जो जलवायु परिवर्तन के अनुकूल हों तथा जिनसे खाद्यान्न, लकड़ी व चारा इत्यादि की पूर्ति भी हो जाए और पर्यावरण का संतुलन भी बना रहे। इस दिशा में कृषिवानिकी एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसे अपनाकर हम प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण को बिना नुकसान पहुंचाए प्रतिकूल मौसम में भी अपनी बढती आबादी के लिए पर्याप्त खाद्यान्न के साथ साथ लकड़ी, ईंधन, फल, चारा इत्यादि जैसे विविध कृषि उत्पाद सतत् रूप से उपलब्ध करा सकते हैं।

कृषिवानिकी

कृषिवानिकी भूमि उपयोग कि ऐसी प्रणाली है जिसमें एक ही भूखंड पर फसल उत्पादन के साथ–साथ वृक्षारोपण एवं पशुपालन को इस तरह से एकीकृत किया जाता है जिससे खाद्यान्न, फल, इमारती लकड़ी, इंधन तथा पशुओं हेतु चारे के साथ–साथ सतत उत्पादन की प्राप्ति होती है, जिससे कृषक बंधु आर्थिक लाभ प्राप्त कर अपना जीविकोपार्जन अधिक सुदृढ़ एवं सुनिश्चित्त करते हैं। यह प्रणाली भूमि की उत्पादकता, लाभप्रदता, विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की संवहनीयता को बढ़ाने के साथ साथ पर्यावरण संतुलन बनाये रखने हेतु विशेष रूप से कारगर सिद्ध होती है।

कृषिवानिकी की उपयोगिता

कृषिवानिकी के अंतर्गत वृक्षों की प्रमुखता के कारण सूक्ष्म जलवायु में सुधार होता है तथा वृक्षों द्वारा गिराए गए पत्तियों एवं टहनियों के अपघटन एवं पोषक तत्वों के चक्रीयकरण से भूमि में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ने से भूमि की उर्वरा क्षमता बढ़ती है । साथ ही वृक्ष अपनी लंबी व गहरी जड़ों के द्वारा भूमि की निचली सतह से पोषक तत्वों को ग्रहण करके, भूमि की ऊपरी सतह पर लाने में मदद करते हैं जिससे खाद्य फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है। वृक्षों की उपस्थिति पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में भी मददगार साबित होती है जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। इस प्रणाली द्वारा सीमित भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, बंजर भूमि का सुधार किया जा सकता है एवं भूमि में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट होने से बचाया जा सकता है जो हमारी फसलों के लिए लाभकारी होते हैं। कृषिवानिकी यह सुनिश्चित करती है कि प्राकृतिक प्रकोपों जैसे आँधी, तूफान, ओलावृष्टि, सूखा, अकाल इत्यादि के कारण यदि खाद्यान्न फसल नष्ट हो जाता है तो भी वृक्षों द्वारा हमें कुछ न कुछ उत्पाद अवश्य प्राप्त हो जाता है।

चित्रः 1 गम्हार आधारित कृषिवानिकी प्रणाली

कृषिवानिकी हेतु वृक्षों का चयन

कृषिवानिकी अंतर्गत उपयोग होने वाले वृक्षों एवं फसलों के चयन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वृक्ष एवं फसल एक दूसरे के अनुरूप हों जिससे उन्हें एक साथ उगाने पर

अधिक उत्पादन की प्राप्ति हो सके। उन्ही वृक्षों का चयन किया जाना चाहिए जो उस क्षेत्र की जलवायु एवं भूमि के लिए उपयुक्त हों एवं किसान तथा समाज के लिए उपयोगी हों। वृक्षों व फसलों के बीच पोषक तत्वों व सौर उर्जा के लिए प्रतिस्पर्धा कम रखने के दृष्टिकोण से सीधा तना, गहरी जड़ें, विरल छत्र एवं कम पार्श्व शाखाओं वाले वृक्षों का ही चयन करना चाहिए तथा उनकी शाखाओं को समय–समय पर काटते–छांटते रहना चाहिए जिससे फसलों में कृषि कार्य जैसे जुताई, गुड़ाई, कटाई इत्यादि में कोई अवरोध उत्पन्न न हो। कृषिवानिकी हेतु तेज गति से वृद्धि करने वाले (वार्षिक दर 2–3 मीटर) एवं बहुउद्देशीय वृक्षों, जिनमे इमारती लकड़ी, ईधन तथा फल के साथ–साथ हरा चारा देने की भी क्षमता हो, का चयन ज्यादा उचित होता है। वृक्षों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने की क्षमता भी हो तो और अच्छा है। लेकिन इस पद्धति में कभी भी ऐसे वृक्षों का समावेश नहीं करना चाहिए जो मृदा में हानिकारक रसायन का स्राव करते हों जिससे फसल का अंकुरण तथा वृद्धि प्रभावित होती हो।

कृषिवानिकी प्रणालियाँ :

कृषिवानिकी प्रणालियों को घटकों के आधार पर निम्न प्रकारों में विभाजित किया गया है:

1.कृषि–वन प्रणाली (फसलें +वृक्ष)

इस प्रणाली अंतर्गत वृक्षों के साथ कृषि फसलों का समायोजन क्रमबद्ध तरीके से करने से खाद्यान्न के साथ –साथ इमारती लकड़ी एवं ईंधन आदि का उत्पादन होता है। इसके लिए उपयुक्त वृक्षों में सागवान, शीशम, महोगनी, अर्जुन, महुआ, गम्हार, पोपलर इत्यादि प्रमुख हैं, जबकि मुख्य फसलें गेंहू, चना, अरहर, मसूर, मक्का, ज्वार, सरसों, तिल, अलसी इत्यादि हैं।

2. वन–चारागाह प्रणाली (वृक्ष+चारागाह / पशु)

इस प्रणाली अंतर्गत लकड़ी के साथ साथ चारा देने वाले वृक्षों की पंक्तियों के मध्य घास अथवा चारा फसलों को रोपित किया जाता है। यह प्रणाली क्षीण एवं बंजर भूमि के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। प्रमुख वृक्षों में सुबबूल, बबूल, शीशम, कटहल, सहजन, बांस, सिरिस आदि हैं जबकि घास में नेपियर, अंजन, पैरा घास, स्टाइलो आदि एवं चारा फसलों में लोबिया, बरसीम, जई, ज्वार आदि प्रमुख हैं।

3. कृषि–वन–चारागाह प्रणाली (फसलें+वृक्ष+चारागाह / पशु)

इस प्रणाली में वृक्षों एवं कृषि फसलों के साथ घास, चारा फसल, फल, सब्जियों के अलावे पशुओं को भी सम्मिलित किया जाता है जिससे कृषक परिवार के लिए विविध उत्पादों की प्राप्ति होती है। गृह–वाटिका इस प्रणाली का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस प्रणाली में वनीय वृक्षों जैसे शीशम, सागवान, गम्हार, महोगनी आदि के साथ फलदार वृक्ष जैसे आम, अमरुद, लीची, आंवला, बेर, शरीफा, शहतूत, बेल इत्यादि एवं औषधीय वृक्ष जैसे अशोक, अर्जुन, नीम, करंज, हरड़, बहेड़ा इत्यादि का भी समावेश किया जा सकता है।

4. अन्य प्रणाली

उक्त तीनों प्रणालियों के अतिरिक्त बहुत सी ऐसी प्रणालियाँ हैं जो आपस में संयोजन से बनती है, उन सभी को अन्य प्रणाली के अन्तर्गत रखा गया है, जैसे कृषि–वन–मीन प्रणाली (फसलें+वृक्ष+मीन), वृक्षों के साथ मधुमक्खी पालन इत्यादि। इन प्रणालिओं को जलवायु, मृदा तथा अपनी आवश्यकता अनुसार अपनाया जा सकता है।

कृषिवानिकी अपनाने हेतु ध्यान देने योग्य मुख्य बातें:

1. कृषिवानिकी में वृक्ष एक महत्वपूर्ण एवं स्थायी घटक है, इसलिए उपयुक्त वृक्ष प्रजातियों का चयन, रोपण की विधि, रोपण दूरी तथा अंतरफसलों आदि के बारे में गहनता से विचार करके ही कृषिवानिकी की स्थापना की जानी चाहिए।
2. खेत से फसल उत्पादन के साथ–साथ लकड़ी, ईंधन एवं चारे के उत्पादन हेतु वृक्षों को निश्चित्त दूरी पर कतार में रोपित कर उनके मध्य फसल उत्पादन करना चाहिए। दो कतारों की दूरी कम से कम उतनी होनी चाहिए (6 मीटर या अधिक), जिससे फसलों पर कृषि कार्य में कोई बाधा नहीं आए।
3. यदि किसी प्रणाली में फसल उत्पादन प्रमुख हो तो वृक्षों को प्रायः खेतों की मेड़ों पर लगाया जाना चाहिए।
4. वृक्षों की छाया से फसलों को होने वाले सूर्य प्रकाश की प्रतिस्पर्धा को कम करने हेतु शाखाओं की कटाई–छंटाई अवश्य करनी चाहिए।
5. अधिक दिनों तक कृषि फसलों के अच्छे उत्पादन हेतु वृक्षों के कतारों के बीच की दूरी ज्यादा रखनी चाहिए।

6. वृक्षारोपण के प्रारम्भिक वर्षों में जब वृक्षों की ऊंचाई कम रहती है तब लंबी फसलें जैसे अरहर, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि नहीं उगाना चाहिए।

7. वृक्षों में कीट एवं रोग नियंत्रण के उपाय समय समय पर करते रहना चाहिए जिससे वृक्षों से अच्छा उत्पादन मिल सके।

8. ज्यादा पुराने हो चुके वृक्षों का रिज्युविनेशन करना चाहिए अथवा उनके स्थान पर नए वृक्षों को प्रतिस्थापित करना चाहिए।

निष्कर्ष:

बदलते मौसम एवं जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में कृषिवानिकी का भविष्य बहुत अत्यंत उज्ज्वल है। कृषिवानिकी अपनाकर कृषक बंधु सीमित भूमि से खाद्यान्न, फल, इमारती लकड़ी, इंधन तथा पशुओं हेतु चारे इत्यादि जैसे विविध उत्पादों की सतत प्राप्ति से अपना जीविकोपार्जन अधिक सुदृढ़ एवं सुनिश्चित्त करते हैं। वृक्षों की उपस्थिति मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने एवं पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में मददगार साबित होती है, जिससे भूमि की उत्पादकता, लाभप्रदता, विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की संवहनीयता बरकरार रहती है । हालांकि हमारे देश में कृषिवानिकी को लेकर कुछ समस्याएं भी हैं। हमारे देश में अधिकांशतः लघु व सीमांत किसान हैं, जबकि कृषिवानिकी के लिए अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्र की आवश्यकता होती है। हमारे किसान आम तौर पर पारंपरिक कृषि पद्धति को ही अपनाते आए हैं और वे कृषिवानिकी के लाभ से कुछ हद तक अनभिज्ञ हैं। इसलिए आवश्यकता है इस क्षेत्र में जागरूकता फैलाने की और तकनीकों व प्रशिक्षण को किसानों तक पहुंचाने की, जिससे कृषिवानिकी को व्यापक आयाम मिल सके।

सेम की वैज्ञानिक खेती: पोषण सुरक्षा एवं आय वृद्धि के लिए एक वरदान

● आर. एस. पान, जयपाल सिंह चौधरी, मीनू कुमारी, वीरेंद्र कुमार यादव, अजित कुमार झा एवं अरुण कुमार सिंह

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर – कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

सेम पूर्वी पठारी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण सब्जी है। यद्यपि सेम की खेती शरद एवं शीत ऋतु में सफलतापूर्वक होती है। परंतु झारखंड के राँची, हजारीबाग, गुमला, लोहरदगा समेत कई जिलों में ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में बेमौसमी सेम की प्रकाशकाल संवेदनहीन किस्मों की खेती से किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। दलहनी फसल होने के कारण सेम वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को भूमि में संचित करती है जिससे जमीन की उर्वरता बढ़ती है एवं अगली फसल को नाइट्रोजन का लाभ मिलता है।

सेम की कुछ प्रजातियों की रेशारहित पूरी फलियों को सब्जी के रूप में पकाते हैं। कुछ किस्मों में फलियों का छिलका रेशायुक्त होने के कारण कच्चे बीजों को उपयोग में लाया जाता है। प्रजाति के अनुसार कुछ किस्में लत्तरदार होती हैं, जबकि कुछ झाड़ीदार। कुपोषण को जड़ से हटाने के लिए शाकाहारी भोजन में सेम का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अन्य हरी सब्जियों की तुलना में प्रोटीन तथा कैल्शियम एवं फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। सेम में पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों (प्रति 100 ग्राम फली में) को निम्नांकित सारणी में दर्शाया गया है।

नमी	86.1ग्रा.	मैग्निशयम	37.0 मि.ग्रा.
प्रोटीन	3.8	सोडियम	2.0 मि.ग्रा.
कार्बोहाड्रेट	6.7	पौटाशियम	163.00 मि.ग्रा.
वसा	0.7	विटामिन 'ए' (कैरोटीन)	187.00 माइक्रोग्राम
रेशा	1.7	विटामिन 'बी–1'	0.10 मि.ग्रा.
खनिज तत्व	0.9	विटामिन 'बी–2'	0.06 मि.ग्रा.
कैल्शियम	210.0 मि.ग्रा	निकोटिनिक एसिड	0.70 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	.68.00	विटामिन 'सी'	9.0 मि.ग्रा.
लोहा	1.7	ऊर्जा	48.0 कैलोरी

उन्नत किस्में

लत्तरदार सेम की उन्नत किस्में जो कि परीक्षणों के उपरान्त इस क्षेत्र के लिए अच्छी पायी गयी है निम्न प्रकार हैं:

1. स्वर्ण उत्कृष्ट: इसकी मुलायम फलियाँ हरे रंग की, चौड़ी (2.5–3.0 सें.मी.) एवं 12–15 सें.मी. लम्बी होती है। फलियाँ लम्बे फष्प–वृन्त पर गुच्छे में लगती है। बुआई के 98–100 दिन में पौधों में फूल आ जाते हैं तथा 120 दिन पश्चात् फलियाँ पहली तुड़ाई योग्य हो जाती हैं। इस किस्म की उपज क्षमता 350–400 क्वि/हे. है। इसके बीज भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची से प्राप्त किए जा सकते हैं।

2. पूसा सेम–2: इसकी रेशारहित मुलायम फलियाँ गहरे हरे रंग की, अपेक्षाकृत कम चौड़ी, 12–15 सें.मी. लम्बी होती हैं। बुआई के 95–105 दिन में इसमें फूल आ जाते हैं तथा फलियाँ 120–125 दिन में पहली तुड़ाई योग्य हो जाती है। इसकी उपज क्षमता 220–280 क्वि/हे. तक है। बीजों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से संपर्क कर सकते हैं।

3. पूसा सेम–3: इसकी फलियाँ रेशारहित, मुलायम, हरे रंग की, चौड़ी एवं 15–16 सें.मी. लम्बी होती हैं। बुआई से 68–70 दिन में इस किस्म में फूल आ जाते हैं तथा फलियाँ 90–95 दिन में पहली तुड़ाई योग्य हो जाती है। इसकी उपज क्षमता 240–290 क्विं./हे. है। इसके बीज भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से प्राप्त कर सकते हैं।

4. जे.डी.एल. 45: इसकी फलियाँ अपेक्षाकृत चौड़ी (4.4–4.8 सें.मी.) लम्बी (11–12 से.मी.), भारी (15–16 ग्रा.), मुलायम, गूदेदार, सफेद होती है। बुआई के 114–118 दिन में इसमें फूल आ जाते हैं तथा 140–145 दिन बाद फलियाँ पहली तुड़ाई योग्य हो जाती हैं। इसकी उपज क्षमता 230–280 क्विं/हे. तक हैं इसके बीज जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर से प्राप्त किए जा सकते हैं।

सेम की प्रकाशकाल संवेदनाहीन उन्नत किस्में जो कि बेमौसमी खेती (गर्मी एवं वर्षा ऋतु) के लिए उपयुक्त हैं, नीचे दी जा रही हैं:

(1) स्वर्ण ऋतुवरः इस लत्तरदार किस्म की गूदेदार फलियाँ हरे रंग की चौड़ी (2.55 से.मी.) एवं 9.85 से.मी. लम्बी होती है। बुआई के 45–50 दिन में इस किस्म में फूल आ जाते हैं तथा 60–65 दिन में फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 120–150 क्विं/हे. है। इसके बीज भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची से प्राप्त किया जा सकते हैं।

(2) एच.ए.डी.बी.–119: इस लत्तरदार किस्म की गूदेदार फलियाँ गहरे हरे रंग की चौड़ी (3.23 से.मी.एवं 12.56 से.मी. लम्बी होती हैं। बुआई के 50–60 दिनों में इस किस्म में फूल आ जाते हैं तथा 70–75 दिन में फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 120–150 क्विं/हे. है। इसके बीज भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची से प्राप्त कर सकते हैं।

(3) एच.ए.डी.बी.–32: इस लत्तरदार किस्म की बीज से भरी हुई गूदेदार फलियाँ हरे रंग की होती हैं। फलियाँ गोल आकार की (1.32 से..मी. चौड़ाई 1.25 से.मी.मोटाई) तथा इनकी लम्बाई 12.99 से.मी. होती है। बुआई के 40–50 दिनों में इस किस्म में फूल आ जाते हैं तथा 60–70 दिनों में फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती हैं। प्रति फली वजन 8.5 से 9 ग्रा. होता है। इस किस्म की उपज क्षमता 120–150 क्विं/हे. है। इसके बीज भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची से प्राप्त कर सकते हैं।

(4) अर्का विजयः इस झाड़ीदार किस्म की फलियाँ हल्के हरे रंग की, चौड़ी एवं 7–9 से.मी.लम्बी होती है। बुआई के 55–60 दिन में इसमें फूल आ जाते हैं तथा 70–75 दिन में फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती है। इस की उपज क्षमता 150–170 क्विं/हे. है। बीजों के लिए भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलूरू से संपर्क किया जा सकता है।

(5) कोंकण भूषणः इस झाड़ीदार किस्म की फलियाँ हल्के हरे रंग की, चौड़ी एवं 9–9.5 से.मी.लम्बी होती है। बुआई के 40–45 दिन में इस किस्म में फूल आ जाते हैं तथा फलियाँ 55–60 दिन में तुड़ाई योग्य हो जाती है। इस की उपज क्षमता 80–110 क्विं/हे. है। इसके बीज कोंकण कृषि विद्यापीठ, दापोली (महाराष्ट्र) से प्राप्त किए जा सकते है।

भूमि का चुनाव

सेम की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है लेकिन जैविक पदार्थ से भरपूर एवं अच्छी जलनिकास वाली बलुई–दुमट मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। झारखण्ड की हल्की मिट्टी सेम की खेती के लिए उपयुक्त है। पानी का जमाव सेम की खेती के लिए अच्छा नहीं होता।

खाद एवं उर्वरक

दलहनी फसल होने के कारण सेम में नाइट्रोजन की कम मात्रा में ही आवश्यकता होती है। फिर भी उन्नत खेती के लिए प्रति हे. 200–250 क्वि. सड़े गोबर की खाद या 20–30 क्वि. केंचुआ खाद खेत की तैयारी के समय डालें। इसके अतिरिक्त 22 कि.ग्रा. यूरिया, 375 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेद तथा 67 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में देना उचित होगा। पुनः 22 कि.ग्रा. यूरिया बुआई के 25–30 दिन बाद खड़ी फसल में (टॉपड्रेसिंग) दे सकते हैं।

बुआई

बेमौसमी बरसाती फसल के लिए उपरोक्त प्रकाशकाल संवेदानहीन किस्मों के लिए बीजों की बुआई मई के पहले सप्ताह में कर देनी चाहिए। शीतकालीन फसल के लिए बीज की बुआई जुलाई के अंतिम सप्ताह से अगस्त के पहले सप्ताह के बीच करनी चाहिए। बरसात के मौसम में बुआई कम ऊँचाई वाली मेड़ों पर पंक्तियों में करना ठीक रहता है। झाड़ीदार किस्मों के लिए लाइन से लाइन की दूरी 60 से.मी. एवं बीज से बीज की दूरी 30 सें.मी. रखना चाहिए। लत्तरदार किस्मों के लिए लाइनों के बीच 1 मीटर एवं पौधों के बीच 75 से.मी.की दूरी होनी चाहिए। बीज 2.0–2.5 सें.मी. गहराई पर बोने चाहिए। एक हेक्टेयर खेत के लिए झाड़ीदार किस्म का 20–25 कि.ग्रा. एवं लत्तरदार किस्म का 8–10 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है।

निकाई–गुड़ाई एवं देख–रेख

बीज के अच्छे अंकुरण के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है

कि बीज की बुआई के समय खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी हो। बुआई के बाद खेत में एक हल्की सिंचाई करनी चाहिए। इससे बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। बरसात के मौसम में यह ध्यान रखने जरूरी होगा कि पौधों की जड़ों के पास पानी का जमाव न हो। जरूरत के अनुसार गर्मी में सत्पाह में दो बार एवं सर्दी में सप्ताह में एक बार पानी देने की आवश्यकता होती है। अच्छी उपज के लिए समय–समय पर निकाई–गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहना चाहिए। बुआई से 25–30 दिन के बाद, निकाई–गुडाई उपरान्त यूरिया एवं केंचुआ खाद से टापड्रेसिंग करके पौधों की जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। तत्पश्चात् एक सिंचाई देनी आवश्यक होगी। जैसे–जैसे पौधे बढ़ने लगते हैं, लत्तरदार सेम में सूखी डाल की झाड़ी लगाना या बांस की खूंटी गाड़कर उसमें लोहे का तार अथवा चीरा हुआ बांस रस्सी में बाँधना आवश्यक होता है। लकड़ी या बॉस की खूंटी गाड़कर उसमें लोहो का तार अथवा चिरा हुआ बांस रस्सी से बॉधना आवश्यक होता है। लकड़ी या बॉस की सहायता से मचान बनाकर भी लत्तर को चढ़ाया जा सकता है। सहारा देने से सेम की फसल से अच्छी पैदावार मिलती है तथा देखभाल में आसानी होती है।

तुड़ाई एवं विपणन

फलियों की तुड़ाई अपरिपक्व अवस्था में की जाती है। फूलआने के लगभग 15 दिन बाद फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती हैं। बेमौसमी किस्मों की फलियाँ जुलाई–अगस्त में बार उपलब्ध हो जाती हैं। फलियाँ की तुड़ाई सुबह या शाम के समय करनी चाहिए, जिससे उन्हें ताजी अवस्था में बाजार ले जा सकें एवं विक्रय मूल्य अधिक मिल सके। तुड़ाई के बाद, बहुत छोटी, अविकसित, टेढ़ी, रोग एवं कीड़ों से आक्रांत फलियों को रंग एवं आकार के अनुसार वर्गीकरण करने के बाद, बॉस की टोकरी या पटसन की बोरी में भरकर स्थानीय बाजार में ले जाना चाहिए। छॅटाई एवं वर्गीकरण करने से उत्पाद को बेचने एवं उचित दाम पाने में सुविधा होती है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

कीटः

1. लाही: ये हरे रंग के, छोटे कीट कोमल पत्तियों, पुष्पवृन्तों एवं फलों से रस चूसते हैं जिसके फलस्वरुप पैदावार काफी घट जाती है एवं फलियाँ बिक्री योग्य नहीं रहतीं। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. का 0.3 मि. ली./ली. या डाइमेथोएट 30 ई.सी. का 1.5 मि.ली./ली. पानी की दर से 7 दिनों के अंतर पर आवश्यकतानुसार एक या दो बार छिड़काव करें। जैविक खेती में इस कीट के नियंत्रण के लिए नीम आधारित कीटनाशक जैसे, नीम का तेल 5 मि.ली./ली. पानी की दर से छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

2. फली छेदकः इस कीट के पिल्लू फूलों में छेद करते हैं एवं फलियों में घुसकर कच्चे बीजों को खाकर 10–90: तक क्षति पहुंचाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 0.25 मि.ली. फ्लूबेन्डियामाइड 39.35 एस.सी. (फेम) या 0.25 मि.ली. क्लोरेन्ट्रैनिलीप्रोल 18.5 एस.सी. (कोराजेन) प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि क्षति की मात्रा एक फली प्रति पुष्पवृन्त से ज्यादा हो तो पहले छिड़काव फूलों की कली आने के समय एवं दूसरा छिड़काव फली के बढ़ने के समय करना चाहिए। छिड़काव के बाद 7–8 दिन तक फली खाने के लिए नहीं तोड़नी चाहिए।

3. रोयेंदार पिल्लू: ये कीट पत्तियों की निचली सतह पर रहते हैं तथा पत्तियों के हरे अंश को खाकर उन्हें जालीदार बना देते हैं। नियंत्रण के लिए आक्रान्त पत्तियों को सावधानी से तोड़कर पिल्लुओं को मार देना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर 1.0 मि.ली. लैम्बडा साइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. (कराटे) या 0.25 मि.ली. क्लोरेन्ट्रैनिलीप्रोल 18.5 एस.सी. (कोराजेन) प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना उचित होगा। जैविक कीटनाशक डेल्फिन (बी.टी.) 1 ग्राम प्रति ली. का छिड़काव लाभकारी पाया गया है।

4. लाल मकड़ी (माइट): पत्तियों की निचली सतह पर बहुत छोटे, पीले व लाल रंग के शिशु व प्रौढ़ जाला बनाकर रहते हैं। इनके रस चूसने से पत्तों पर बारीक सफेद धब्बे बन जाते हैं। पौधा कमजोर हो जाता है एवं फूल बनने में बाधा पड़ती है। इसका प्रकोप शुष्क मौसम में ज्यादा होता है। नियंत्रण के लिए प्रौपरजाइट 57% (ओमाइट) 2.0 मि.ली. या स्पाइरोमेसीफेन 240 एस.सी. (ओबेरॉन) 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। नियंत्रण न होने पर एक छिड़काव पुनः किया जा सकता है।

जैविक आधारित खेती में कीट प्रबंधन हेतु नीम की खली (10 क्विं./हे.) का प्रयोग किया जा सकता है। इससे कीट एवं पोषक तत्वों का प्रबंधन अच्छी तरह से होता है। इसके

अतिरिक्त यदि कीटों का प्रकोप खड़ी फसल में ज्यादा हो तो 40 ग्राम नीम के बीज का चूर्ण रात भर पानी में भिगोकर छान लें एवं इसे 1 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है।

रोग

1. सर्कोस्पोरा पर्णदाग: इस बीमारी से सेम की पत्तियों पर भूरे मध्यभाग व लाल रंग के किनारेवाले गोल या कोणाकार धब्बे बनते हैं जो बाद में पूरी पत्ती में फैल जाते हैं। रोकथाम के लिए डाईथेन एम–45 या ब्लूकॉपर दवा 2 ग्रा./लीटर पानी में घोलकर 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

2. एन्थ्रेक्नोज: इस रोग के प्रकोप के फलस्वरुप तनों, फलियों तथा पत्तियों पर गोल से अण्डाकार धँसे हुए धब्बे दिखाई पड़ते हैं। पत्तियाँ झड़ जाती हैं और बीज रोगग्रस्त हो जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु 2.0 ग्राम प्रोपिनेब 70% डब्ल्यू.पी. (एन्ट्राकोल) या क्लोरोथैलोनिल 75% डब्ल्यू.पी. (कवच) का प्रति ली. पानी की दर से 10 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

3. चूर्णिल फफूँदी: रोगग्रस्त पत्तियों एवं तने पर सफेद रंग का चूर्ण दिखाई देता है एवं प्रभावित पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं। नियंत्रण के लिए हेक्साकोनाजोल 5 ई.सी. 1.5 मि. ली. या घुलनशील गंधक 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

4. पीला मोजैक: इस विषाणुजनित बीमारी से पत्तियाँ के बीच में चमकीले पीले भाग बन जाते हैं। पत्तियों का पूर्ण रूप से विकास एवं पौधों की बढ़वार रुक जाती है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए रोगग्रस्त पौधों को शीघ्र उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। रोग का प्रसार कम करने के लिए डाइमेथोएट 30 ई.सी. का 1.5 मि.ली. या एसीटैमीप्रिड 20 एस.पी. का 0.4 ग्रा. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

बेमौसमी बरसाती सेम (एच.ए.डी.बी.–32) की खेती से प्राप्त आय का ब्योरा

राँची जिले के इटकी, नगड़ी, बेड़ो एवं मांडर प्रखंड के 20 प्रगतिषील किसानों द्वारा वर्ष 2020–21 एवं 2021–22 में लगभग 1 हेक्टेयर के क्षेत्र में सेम की खेती की गई। इससे प्राप्त आय का ब्योरा निम्नांकित है:

क्र.	मानदंड	वर्ष 2020–21	वर्ष 2021–22
1	तकनीक के प्रसार में सहभागी कृषकों की संख्या	5	20
2	तकनीक के अंतर्गत कुल आच्छादित क्षेत्र	0.12 हे.	1 हे.
3	उपज	116 क्विंटल/हे.	127 क्विंटल/हे.
4	लागत (रु./हे.)	रु.1,14,300/–	रु.1,01,600/–
5	औसत सकल आय (रु./हे.)	रु.6,38,000/–	रु.6,98,500/–
6	औसत शुद्ध आय (रु./हे.)	रु.5,23,700/–	रु.5,96,900/–
7	सेम की फली की विक्रय दर	50–60 रु./कि.ग्रा.	50–60 रु./कि.ग्रा.

इस प्रकार हम पाते हैं कि सेम की खेती से कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। किसान शीत ऋतु के अतिरिक्त वर्षा ऋतु में बेमौसमी सेम की खेती द्वारा अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। यह पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ–साथ पोषण सुरक्षा का सशक्त माध्यम है।

आनुवंशिकी स्तर पर दूध की गुणवत्ता एवं उसका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

● सूर्यमणि कुमार एवं संजीव कुमार
संजय गांधी डेयरी प्रौद्योगिकी संस्थान, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

दूध को एक संपूर्ण पौष्टिक आहार माना जाता है, जिसे नवजात शिशु के साथ–साथ हर वर्ग के लोगों को उपयुक्त पौष्टिकता प्रदान करता है। दूध कैल्शियम और प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है इसके अलावा इसमें और भी तत्व पाए जाते हैं, जैसे लैक्टोज, वसा, विटामिन्स और खनिज–लवण। दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन दो प्रकार के होते हैं, वेह (whey) प्रोटीन और केसीन (casein) प्रोटीन। केसीन प्रोटीन कुल प्रोटीन का 80% होता है, पुनः केसीन प्रोटीन भी दो तरह एक अल्फा केसीन और दूसरा बीटा केसीन में विभाजित होता है । अगर हम पुनः बीटा केसीन की बात करें तो वो भी दो रूपों में पाया जाता है एक A1 और दूसरा A2 । अब आईये जानते है, कि A1 और A2 दूध में क्या होता है, और इनमें क्या अंतर है?

A1 और A2 दूध के विभिन्न पहलु

बाजार में दोनों A1 और A2 दूध उपलब्ध है। A1 दूध A1 किस्म की गाय और A2 दूध A2 किस्म की गाय या अन्य दुधारू पशु देती है। आजकल, भारत समेत दुनिया भर में बहुतायत मात्रा में लोग A1 दूध का ही सेवन कर रहे है क्योंकि भारत समेत दुनिया भर में में पायी जाने वाली गायों में सबसे अधिक A1 दूध देने वाली गाय शामिल हैद्य यह गाय बाहर के देशो में भी बहुत अधिक पायी जाती हैं, जिसे हाइब्रिड या संकर नस्ल गाय के नाम से जाना जाता हैं।

A1 दूध देने वाली गाय के दूध में एक अलग प्रकार का अमीनो एसिड (Amino acid) पाया जाता है, जिसे हिस्टीडाईन (HIS) कहते हैं। A1 दूध विदेशी या संकर नस्ल की गायों जैसे जर्सी, होल्स्टीन और फ्राइजियन गायों (चित्र सं. 1) से प्राप्त दूध को A1 दूध कहा जाता है क्योंकि इस तरह के दूध में A1 बीटा केसीन प्रोटीन पाया जाता है जिस कारण इसका नाम A1 दूध पड़ा है। जबकि भारतीय नस्ल की गायों एवं भैंसों जैसे साहीवाल, गिर, लाल सिंधी, मुर्रा, नीली, जफ्राबादी (चित्र सं. 2) आदि से प्राप्त किया गया दूध A2 दूध की श्रेणी में आता है। इस दूध में A2 बीटा केसीन प्रोटीन पाया जाता है जिस वजह से इसका नाम A2 दूध रखा गया है। उसमें केसीन प्रोटीन के साथ–साथ एक खास प्रकार का अमीनो एसिड भी निकलता है, जिसे हम प्रोलीन कहते हैं। दूध में उपस्थित प्रोटीन पेप्टाइड्स में परिवर्तित होता है, बाद में यह अमीनो एसिड्स का स्वरूप लेता है। यह अमीनो एसिड हमारी सेहत के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है, परन्तु ये अमीनो एसिड सिर्फ A2 गाय के दूध में पाया जाता है। प्रोलीन हमारे शरीर में BCM 7 को पहुंचने में रोक लगाने का काम करता है।

चित्र संख्या 1 : संकर नस्ल की गाय

चित्र संख्या 2 : उन्नत देशी नस्ल की गाय

ओपीओइड पेप्टाइड (BCM 7) क्या है?

BCM 7 एक छोटा सा प्रोटीन होता है, जिसे ओपीओइड पेप्टाइड कहा जाता है। यह ऐसा प्रोटीन होता है, जो हमारे शरीर में अच्छी तरह से पच नहीं पाता है। जिससे हमारे शरीर में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होने लगती है। BCM 7 पर की गई शोध में शोधकर्ताओं ने पता लगाया कि, A2 दूध को पचाना आसान होता है । A1 बीटा केसीन वाले दूध में ज्यादा मात्रा में BCM 7 होता है। यदि यह दूध बच्चों को दिया जाए तो उनमें मधुमेह की समस्या होनें की संभावना बढ़ जाती है। इस बात की पूरी जानकारी लेने के लिए भारत में राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल (चित्र सं. 4) समेत दुनिया के अन्य देशों जैसे स्कॅन्डिनेवियन और नीदरलैंड में शोधकर्ताओं ने इस पर शोध की है, जिससे पाया गया कि, BCM 7 स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। रूस के शोधकर्ताओं के अनुसार BCM 7 बच्चों के रक्त में मिल कर मस्तिष्क में होने वाले विकास को भी कुछ हद तक बाधाएं पैदा करता है।

A1 दूध का स्वास्थ्य पर प्रभाव

- A1 दूध स्वास्थ्य पर कई तरह से प्रभाव पैदा करता है। इसमें मौजूद BCM–7 या बीटा केशोमोर्फिन–7 की उपस्थिति केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर मॉर्फिन जैसे प्रभाव को पैदा करती है। एक बार जो भी इसका सेवन करता है उसे उसका सेवन का आदत हो सकता है और ये तंत्रिका विकार के लिए भी जिम्मेदार हो सकता है। साथ ही ये हमारी सीखने की क्षमता को भी प्रभावित कर सकता है।
- A1 दूध में उच्च लैक्टोज इंटोलरेंस पाई जाती है जो मनुष्यों की गट यानी आंत में हानिकारक जीवाणु के विकास को बढ़ावा दे सकते है और इसे पीने से बच्चों की इम्यूनिटी भी कम हो जाती है।
- A1 दूध के सेवन से आंतरिक हार्मोनल प्रणाली पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इसके सेवन से टाइप 1 मधुमेह और दिल की बीमारी का जोखिम भी बढ़ सकता है।
- A1 दूध में हिस्टामाइन भी होता है जो बच्चों में त्वचा एलर्जी, बहती नाक, अस्थमा और खांसी का कारण बन सकता है। इस दूध में लिपिड भी होते हैं जो बच्चों के चयापचय को प्रभावित कर सकते हैं।

यहां तक कि ये मिल्क बच्चों में मधुमेह और मोटापे जैसे दीर्घकालिक जोखिम को भी पैदा कर सकता है।

A2 दूध का स्वास्थ्य पर प्रभाव

- A2 टाइप के दूध के सेवन से कई स्वास्थ्य लाभ मिलते हैं, क्योंकि यह बेहतर प्रतिरक्षा यानी इम्यूनिटी को बूस्ट करता है।
- A2 दूध में प्रोलाइन की उपस्थिति बीटा कैसोमोर्फिन –7 को हमारे शरीर तक पहुंचने से रोकने में मदद करती है, साथ ही ऑटिज्म और न्यूरो विकारों जैसी पुरानी बीमारियों से भी बचाव करती है।
- A2 दूध के प्रकार में ओमेगा –3 फैटी एसिड होता है जो कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त इसमें मौजूद पोटेशियम से ब्लड शुगर लेवल को भी कंट्रोल करने में मदद मिलती है।

इस प्रकार के दूध में विटामिन ए होता है जिससे ये आंखों की सेहत के लिए लाभकारी है। आंखों की रोशनी बढ़ाता है और मोतियाबिंद जैसी समस्याओं को रोकता है।

निष्कर्ष:

वैज्ञानिकों का मानना है कि A2 किस्म का दूध, A1 की तुलना में ज्यादा लाभकारी होता है। A2 दूध देसी नस्ल की गाय से प्राप्त किया जाता है जो कि ताजी और हरी घास खाती हैं। इसमें A1 की अपेक्षा प्रोटीन और पोषक तत्व अधिक होते हैं।

इस तरह का दूध डायबिटिज,हृदय रोग एवं न्यूरोलॉजीकल डिसऑर्डर जैसी समस्याओं से मानवों का बचाव करता है और इम्यूनिटी को बढ़ाता है। वहीं, A2 को लेकर शोधकर्ताओं का कहना है कि लंबे समय तक A1 टाइप का दूध पीने से कई तरह की स्वास्थ्य समस्यांओं का जोखिम बढ़ जाता है।

कृषि प्रगति के पर्यावरणीय प्रभाव

● वेद प्रकाश, आशुतोष उपाध्याय, अकरम अहमद, कीर्ति सौरभ, पवन जीत, अभिषेक कुमार एवं सोनका घोष

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दुनिया के अधिकांश लोगों को रोजगार, भोजन और जीवन की आवश्यकताएं प्रदान करने के लिए सैकड़ों वर्षों से कृषि का अभ्यास किया जा रहा है। भोजन की बढ़ती मांग के साथ, कृषि भी फल–फूल रही है और धीरे–धीरे कृषि भूमि की मांग बढ़ रही है। हालांकि, कृषि के सकारात्मक पहलुओं के अलावा, पर्यावरण पर कृषि के कई नकारात्मक प्रभाव हैं जो एक स्थायी पर्यावरण के लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर रहे हैं। विश्व स्तर पर, कृषि उच्चतम रोजगार दर वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है। हालाँकि, यह अभी भी पर्यावरणीय क्षरण के बड़े जोखिमों के साथ आता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि आधुनिक कृषि ने न केवल भोजन की सामर्थ्य तथा जैव ईंधन का उत्पादन को बढाया है लेकिन साथ–साथ ही हमारी पर्यावरणीय समस्याओं को भी बढाया है क्योंकि इस कृषि पद्दति में ज्यादा उपज देने वाली विविधता के संकर बीज और प्रचुर मात्रा में सिंचाई जल, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग होता है। पारंपरिक कृषि में, किसान पौधों के लिए पोषक तत्वों के प्राकृतिक स्रोत के रूप में गोबर, गोमूत्र अपशिष्ट एवं अन्य डेयरी अपशिष्टों से निर्मित खाद का उपयोग करते थे, जिससे मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व तथा वातावरण से जैविक स्थिरीकरण के माध्यम से अवशोषित पोषक तत्व पौधों को मिल सके। खाद प्रयोग की इस परंपरागत व्यवस्था से यद्यपि कम पैदावार मिलती थी लेकिन मृदा की अंतर्निहित उत्पादकता पर कोई दबाव नहीं था। गहन कृषि से देश में खाद्य उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। आधुनिक कृषि बड़े पैमाने पर अधिक लागत वाले निवेशों जैसे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, उन्नत बीज, सिंचाई और अधिक क्षमता वाली कृषि मशीनरी के उपयोग पर निर्भर करती है। ऐसी उच्च निवेश वाली प्रौद्योगिकियों के प्रयोग ने निस्संदेह कृषि उत्पादन में वृद्धि की है लेकिन रसायनों के अधिक मात्रा में प्रयोग के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। गहन कृषि से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न प्रमुख पर्यावरणीय प्रभाव संदर्भ तालिका 1 में दिए गए हैं ।

विभिन्न कृषि क्रियाकलाप	पर्यावरणीय समस्याएँ
प्राकृतिक वनस्पतियों की कटाई	1. जैव विविधता की हानि 2. जल स्रोतों की कमी 3. परागण में गिरावट 4. क्षेत्रीय जलविज्ञान और स्थानीय जलवायु में असंतुलन 5. ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन एवं वायु प्रदूषण
कृषि अवशेषों को जलाना	1. वायु प्रदूषण 2. जल स्रोतों की प्रदूषण एवम पोषकों का नुकसान
जुताई	1. ऊर्वरक संसाधन का खराब होना 2. मृदा अपरदन 3. परिवर्तित मृदा एवं जीव समूह 4. मृदा बनावट में परिवर्तन 5. मृदा संघनन
सिंचाई	1. प्रदूषित व्युत्क्रमी प्रवाह 2. जलभराव एवं लवणता 3. भूमिगत जल का दूषित होना 4. मृदा अपरदन
कीटनाशक	1. भोजन एवं दूध में कीटनाशकों के अवशेष 2. प्राकृतिक अपमार्जकों (जैसे गिद्ध, आदि) की संख्या में कमी 3. नाशकजीव प्रतिरोधिता
रासायनिक उर्वरक	1. जल विज्ञान चक्र का संदूषण 2. भूमिगत जल में नाइट्रेट एवं फास्फेट 3. सुपोषण (पानी में पादप पोषणों की भरमार की स्थिति) 4. ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 5. धातुओं का भारी जमाव 6. मृदा स्वास्थ्य में गिरावट

तालिका – 1 गहन कृषि के क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ

आधुनिक कृषि के कारण प्रकृति के सभी तीन महत्वपूर्ण घटक अर्थात वायु, जल और मृदा प्रदूषित हो सकते हैं । किंतु विस्तार के आधार पर इन घटकों के प्रदूषण की विशेषताएँ अलग–अलग हैं। वायु प्रदूषण का विस्तार

वैश्विक है जबकि जल और मृदा प्रदूषण का विस्तार क्षेत्रीय और स्थानीय हैं। आधुनिक कृषि कैसे पर्यावरण पर प्रभाव डालती है नीचे चर्चा की गई है:

1. जैव विविधता का ह्रास और जलवायु परिवर्तन

दुनिया में कई अलग–अलग कृषि–जलवायु स्थितियां हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के पौधे और जानवर रहते हैं। कृषि के बढ़ते व्यावसायीकरण के कारण, धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार के पौधे और जानवर लुप्तप्राय या विलुप्त हो रहे हैं। किसान अधिक लाभ के लिए अधिक उपज देने वाली फसलों की खेती को प्राथमिकता दे रहे हैं जिससे कम लाभ वाली फसलों की खेती में गिरावट आ रही है जिसके परिणामस्वरूप कई देशी प्रजातियों का नुकसान हो रहा है। जैव विविधता कई अलग–अलग तरीकों से उत्पादन का समर्थन करके कृषि विकास में योगदान करती है। उदाहरण के लिए:

- केंचुए प्राकृतिक कृषक के रूप में कार्य कर सकते हैं।
- मधुमक्खियां अधिक परागण और निषेचन में मदद कर सकती हैं। पक्षी और मकड़ियाँ जैविक नियंत्रण के रूप में कार्य कर सकते हैं।

"बेहतर उत्पादकता के लिए किसान बार–बार कृषि भूमि पर जुताई की पद्धिति का उपयोग करते हैं जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी का आवरण नष्ट हो जाता है, जो सौर विकिरण, गर्मी और प्रकाश के प्रति पृथ्वी की क्षमता को प्रभावित करता है"

2. वनों की कटाई एवं मिट्टी का क्षरण

वनों की कटाई से दुनिया के जंगलों की बड़े पैमाने पर सफाई और कटाई होती है जो अंततः आवास को बहुत नुकसान पहुंचाती है। वनों की कटाई का एक प्रमुख कारण कृषि है, क्योंकि भोजन की बढ़ती मांग के साथ, चारागाहों या फसलों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, इसलिए तेजी से वनों की कटाई हो रही है। वनों की कटाई के प्रमुख कारण:

- जनसंख्या का दबाव: ईंधन, लकड़ी और भोजन की मांग में वृद्धि।
- खराब नियोजित विकास परियोजनाएं।
- बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग के कारण अप्रत्याशित जंगल की आग।
- कम वनीकरण गतिविधियाँ।

3. कीटनाशकों का अत्याधिक उपयोग

फसल कटाई के पैटर्न में बदलाव, सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि और खेती की अधिक तीव्रता के कारण कीटों की समस्या दिन–ब–दिन गंभीर होती जा रही है। कीटों की गंभीरता में वृद्धि का एक प्रमुख कारण कीटनाशकों का अनियंत्रित उपयोग है। कीट उपलब्ध कीटनाशकों के प्रतिरोधी होते जा रहे हैं और अधिक हानिकारक प्रभावों के साथ लौट रहे हैं। निवास स्थान के नुकसान और बदलती जलवायु के कारण पक्षियों और कीड़ों की आबादी में काफी गिरावट आई है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक जैविक नियंत्रण की कमी है। खतरनाक कीटनाशकों के उच्च और अनियंत्रित उपयोग का किसानों, उपभोक्ताओं और पशु स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, अवशिष्ट कीटनाशक मनुष्यों और जानवरों के लिए अधिक खतरनाक हैं और गंभीर स्वास्थ्य जोखिम पैदा करते हैं।

4. औद्योगिक और कृषि अपशिष्ट

पर्यावरण पर कृषि के कई नकारात्मक प्रभावों में से, औद्योगिक और कृषि अपशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्र और मनुष्यों के लिए सबसे खतरनाक और हानिकारक है। कई फसलों जैसे चावल के भूसे और पतवार के कृषि अवशेष, अनुचित संचालन के कारण कृषि अपशिष्ट के रूप में कार्य करते हैं। इस कचरे को हटाने के लिए किसान आमतौर पर जलाने के तरीकों का अभ्यास करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हवा में उच्च CO_2 और CO स्तर का उत्पादन होता है, जिससे मनुष्यों और जानवरों में श्वसन संबंधी गंभीर समस्याएं होती हैं। मछली पकड़ने, मुर्गी पालन, डेयरी, आदि जैसे उद्यमों द्वारा उप–उत्पादों के प्रसंस्करण के साथ–साथ जैविक पदार्थों को बनाए रखने के लिए जुताई के माध्यम से कृषि अपशिष्ट को पुनर्नवीनीकरण करने की आवश्यकता है। कृषि में मशीनीकरण के उपयोग से कई नकारात्मक पारिस्थितिक प्रभाव भी पड़ते हैं क्योंकि उनके प्रभावी अनुप्रयोग के लिए उन्हें बिजली, डीजल, गैसोलीन आदि जैसे कई संसाधनों की भी आवश्यकता होती है, जो धुएं, हानि और उच्च कीमतों में समाप्त होते हैं। उर्वरक उद्योगों से होने वाला प्रदूषण भी हवा और पानी को दूषित कर रहा है जो किसी देश की पारिस्थितिक प्रणाली को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। यह गैर–अपघट्य अपशिष्ट पौधों और जानवरों, विशेष रूप से जलीय जीवन में विषाक्तता का कारण बनता है, और मिट्टी के पोषक तत्वों को भी असंतुलित करता है।

5. पानी की खपत (सिंचाई) एवं पशुधन चराई

कई कृषक मानते हैं कि सिंचाई पर्यावरण पर कृषि के कई नकारात्मक प्रभावों का आधार है। पानी की कमी के अलावा, कई अन्य नकारात्मक प्रभाव भी सिंचाई से जुड़े होते हैं जैसे, लवणता, जलभराव, अवायवीय अपघटन में वृद्धि, पौधों की जड़ों को जहर देना और पौधों की उपज कम होना। अत्यधिक सिंचाई से वाष्पीकरण में वृद्धि होती है, जो वायुमंडलीय तापमान और दबाव दोनों को प्रभावित करती है। अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि कृषि भूमि की सिंचाई न केवल सिंचित क्षेत्रों में बल्कि हजारों किलोमीटर दूर भी वर्षा के वितरण को प्रभावित कर सकती है। सिंचाई से जुड़ी समस्याएं:

- ❖ जलाशयों में प्रदूषित जल का रिसाव।
- ❖ जलाशयों का कमी।
- ❖ अवशिष्ट रसायनों और अपशिष्टों के कारण जल संदूषण।
- ❖ जल भराव।

अधिकांश कृषि भूमि का उपयोग मुख्य रूप से चारागाह के रूप में किया जाता है। पश्चिमी अमेरिका में, इस उद्देश्य के लिए सैकड़ों–लाखों एकड़ जमीन आरक्षित है–किसी भी अन्य की तुलना में बहुत अधिक। वैश्विक ग्रीनहाउस गैसों, विशेष रूप से मीथेन के अधिकांश उत्सर्जन के लिए खेत के जानवर जिम्मेदार हैं। पशुधन चराई पर्यावरण पर कृषि के मूल नकारात्मक प्रभावों में से एक है। इसके अलावा, स्थायी पर्यावरण के लिए अतिचारण भी एक गंभीर समस्या है। यह भी माना जाता है कि मवेशियों और अन्य जानवरों द्वारा जमीन को कुचलने से ऊपरी मिट्टी नष्ट हो जाती है और पानी और हवा के क्षरण के कारण पोषक तत्वों का प्रवाह होता है। यह भी बताया गया है कि धाराओं को पार करते समय, धारा में मवेशियों के उत्सर्जन की संभावना भूमि की तुलना में 50 गुना अधिक होती है।

6. रासायनिक उर्वरक

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कृषि में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस युक्त सिंथेटिक उर्वरकों के उपयोग ने अधिक लोकप्रियता हासिल की और आधुनिक कृषि में, इसने कृषि पद्धतियों के बीच एक केंद्रीय स्थान प्राप्त किया। सिंथेटिक उर्वरक मक्का, चावल, गेहूं और अन्य अनाज की खेती के लिए बहुत प्रभावी साबित हुए और वास्तविक उपज में सुधार हुआ। आज चीन विश्व में नाइट्रोजन उर्वरक का प्रमुख उत्पादक है। निस्संदेह रसायनों ने किसानों को उपज दोगुनी करने में मदद की, लेकिन यह पर्यावरण के लिए प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन का मुख्य योगदानकर्ता भी है। फास्फोरस और नाइट्रोजन के अत्यधिक जमाव ने कभी मूल्यवान पोषक तत्वों को जहर में बदल दिया है। उर्वरकों में निहित नाइट्रोजन का लगभग आधा हिस्सा उन क्षेत्रों को छोड़ देता है जहां उन्हें लगाया जाता है और हवा, मिट्टी और पानी में समाप्त हो जाता है। और यह वास्तविक समस्या है जहाँ से पर्यावरण पर कृषि के नकारात्मक प्रभाव शुरू होते हैं। यूट्रोफिकेशन जमा फास्फोरस और नाइट्रोजन के दुष्प्रभावों में से एक है। ये प्रदूषक चीन, अमेरिका और अन्य झीलों में जहरीले अल्गल–खिलने के विकास में भी योगदान दे रहे हैं। भूमि और जल संचित नाइट्रोजन भी देशी जैव विविधता और प्राकृतिक आवासों के स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा है। सिंथेटिक उर्वरकों के उपयोग से होने वाली प्रमुख समस्याओं में शामिल हैं:

- ❖ जल विज्ञान चक्र का संदूषण
- ❖ मिट्टी का प्रदूषण
- ❖ जैव विविधता और आवास को नुकसान

7. प्रदूषण

कृषि कई देशों में प्रदूषण का प्रमुख स्रोत है। कीटनाशक, उर्वरक और अन्य जहरीले कृषि रसायन ताजे पानी, समुद्री पारिस्थितिक तंत्र, हवा और मिट्टी को जहर दे सकते हैं। मांस की दुकानें, डेयरियां, चर्मशोधन संयंत्र, उर्वरक संयंत्र, मवेशी यार्ड और कई अन्य प्रकार के खेत जलग्रहण क्षेत्रों को दूषित करने और प्रदूषकों को प्राकृतिक संसाधनों में छोड़ने के लिए उच्च जोखिम वाले कारक हैं। पुराने समय में, किसान जलमार्गों में अपशिष्ट का निपटान करते थे जिससे गंभीर जल और भूमि प्रदूषण होता है। आज, बिंदु स्रोत प्रदूषण केवल 3.2% और कुल नाइट्रोजन और फास्फोरस अपवाह का 1.8% है।

गैर–बिंदु स्रोत से प्रदूषण विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से उत्पन्न होता है जो एक स्रोत से संबद्ध नहीं होते हैं, जिससे उनका विनियमन कठिन हो जाता है। विसरित प्रदूषक भूमि अपवाह के माध्यम से जल में प्रवेश करते हैं, पशु संदूषण और लीचिंग। कृषि में प्रदूषकों की रिहाई से उत्पन्न होने वाली समस्याएं नीचे सूचीबद्ध हैं:

- ❖ मिट्टी दूषण एवं वायु प्रदुषण
- ❖ कीटनाशकों के अवशेष एवं कीटनाशक बहाव

- ❖ लाभकारी कीड़ों को नुकसान
- ❖ जैव उपचार में गिरावट
- ❖ परागण में गिरावट

निष्कर्ष

पिछली कुछ दशकों के दौरान कृषि प्रगति की उपलब्धि के देश की प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनो प्रभाव हुए। इनमें से बहुत से तो कृषि वृद्धि बढ़ाने के लिए अपनाई गई नीति के प्रत्यक्ष परिणाम हैं। कृषि हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है, लेकिन आधुनिक कृषि पद्धतियां पर्यावरण और प्राकृतिक आवासों पर कृषि के कई नकारात्मक प्रभाव पैदा करती हैं। कृषि के लिए जंगलों की सफाई पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट कर रही है और वैश्विक जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा दे रही है। उन कारकों में, जिन्होंने पर्यावरण पर इस प्रतिकूल प्रभाव में योगदान किया है, वनों की कटाई, सघन कृषि क्रियाएँ है तो दूसरी ओर अजैव उवर्रकों, परजीवीनाशियों, नई किस्म के बीजों आदि का सघन प्रयोग गिनाए जा सकते हैं। विशेषकर भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्थाओं के संबंध में धारणीय कृषि क्रियाओं के अपनाने पर सामूहिक सहभागिता स्थापित करने के लिए रणनीतियों का पुनर्भिविन्यास करना आवश्यक है।

खरपतवार प्रबंधन में नैनो टेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग

• सोनका घोष, कीर्ति सौरभ, शिवानी, मणिभूषण, वेद प्रकाश एवं आशुतोष उपाध्याय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दुनिया में 2050 की आबादी 9.7 अरब से अधिक होने की उम्मीद है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों, मिट्टी के कटाव और फसल पूर्व नुकसान के साथ, भविष्य में टिकाऊ कृषि पद्धतियों को विकसित करने का दबाव और बढ़ जाएगा। खाद्य उत्पादन में सुधार के लिए कृषि रसायनों का लगातार उपयोग किया जाता रहा है। इनके अंधाधुंध प्रयोग से सार्वजनिक स्वास्थ्य को नुकसान होता है और पर्यावरण प्रदुषित होता है। वर्तमान परिदृश्य में दुनिया भर में खाद्य उत्पादन के लिए सालाना लगभग 4 मिलियन टन कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है, जिनमें से 40% शाकनाशी, 30% कीटनाशक और 20% कवकनाशी हैं। खरपतवारों के कारण उपज में होने वाली हानि फसल उत्पादन और किसानों की आर्थिक खुशहाली के लिए एक बड़ा खतरा है। अधिक फसल उपज के अलावा बेहतर गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए बेहतर खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण के स्थान पर बड़े पैमाने पर रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के कारण मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट आई है। सबसे प्रभावशाली शाकनाशी वे हैं जो ज्यादा से ज्यादा खरपतवार को नाश कर पर्यावरण को बहुत कम हानि पहुंचाते हैं। दूसरी ओर, कुछ उपलब्ध चुनिंदा शाकनाशियों के निरंतर उपयोग से खरपतवारों में शाकनाशी प्रतिरोध विकसित हो जाता है जिससे कई फसलों में खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण हासिल करना मुश्किल हो जाता है। भारत में अकेले 10 प्रमुख फसलों में खरपतवारों के कारण लगभग 11 बिलियन अमेरिकी डॉलर की कुल वास्तविक आर्थिक हानि का अनुमान लगाया गया था, जिसमें चावल के लिए 4420 मिलियन अमेरिकी डॉलर, गेहूं के लिए 3376 मिलियन अमेरिकी डॉलर और सोयाबीन के लिए 1559 मिलियन अमेरिकी डॉलर का नुकसान हुआ। अकेले या भौतिक, परंपरागत और जैविक तरीकों के साथ एकीकरण करके खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए शाकनाशी प्रभावी प्रबंधन उपकरणों में से एक है। लेकिन शाकनाशियों पर अत्यधिक निर्भरता से पर्यावरण, जीव–जंतु, मिट्टी और जल निकायों के प्रदूषण और शाकनाशी–प्रतिरोधी खरपतवारों के उद्भव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आजकल, नैनोटेक्नोलॉजी टिकाऊ कृषि विकास के लिए एक नवीन दिशा का प्रतिनिधित्व करती है। नैनोटेक्नोलॉजी नैनो–स्केल सामग्रियों को बदलने का विज्ञान है और कृषि उद्योग में इसके व्यापक उपयोग हैं। नैनोटेक्नोलॉजी अपनी दक्षता में वृद्धि करते हुए शाकनाशियों और कीटनाशकों के उपयोग को कम करके मौजूदा कृषि चुनौतियों का बेहतर विकल्प बन सकती है। नैनोटेक्नोलॉजी 100 नैनोमीटर से कम पैमाने वाली सामग्रियों, प्रणालियों और प्रक्रियाओं को संदर्भित करती है। नैनो–कणों का आकार एक आयाम में 1 – 100 नैनोमीटर तक होता है। कार्बन–आधारित नैनो कण, क्वांटम डॉट्स और नैनोरोड्स, मेटालिक नैनो कण, सिरेमिक नैनो कण, सेमीकंडक्टर नैनो कण, पॉलीमेरिक नैनो कण, लिपिड–आधारित नैनो कण, माइक्रो और नैनो एनकैप्सुलेशन, और नैनो इमल्शन सभी अब उपयोग में आने वाले नैनोमटेरियल के उदाहरण हैं। नैनो–सक्षम शाकनाशी (जिन्हें नैनो हर्बिसाइड्स भी कहा जाता है) को कार्बनिक, अकार्बनिक या संकर सामग्री से डिजाइन किया जा सकता है। इन सामग्रियों में छोटे आकार, विशिष्ट सतह क्षेत्र और कृषि क्षेत्र में धातु आयनों और कार्बनिक अणुओं की रिलीज को नियंत्रित करने की क्षमता जैसे अद्वितीय गुण होते हैं। कुछ अध्ययनों ने गैर–नैनो फॉर्मूलेशन की तुलना में बेहतर खरपतवार प्रबंधन प्रदान करने के लिए नैनो हर्बिसाइड्स की क्षमता की सूचना दी है।

चित्र संख्या 1 : फसल उत्पादन में नैनोटेकनोलॉजी का अनुप्रयोग

खरपतवार प्रबंधन में नैनोटेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग

नैनो–शाकनाशी के सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले अनुप्रयोगों में से एक खरपतवार बीज बैंक की समाप्ति है। अंकुर को नष्ट करने के बजाय, कार्बन नैनोट्यूब (सीएनटी) खरपतवार के बीजों को मार देते हैं। नैनोहर्बिसाइड्स का उपयोग बारहमासी खरपतवारों के खतरे को दूर करने के लिए भी किया जाता है, जैसे कि प्रकंद और कंद जैसे बारहमासी खरपतवारों के व्यवहार्य भूमिगत पौधों के अंगों को मारकर, जो उन खरपतवारों के तेजी से प्रसार में मदद करते हैं। ZnO नैनोकण मोथा में फेनोलिक यौगिकों को महत्वपूर्ण रूप से विघटित करते हैं। मोथा के कंदों को सूखे रूप में (पाउडर के रूप में) 1500 मिलीग्राम/किलोग्राम और गीले रूप में 2250 मिलीग्राम/किलोग्राम (तरल रूप) की खुराक पर ZnO नैनोकणों से उपचारित करने से फिनोल और जैव रासायनिक घटकों के क्षरण के माध्यम से कंद के अंकुरण पर काफी प्रभाव पड़ता है। शाकनाशी अणुओं से घिरे नैनो–कणों का उपयोग खरपतवार की जड़ों में मौजूद रिसेप्टर्स को लक्षित करने के लिए किया जाता है। मोथा (साइपरस रोटंडस) के कंदों में खाद्य भंडार सिल्वर के नैनोकणों से समाप्त हो जाते हैं। स्टार्च का अपचायी शर्करा में अपघटन सिल्वर के नैनो–कणों के साथ एमाइलेज की परस्पर क्रिया द्वारा होता है। नैनोमटेरियल एपोप्लास्टिक और/या सिम्प्लास्टिक पथों के साथ–साथ एक से दूसरे में स्विच करने के लिए रेडियल मूवमेंट का उपयोग करके पौधे के ऊपर और नीचे जा सकते हैं। नैनो–एनकैप्सुलेटेड हर्बिसाइड्स का नियंत्रित विमोचन उपयोगी है क्योंकि नैनो–एनकैप्सुलेटेड हर्बिसाइड्स का वर्षा आधारित खेती में पर्याप्त नमी प्राप्त करने पर फैलाव पर प्रभाव पड़ेगा। बारिश होने पर, नए शाकनाशी अणुओं के तुरंत निकलने से खरपतवार के बीज मर जाते हैं। नैनोस्ट्रक्चर को विशिष्ट साइटों को लक्षित करने के लिए स्मार्ट डिलीवरी सिस्टम के रूप में और नियंत्रित शाकनाशी रिलीज के लिए नैनोकैरियर के रूप में विकसित किया गया है। नैनोटेक्नोलॉजी अल्प से मध्यम अवधि में मौजूदा फसल प्रबंधन तकनीकों में सुधार कर सकती है। परजीवी खरपतवारों के विरुद्ध नैनो कैप्सूल के रूप में प्रणालीगत शाकनाशियों का उपयोग करने से फसल पर फाइटोटॉक्सिसिटी से बचने में मदद मिलेगी। नैनोएनकैप्सुलेशन शाकनाशी अनुप्रयोग में भी सुधार कर सकता है, क्यूटिकल्स और ऊतकों के माध्यम से बेहतर प्रवेश प्रदान करता है और सक्रिय पदार्थों को धीमी और निरंतर रिहाई की अनुमति देता है। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी में एट्राजिन के फाइटोटॉक्सिक संचय में शानदार कमी आती है, साथ ही शाकनाशी गतिविधि भी बढ़ जाती है। नैनोहर्बिसाइड्स भारत में विभिन्न प्रकार की खरपतवार प्रजातियों को नष्ट करने में प्रभावी हैं, जिनमें से कुछ में इकाईनोक्लोआ क्रूसगैली, चेनोपोडियम एल्बम, बिडेंस पाइलोसा, ऐमारैंथस विरिडिस और राफानस राफैनिस्ट्रम शामिल हैं।

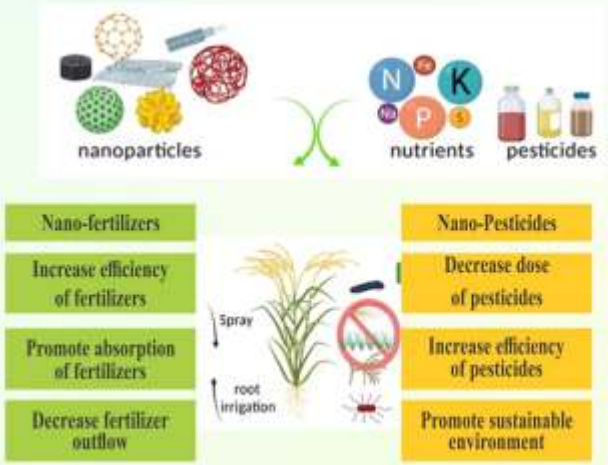

चित्र 2: नैनो–उर्वरक और नैनो–कीटनाशकों का अनुप्रयोग मॉडल (स्रोत: Liu et al., 2021)

खरपतवार प्रबंधन में नैनोटेक्नोलॉजी अनुप्रयोग के लाभ

- यह फसल के नुकसान को कम करने, लागत कम करने, उपज बढ़ाने, इनपुट उपयोग दक्षता और फसल उपज की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करता है।
- यह प्रति हेक्टेयर शाकनाशी अनुप्रयोग दर को कम करने और पर्यावरण प्रदूषण और CO_2 उत्सर्जन को कम करने में मदद करता है।
- बायोपॉलिमर (सेलूलोज और स्टार्च) से संश्लेषित नैनोमटेरियल सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल हैं।
- फाइटोटॉक्सिसिटी को कम करता है।
- यह लक्षित खरपतवारों के प्रति अधिक चयनात्मकता उत्पन्न करता है।
- निलंबन में नैनोकणों की उच्च घुलनशीलता।
- धीमी गति से निकलने वाले नैनो फॉर्मूलेशन के कारण वर्षा आधारित कृषि के तहत जड़ी–बूटियों की प्रभावकारिता बढ़ जाती है।
- उच्च सतह क्षेत्र और बेहतर लक्षित गतिविधि।
- खरपतवारों में बनने वाले प्रतिरोध को रोकता है।

- एनकैप्सुलेटेड नैनो हर्बिसाइड्स के साथ यह मिट्टी में माइक्रोबायोटा के लिए सुरक्षित है।

खरपतवार प्रबंधन में नैनोटेक्नोलॉजी के अनुप्रयोग से जुड़े जोखिम

- खाद्य उत्पादों में नैनोमटेरियल का संचय।
- नैनोमटेरियल्स में उत्पादन की उच्च लागत शामिल होती है।
- Ag, TiO_2 और अन्य नैनोकणों द्वारा गेहूं, जौ और प्याज जैसी फसलों के बीज के अंकुरण, अंकुर और जड़ के विकास में बाधा।
- स्वस्थ मानव त्वचा को छेदने की क्षमता।
- इससे पर्यावरणीय चिंताएं पैदा हो सकती हैं क्योंकि नैनोकण मिट्टी, पानी और पौधों में बने रह सकते हैं, जिससे मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता है।
- नैनो शाकनाशी पौधों में संवहनी बंडल को अवरुद्ध कर सकते हैं और परागण को कम कर सकते हैं।
- फाइटोटॉक्सिसिटी, साइटोटॉक्सिसिटी और जीनोटॉक्सिसिटी।
- कुछ मृदा सूक्ष्मजीव समुदायों और शैवाल पर नैनो सामग्रियों का नकारात्मक प्रभाव।

भारत में नैनो प्रौद्योगिकी पर भविष्य में शोध की आवश्यकताएं

आक्रामक विदेशी खरपतवार कृषि, वानिकी और जलीय पर्यावरण के लिए एक बड़ी बाधा हैं। फसल–विशिष्ट समस्याग्रस्त खरपतवार खेती के लिए खतरा बनकर उभर रहे हैं, जिससे फसल उत्पादन, उत्पाद की गुणवत्ता और किसानों की आय प्रभावित हो रही है। खरपतवार प्रबंधन के लिए उपयोग किए जाने वाले शाकनाशियों की प्रभावकारिता को कृषि क्षेत्रों में नैनोहर्बिसाइड्स के अनुप्रयोग के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है। नैनोमटेरियल्स में शाकनाशी का संपुष्टिकरण इसके निरंतर जारी होने और लक्ष्य खरपतवार के प्रति बढ़ी हुई विशिष्टता के साथ–साथ शाकनाशी के नुकसान को कम करता है। पौधों की प्रणाली, मिट्टी के जीवों और भूजल पर नैनो–शाकनाशी के दीर्घकालिक प्रभाव का आकलन किया जाना चाहिए। पारिस्थितिक रूप से कुशल खरपतवार प्रबंधन प्रथाओं को विकसित करने के लिए पौधों के अर्क, फंगल नैनोटेक्नोलॉजी आदि का उपयोग करके नैनो जैव फॉर्मूलेशन विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण अनुसंधान प्रयास किए जाने चाहिए। मिट्टी और पौधों की प्रणाली में नैनो–शाकनाशी के व्यवहार, ग्रहण के मार्ग और वायुमंडल में प्रवेश का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। व्यापक स्पेक्ट्रम खरपतवार आधारित नैनो फॉर्मूलेशन और यथास्थान कम लागत वाली शाकनाशी अवशेष आकलन प्रक्रियाएं तैयार की जानी चाहिए।

निष्कर्ष

नैनोटेक्नोलॉजी में फसल उत्पादन में क्रांति लाने की क्षमता है। यह उपयोग की जाने वाली हर्बिसाइड्स की मात्रा को कम करके फसल उत्पादकता को बढ़ावा दे सकता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय ग्रीनहाउस गैस पदचिह्न को कम करेगा। खरपतवारों की पुनरावृत्ति और निरंतरता के अतिरिक्त शाकनाशी प्रतिरोधी खरपतवारों की उपस्थिति के खतरे को ध्यान में रखते हुए स्वयं पर्यावरण की रक्षा करते हुए खरपतवार प्रबंधन लागत को कम करके किसानों के लिए लाभ बढ़ाने हेतु नए खरपतवार प्रबंधन दृष्टिकोण विकसित किए जाने चाहिए।

गंडक नदी के दियारा क्षेत्र में कृषि अन्वेषण: मानचित्रण एवं समाधान

●अकरम अहमद, अमिताभ डे, आशुतोष उपाध्याय, रोहन कुमार रमण, मणिभूषण एवं वेद प्रकाश
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दियारा भूमि क्या है?

"दियारा" या "दियारा" समतल, नदी के किनारे क्षेत्रों को सूचित करता है जो सिल्ट के संचय के द्वारा नदी के किनारे बने होते हैं। इन क्षेत्रों की सामान्यतः उर्वर मिट्टी और अक्सर बारिशी अवधियों के लिए जाने जाते हैं, जिससे मिट्टी को पोषित करने में सहारा मिलता है। जब इनमें पानी नहीं होता, तो दियारा भूमि को कृषि के लिए उपयोग किया जाता है। वे कृषि को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों की आजीविका के लिए महत्व रखते हैं।

चित्र 1 : बिहार के हाजीपुर में गंडक नदी पर दियारा भूमि पर खेती

दियारा भूमि का वर्गीकरण

जगहों के आधार पर दियारा भूमि को वर्गीकृत करने पर, दो श्रेणियां सामने आती हैं: ऊंचा दियारा, रुक–रुक कर आने बाली बाढ़ के साथ नदी चैनल से दूर ऊंचे बाढ़ के मैदान; और नदी तल वाला दियारा, नदी चौनल के भीतर बाढ़ के मैदान, बार–बार और तीव्र बाढ़ के अधीन होते हैं, जिससे लगातार तलछट जमा होती रहती है। चित्र 2 बिहार के हाजीपुर में गंडक नदी पर दियारा भूमि को स्पष्ट रूप से ऊपरी भूमि (हरे रंग की सीमा) और नदी के किनारे (पीले रंग की सीमा) को दर्शाता है। चित्र 2 में ट्रांसेक्ट लाइन (लाल रंग) के साथ ऊंचाई विश्लेषण से पता चला है कि नदी तल दियारा की औसत ऊंचाई 49 मीटर है, जबकि अपलैंड दियारा के लिए यह 51 मीटर है।

चित्र 2. गंडक नदी पर हाजीपुर में उपभूमि और नदी तल दियारा

गंडक नदी

गंडक नदी, तिब्बत के ऊंचे इलाकों से निकलकर, नेपाल से होकर बहती है और भारतीय राज्य बिहार में प्रवेश करती है (चित्र 3)। गंगा नदी की एक प्रमुख सहायक नदी के रूप में, यह पटना के पास गंगा में विलीन हो जाती है, और अपने घुमावदार मार्ग से गंगा के मैदानों को आकार देती है। गंडक नदी का कुल बेसिन क्षेत्र 44724 वर्ग कि.मी है, जिसमें से केवल 7260 वर्ग कि.मी बिहार में है।

इस महत्वपूर्ण नदी की उल्लेखनीय सहायक नदियाँ हैं, जिनमें नेपाल में त्रिशूली, सेती गंडकी और काली गंडकी नदियाँ शामिल हैं। गंडक के बाढ़ क्षेत्र, समय–समय पर आने वाली बाढ़ के दौरान उपजाऊ गाद से समृद्ध होकर, क्षेत्र की कृषि उत्पादकता में योगदान करते हैं, खासकर दियारा भूमि जैसे क्षेत्रों में। एक सीमा पार नदी होने के नाते,

गंडक के किनारे स्थायी जल प्रबंधन के लिए भारत और नेपाल के बीच सहयोग और समन्वय महत्वपूर्ण है। संक्षेप में, गंडक नदी जिन क्षेत्रों से होकर गुजरती है वहां के सामाजिक–आर्थिक और पारिस्थितिक पहलुओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

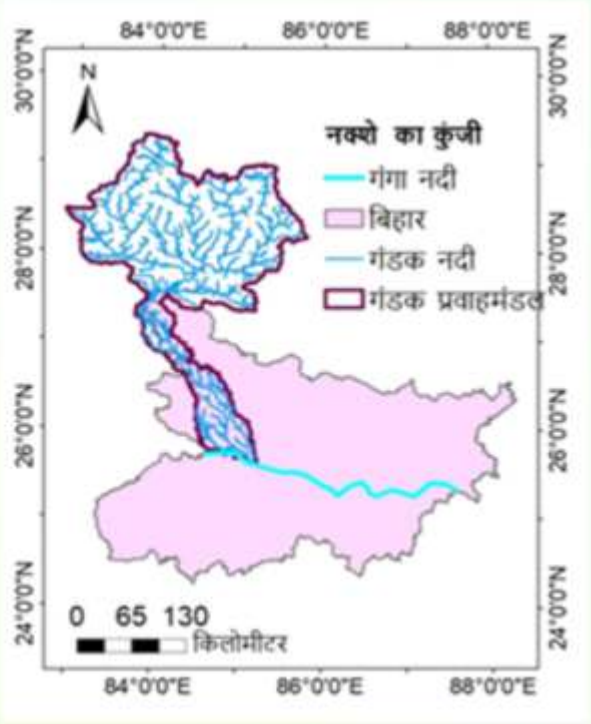

चित्र 3. गंडक नदी, उसकी सहायक नदियाँ और बेसिन क्षेत्र

गंडक दियारा का मानचित्रण एवं उसकी विशेषताएं

गंडक नदी तिब्बत से निकलती है और एक पहाड़ी क्षेत्र के माध्यम से नेपाल के माध्यम से बहती है, जिससे यह अपनी पक्षीय विस्तार की क्षमता को सीमित करती है। इस परिणामस्वरूप, बिहार के बाहर गंडक नदी के किनारों पर कम से कम दियारा भूमि है। जैसे ही नदी बिहार में प्रवेश करती है और मैदानों में बहती है, इसे मैदानी क्षेत्रों में उच्चता में अंतर के कारण अपनी पक्षीय विस्तार को बढ़ाने का अवसर होता है। इसके परिणामस्वरूप, गंडक नदी के साथ दियारा भूमि का साइज बिहार में साकारात्मक रूप से विचारित है।

इस अनुसंधान में, हमने गूगल अर्थ डेटा और भूगोलीय सूचना प्रणाली (जीआईएस) तकनीकों का उपयोग करके गंडक नदी के साथ दियारा भूमि की सीमा का मात्रा मापन किया। बिहार के गंडक नदी के कुल दियारा भूमि का कुल क्षेत्रफल 56,304 हेक्टेयर होना प्रतिष्ठित है। बिहार में गंडक नदी के साथ दियारा भूमि का वितरण चित्र 4 में दिखाया गया है।

गंडक नदी की दियारा भूमि की कई उल्लेखनीय विशेषताएं शामिल हैं:

- अपलैंड दियारा की स्थिर स्थिति के विपरीत, नदी तल वाला दियारा अपने स्थान में वार्षिक बदलाव होता है।
- नदी के किनारे वाले दियारा में मिट्टी की संरचना में ऊपरी दियारा की तुलना में रेत का प्रतिशत काफी अधिक है
- मानसून के महीनों (जून–अक्टूबर) के दौरान, गंडक नदी में दियारा भूमि जलमग्न रहती है (चित्र 5)
- मानसून के महीनों के दौरान किसानों के पास कोई कृषि कार्य नहीं होता है और उनकी आजीविका मुख्य रूप से पशुधन पर निर्भर होती है।

चित्र 4. बिहार में गंडक नदी के किनारे दियारा भूमि

गंडक नदी के दियारा में कृषि पद्धतियाँ

नदी के शुरुआती जल मंदी का लाभ उठाते हुए, नवंबर की शुरुआत में ऊपरी दियारा क्षेत्र में कृषि गतिविधियाँ शुरू हो जाती हैं। नदी बेड दियारा में खेती 20 नवंबर को आरंभ

किया जाता है। अपलैंड दियारा में, गेहूं किसानों द्वारा प्रमुख फसल है, जिसमें सरसों, आलू, और सर्दी के सब्जियां जैसी अन्य फसलें शामिल हैं। उल्टे, नदी बेड दियारा में तरबूज प्रमुख है, जिसमें स्पंज गॉर्ड (नेनुआ) और खीरा जैसी फसलें शामिल हैं। दियारा फसल की ऋतु मई या जून के आरंभ में समाप्त होती है। नदी बेड दियारा में फसलों को ठिठुरन भरी सर्दी से बचाने के लिए किसान फसल को पूरब–पश्चिम दिशा में छपने का उपयोग करते थे। ड्राई खस घास (Chrysopogon zizanioide) है, जो नदी के किनारे पर स्वाभाविक रूप से उगती है।

इसे देखा गया है कि नदी बेड दियारा में, जहां रेत की मात्रा अधिक होती है, किसानों को विशेषता से तरबूज की खेती करना पसंद है। उपलैंड दियारा में, पूर्ववत पाए गए नदी चैनल में छोड़े गए पानी का उपयोग करके पौधों के लिए पहला सिंचाई किया जाता है। जिन किसानों के पास घर में सिंचाई सुविधा होती है, वे दूसरी सिंचाई प्रदान करते हैं, जबकि जिनके पास नहीं होती है, वे शेष मृदा नमी पर आश्रित होते हैं। अपलैंड दियारा में फसलों की पोषण की आवश्यकता फार्म यार्ड मैन्यूअर (FYM) और अविभाज्य उर्वरकों के माध्यम से पूरी होती है।

नदी तल वाले दियारा के मामले में, किसान फसलों के लिए पानी और पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक अनूठी तकनीक का इस्तेमाल करते हैं। रेत की मात्रा अधिक होने के कारण फसलें पानी के प्रति संवेदनशील होती हैं। प्रारंभ में, जब पौधे छोटे होते हैं, तो पानी की जरूरतें नदी के पानी से पूरी की जाती हैं, और मैन्युअल सिंचाई प्रदान की जाती है। प्रत्येक पौधे की पंक्ति के साथ, किसान 10–15 सेमी गहरी नाली खोदते हैं, उसमें उर्वरक (पोल्ट्री खाद और अन्य अकार्बनिक उर्वरक) डालते हैं और मिट्टी में मिलाते हैं। इसका उद्देश्य फसल की जड़ों को चैनल से पोषक तत्व और पानी निकालने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है (चित्र 6)।

चूंकि नदी के किनारे वाले दियारा में भूजल उथला है, खासकर गर्मियों के महीनों के दौरान जब भूजल की गहराई कम हो जाती है, किसान चौनलों को गहरा करते हैं और लगातार उर्वरक डालते हैं, उन्हें मिट्टी में मिलाते हैं। यह जल और पोषक तत्व प्रबंधन प्रक्रिया श्रम–केंद्रित है।

चित्र 6. गंडक नदी में दियारा भूमि पर खेती

दियारा खेती में बाधाएँ

किसानों को महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें जल और पोषक तत्व प्रबंधन के लिए श्रम–केंद्रित प्रथाएं, कृषि कार्यों के लिए सुविधाजनक मशीनरी की कमी और नीलगाय जैसे वन्यजीवों द्वारा उत्पन्न चुनौतियां शामिल हैं।

निष्कर्ष

संक्षेप में, बिहार में गंडक नदी की दियारा भूमि कृषि के लिए महत्वपूर्ण है, जो समय–समय पर आने वाली बाढ़ से समृद्ध उपजाऊ मिट्टी द्वारा चिह्नित है। मानचित्रण में मुख्य रूप से बिहार में 56,304 हेक्टेयर दियारा भूमि की पहचान की गई। कृषि पद्धतियाँ अलग–अलग होती हैं, जिसमें ऊपरी क्षेत्र का दियारा गेहूँ पर और नदी के किनारे का दियारा तरबूज पर केंद्रित होता है। चुनौतियों में श्रम–गहन प्रथाएँ और वन्यजीव हस्तक्षेप शामिल हैं।

टिकाऊ किसान उत्पादक संगठन (एफ पी ओ) का विकास

• वीरेन्द्र कुमार यादव[1], अनिर्बाण मुखर्जी[2], रवि शंकर पान[1], उज्ज्वल कुमार[2], धीरज कुमार सिंह[2], विकास[1], अजित कुमार झा[1], रीना कुमारी कमल[1] एवं अरुण कुमार सिंह[1]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर – कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

किसान अकेले या परिवार के सदस्यों की मदद से खेती करता है। इस कार्य में उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं को कम करने हेतु किसान समूह बनाकर एफ पी ओ बनाते हैं। वर्तमान में देश मे लगभग 8000 एफ पी ओ है। परन्तु अधिकांश एफ पी ओ नवजात है और उनके पेड अप कैपिटल बहुत कम है / अतः ये एफ पी ओ कृषि व्यवसाय आरम्भ भी नही कर पा रहे हैं। इन एफ पी ओ को टिकाऊ बनाने के लिए भारत सरकार नाबार्ड , एस एफ सी आई , एन सी डी सी और नाफेड के माध्यम से अनेक प्रोत्साहन योजनाएँ चला रही है। टिकाऊ विकास के लिए टिकाऊ पारिस्थितिकी तंत्र का होना आवश्यक है। ये एफ पी ओ सशक्त होकर कृषि आधारित व्यवसाय से तथा मूल्य श्रृंखला द्वारा अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं और सदस्यों की आर्थिक सम्पन्नता बढ़ा सकते हैं।

भूमिका

हमारे देश में 92 मिलियन सीमान्त तथा 24 मिलियन लघु किसान हैं। सीमांत एवं लघु किसान की संख्या देश के कुल किसान की संख्या का लगभग 85 प्रतिशत है। परन्तु इनके पास देश के कुल खेती योग्य भूमि का मात्र 44 प्रतिशत है। अधिकतर सीमांत एवं लघु किसान अकेले या अपने परिवार की मदद से इनपुट (बीज,खाद, उर्वरक, पेस्टीसाइड, आदि) की व्यवस्था करके खेत में फसल लगाते हैं और उत्पाद का बिक्री करते हैं। इस क्रम में उन्हें अनेक समस्याओं (गुणवत्ता वाले बीज, खाद, उर्वरक, पेस्टीसाइड आदि का समय पर उपलब्ध नहीं होना, उत्पादन के तकनीकी जानकारियों की कमी, विपणन में बिचौलियों द्वारा अधिक लाभ लेना तथा किसान को उचित कीमत नही मिलना, परिवहन खर्च, भंडारण का अभाव, समय पर श्रमिक का नहीं मिलना, पूँजी का अभाव, मूल्य संवर्धन की जानकारी का आभाव, रख–रखाव में उत्पाद के मूल्य में कमी आदि) का सामना करना पड़ता हैं। अधिकांश किसान परम्परागत तरीके से खेती करते हैं। कुछ किसानों को खेती में घाटा भी सहन करना पड़ता है। कभी–कभी छोटे एवं सीमांत किसान साहूकारों से उच्च ब्याज दर पर ऋण लेकर खेती करते हैं और प्रतिकुल मौसम (ओला वृष्टि, सूखा, आँधी आदि) के कारण फसल बर्बाद हो जाता है। किसान ऋण चुकता नहीं कर पाता है एवं बढ़ते ऋण के दबाव को झेल नहीं पाते हैं।

कुछ सीमांत एवं छोटे किसान समूह बनाकर खेती कार्य करते हैं। समूह में जुड़ने से ऊपर लिखित समस्याएं कम हो जाती है। ये किसान मार्केट की मांग के अनुसार खेती कार्य करते हैं। समूह के अधिकांश किसान उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। कुछ इच्छुक सदस्यों द्वारा उत्पाद का मूल्य संवर्धन भी किया जाता है। समूह के कुछ चयनित किसानो द्वारा सभी किसानो के लिए मार्केटिंग (विपणन) का कार्य किया जाता है।

सेम की सामूहिक खेती

सभी किसानो को इनपुट को खरीदने या उत्पाद को बेचने हेतु बाजार नहीं जाना पड़ता है। इससे समय और परिवहन खर्च दोनों में बचत होता है। उत्पाद के बिक्री होने के पश्चात, उत्पादक किसानों को उनके उत्पाद के अनुसार कीमत दे दिया जाता है और लाभ का कुछ अंश समूह में जमा कर दिया जाता हैं। समूह में जमा बचत राशि से जरूरतमंद सदस्यों को कम ब्याज दर पर ऋण दिया जाता है। समय एवं परिस्थिति के मांग के अनुसार किसान का

समूह इन प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन लाते हैं। समूह में जुड़ने से किसानों को सामाजिक पहचान मिलता हैं और आर्थिक स्थिति बेहतर होता हैं। वे सशक्त हो पाते हैं (यादव एट अल 2022)।

एफ पी ओ की निर्माण प्रक्रिया

एफ पी ओ के निर्माण के लिए सर्वप्रथम गाँव में प्रभावी नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति की पहचान की जाती है। उन्हें समूह एवं समूह निर्माण के लाभ के बारे में अवगत कराया जाता है। इसके बाद ग्राम सभा की बैठक बुलाकर सभी किसानों को समूह के बारे में जानकारी दिया जाता है। एफ.पी.ओ. के सदस्य विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा विभिन्न गाँवो के हो सकते हैं। परन्तु कोशिश होनी चाहिए कि एक गाँव में लगभग सामान सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले तथा आस–पास जमीन वाले किसान कलस्टर बनाकर एफ.पी.ओ. के सदस्य बनें। सदस्यों का चयन किसानों के द्वारा आपसी सहमति से होना चाहिए। एफ पी ओ के निर्माण में लगभग पाँच –छः महीने लग जाते हैं। एफ पी ओ का रेजिस्ट्रेशन होना आवश्यक होता है।

चित्रः 1 किसान को एफ पी ओ बनाने हेतु प्रेरित करना

एफ पी ओ बनाने के लिए कम से कम दस सदस्यों से निम्न कागजात एकत्र करने होते हैं :–

- आधार कार्ड।
- पैन कार्ड।
- बैंक पासबुक।
- एक पासपोर्ट साइज फोटो।
- फार्मर सर्टिफिकेट (जिला कृषि पदाधिकारी/तसीलदार से निर्गत किया जाता है)।
- डिजिटल सिगनेचर ।
- एफ पी ओ के कार्यालय के लिए बिजली बिल /टेलीफोन बिल आदि।

एफ पी ओ का नाम सर्वसम्मति से तय किया जाता हैं और चार्टर्ड एकाउंटेंट की मदद से रजिस्टार ऑफ कम्पनी के कार्यालय में उपरोक्त कागजात का फोटो कॉपी दिया जाता हैं। इंडियन कंपनी एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन होने से फार्मर प्रोडूसर कम्पनी, कोऑपरेटिव एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन होने से कोऑपरेटिव सोसायटी तथा ट्रस्ट एक्ट के तहत रजिट्रेशन से ट्रस्ट बनता हैं। फार्मर प्रोडूसर कम्पनी , कोऑपरेटिव सोसायटी तथा ट्रस्ट सभी एफ पी ओ हैं।

Certificate of Incorporation

चित्रः 2 एफ पी सी का रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट

एफ पी ओ का बैंक से लिंकेज

एफ पी ओ के लिए चालू खाता (करेन्ट एकाउंट) खोला जाता है। समूह को बिल, वाउचर, खरीद–बिक्री आदि का रेकार्ड रखना होता है। समूह के कार्य निष्पादन के अनुसार बैंक कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करता है।

एफ पी ओ के नियम

एफ पी ओ से संबंधित अधिकांश नियम इनके मेमोरेन्डम ऑफ एसोसिएशन (एम ओ ए) तथा आर्टिकल ऑफ एसोसिएशन (ए ओ ए) में वर्णित होता है। एम ओ ए को एफ पी ओ का संविधान माना जाता है। एफ पी ओ को क्या करना और क्या नहीं करना है, यह एम ओ ए में वर्णित रहता है। आर्टिकल ऑफ एसोसिएशन में सदस्य और उसके मताधिकार, बोर्ड ऑफ डायरेक्टर का गठन एवं उनके

कार्य, मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सी इ ओ) की नियुक्ति तथा कार्य, वार्षिक सामान्य बैठक (एनुअल जेनरल मीटिंग) का आयोजन, खाता एवं रजिस्टर का रख–रखाव , सदस्यों को ऋण देने तथा पड़ोसी एफ पी ओ के साथ संबंध आदि के बारे में विवरण रहता है। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में 5 –15 सदस्य हो सकते हैं तथा इनका कार्यकाल 1 –5 वर्ष का होता है। तीन महीने में एक बार बोर्ड ऑफ डायरेक्टर का बैठक करवाना आवश्यक होता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी कम्पनी के कार्य कलाप का प्रबंधन तथा सभी रजिस्टर का रख–रखाव (मेन्टेन) करते हैं। मुख्य कार्यकारी अधिकारी वार्षिक लेखा –जोखा तैयार करते हैं एवं चार्टर्ड अकाउंटेंट से ऑडिट करवाते हैं। नियमित मुख्य कार्यकारी अधिकारी के नहीं होने पर, बोर्ड ऑफ डायरेक्टर के अध्यक्ष ही इन कार्यों को करते हैं। प्रत्येक वर्ष एक बार वार्षिक सामान्य बैठक (एनुअल जेनरल मिटिंग) का आयोजन जरूरी होता है।

एफ पी ओ की वर्तमान स्थिति

प्रथम एफ पी सी 2004 में पंजीकृत हुआ था। 2022 में देश में लगभग 8000 एफ पी ओ हैं। 50 प्रतिशत एफ पी ओ मात्र चार राज्यों में स्थिति हैं। 80 प्रतिशत एफ पी ओ तीन वर्ष या उससे कम आयु के हैं। एफ पी ओ के सदस्य बनने के लिए, इच्छुक किसान शेयर खरीदते हैं। सदस्यों द्वारा खरीदे गए शेयर की कुल राशि को पेड अप कैपिटल कहा जाता है। हमारे देश के मात्र 2 प्रतिशत एफ पी ओ का पेड अप कैपिटल 25 लाख रुपये से अधिक है। 39 प्रतिशत एफ पी ओ का पेड अप कैपिटल 1 लाख रुपये है तथा 10 प्रतिशत एफ पी ओ का पेड अप कैपिटल 1 लाख रुपये से कम है। कृषि आधारित व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए 15–20 लाख रुपये की आवश्यकता होती है तथा कृषि व्यवसाय को टिकाऊ बनाने के लिए 60 लाख रुपये की जरुरत होती है। राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 86 प्रतिशत एफ पी ओ का पेड अप कैपिटल 10 लाख रू से कम है (गोविल, नेति एवं राव 2020)। अधिकांश एफ पी ओ विकास के प्रारंभिक अवस्था में है तथा इनके सदस्यों की संख्या 100 से 1000 तक है। इन एफ पी ओ के व्यवसाय के टिकाऊ विकास के लिए तकनीकी मार्गदर्शन, पर्याप्त पूँजी, आधारभूत संरचना तथा बाजार का लिंकेज होना आवश्यक है ।

एफ पी ओ के लिए टिकाऊ पारिस्थितिकी तंत्र

समुचित सुविधाएँ उपलब्ध होने पर उचित प्रबंधन एवं कौशल द्वारा एफ पी ओ अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। टिकाऊ एफ पी ओ के विकास हेतु एफ पी ओ के पारिस्थितिकी तंत्र में निम्न अवयव होना चाहिए (अनाम 2019) :

- क) नीति वातावरण (पॉलिसी एन्वारमेंट) – जोखिम से राहत, लाइसेंसिंग, एग्री लॉजिस्टिक, संरचनाएं, कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग
- ख) तकनीकी सहायता– प्रसार सेवाएं, सलाह देना, मूल्य श्रृंखला, प्रसंस्करण एवं विपणन
- ग) उपभोग/उत्पादन/उत्पादन के उपरांत ऋण सहायता–बैंक/वित्तीय संस्था, एन बी एफ सी, सरकारी संस्थाएँ, विकास एजेंसियां, कारपोरेट्स आदि।

चित्र:3 एफ पी ओ के लिए टिकाऊ पारिस्थितिकी तंत्र

- घ) खुदरा व्यापार/बाजार–गुणवत्ता इनपुट, खुदरा विपणन, स्पॉट बाजार (ई–नाम, ए पी एम सी), फ्यूचर ट्रेडिंग (एन सी डी ई एक्स), एग्री कोर्पोरटस एवं निर्यातक के साथ लिंकेज, सीधा विपणन।

केन्द्र सरकार की योजना

भारत सरकार पाँच वर्ष (2019–20 से 2023–24) में सीमांत एवं छोटे किसानों के 10000 एफ.पी.ओ. को प्रोन्नत करने हेतु 5000 करोड़ रू का आबंटन किये हैं। ये एफ पी ओ कलस्टर बनाकर खेती कार्य करेंगे। प्रत्येक प्रखण्ड में दो एफ पी ओ हो सकते हैं। इन एफ.पी.ओ. के निर्माण से पांच वर्ष की अवधि तक सहायता राशि दिया जा सकता है । इस योजना के कार्यान्वयन के लिए नाबार्ड (NABARD), एस. एफ.ए.सी. (SFAC), एन.सी.डी.सी. (NCDC) एवं नाफेड

(NAFED) को जिम्मेदारी दिया गया है।

एफ पी ओ को नाबार्ड से सहायता

मौजूदा एफ पी ओ को सहायता देने के लिए सन् 2011 –12 में नाबार्ड द्वारा 50 करोड़ का 'प्रोड्यूसर ऑर्गेनाजेशन डेवलपमेंट फंड' की व्यवस्था किया गया। यह राशि एफ पी ओ को ऋण देने, क्षमता निर्माण, मार्केट लिंकेज तथा जरुरत आधारित सेवाएं प्रदान करने के लिए दिया जाता था।

नाबार्ड द्वारा एफ पी ओ को ऋण प्रदान करने हेतु एक सहयोगी संस्था 'नव किसान फाइनेंस लिमिटेड', का गठन किया गया।

कृषि मंच पोर्टलः एफ.पी.ओ. की ऋण पात्रता जानने के लिए नवकिसान द्वारा कृषि मंच पोर्टल विकसित किया गया है । इसके लिए एफ.पी.ओ निम्न वेबसाइट पर रजिस्टर कर सकते हैं।

http%//krishimanch-nabkisan-org

पंजीकरण के बाद पोर्टल में एफ.पी.ओ. की वांछित जानकारी देकर प्रस्तुत (Submit) करना होता है । इसके उपरांत क्रेडिट रेटिंग स्क्रीन पर आ जाता है ।

नए एफ पी ओ को सहायता देने हेतु सन् 2014–15 में नाबार्ड में 'प्रोड्यूसर ऑर्गेनाजेशन डेवलपमेंट अपलिफ्टमेंट कॉरपस फंड' की व्यवस्था किया गया। इसके अंतर्गत सन् 2018 तक 2154 एफ पी ओ को सहायता दिया गया।

एफ.पी.ओ.को निम्नलिखित कार्यो के लिए नाबार्ड से सहायता राशि दिया जाता है।

- पंजीकरण शुल्क
- प्रशासनिक खर्चः मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सी.ई.ओ.) का वेतन, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट का शुल्क।
- बिजनेस प्लान
- सी.ई.ओ. / बोर्ड ऑफ डायरेक्टर के प्रशिक्षण / क्षमता वर्धन हेतु।
- किसान सदस्यों को जागरूक एवं प्रेरित करने हेतु।
- प्रोड्यूसर आर्गेनाईजेशन प्रोमोटिंग इंस्टिट्यूट (POPI) को प्रोत्साहन।
- बिजनेस डेवलपमेंट एसिस्टेंसः यह अधिक से अधिक 5 लाख की अनुदान (ग्रान्ट) हो सकता है ।

इस अनुदान से आधारित संरचना (जैसे–ग्रेडिंग, पैकेजिंग, कस्टम हायरिंग, गोदाम, सॉफ्टवेयर आदि) को विकासित किया जाता है। इसके अलावे इस अनुदान का उयपोग बीज, खाद,–उर्वरक, कीटनाशक आदि खरीदने में भी किया जा सकता है।

नाबार्ड द्वारा प्रारम्भ किये गए महत्वपूर्ण उपाय

- एफ पी ओ के पारिस्थितिकी तंत्र के विकास हेतु नाबार्ड ने 'नेशनल एडवाइजरी कमेटी' का गठन किया। इसके सदस्य सम्बन्धित संस्थाओं एस एफ ए सी, भारत सरकार के सम्बंधित मंत्रालय, शैक्षिक संस्थान, एग्री कॉर्पोरेट्स, प्रगतिशील एफ पी ओ आदि से आते हैं।
- एफ पी ओ के केंद्रीकृत डाटा के लिए नाबार्ड ने एक वेबसाइट बनाया जिसमें सभी एफ पी ओ तथा उसके शेयर होल्डर का विवरण है।
- एफ पी ओ के प्रदर्शन को जानने के लिए एक प्रदर्शन माप उपकरण बनाया गया। यह एफ पी ओ को मॉनिटरिंग भी करता है।
- भारत सरकार द्वारा चिन्हित आकांक्षी (एस्पिरेशनल) जिला में नाबार्ड द्वारा समन्वित जल प्रबंधन योजना चलाया जा रहा है। इस योजना के अंतर्गत एफ पी ओ द्वारा जल का समुचित प्रबंधन होता है ।
- जलवायु परिवर्तन के अनकूल कृषि अपनाने में एफ पी ओ की भूमिका हेतु जागरूकता अभियान चलाया गया है ।
- नाबार्ड और बी आई आर डी मिलकर एफ पीओ के क्षमता के निर्माण के लिए तीन प्रशिक्षण मॉड्यूल (बोर्ड ऑफ डायरेक्टर, सी ई ओ तथा पी ओ पी आई के लिए) तैयार किये हैं।

एस एफ ए सी द्वारा एफ पी ओ को सहायता

मैचिंग इक्विविटी ग्रांटः अगर एफ पी ओ में कम से कम 50 शेयर होल्डर है तो एक एफ पी ओ को अधिक से अधिक 15 लाख रू मैचिंग इक्विविटी ग्रांट प्राप्त हो सकता है ।

क्रेडिट गारन्टी फंड योजनाः अगर एफपीओ में कम से कम 500 शेयर होल्डर हो तो अधिक से अधिक 2 करोड़ रू तक का ऋण (कोलैटेरल मुक्त) प्राप्त हो सकता है ।

आदिवासी कल्याण विभाग से सहायताः आदिवासी किसान उत्पादक संगठन को आधारित संरचना के विकास के लिए प्रोजेक्ट के कुल लागत मूल्य का 60% अनुदान आदिवासी कल्याण विभाग से प्राप्त हो सकता है।

बैकवार्ड एवं फारवार्ड लिंकेज स्थापित करने के लिए योजना

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, भारत सरकार द्वारा यह योजना चलाया गया है। इसके अंतर्गत प्रसंस्कृत खाद्य उद्योग का लिंकेज स्थापित किया जाता है। इस योजना के तहत एफ पी ओ में जल्दी खराब होने वाले उत्पाद के लिए प्राथमिक प्रसंस्करण केंद्र/कलेक्शन केंद्र, आधुनिक खुदरा विक्रय केंद्र, रेफ्रिजरेटेड ट्रांसपोर्ट आदि स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता दिया जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन आर एल एम)

ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार अपने दीन दयाल अंत्योदय योजना–एन आर एल एम के अंतर्गत एफ पी ओ को मूल्य श्रृंखला के विकास हेतु सहायता प्रदान करते हैं।

यूनियन बजट 2018 –19

ऑपरेशन ग्रीन: आलू, प्याज एवं टमाटर में 500 करोड़ रू की राशि से ऑपरेशन ग्रीन योजना आरम्भ किया गया। इन सब्जियों के कीमत के उतार–चढ़ाव को कम करने हेतु यह योजना चलाया गया।

इनकम टैक्स में छूट: जिस एफ पी ओ का वार्षिक टर्न ओवर 100 करोड़ रू से कम है उस एफ पी ओ को टैक्स नहीं देना होगा।

मार्केटिंग

- e-NAM पोर्टल में पंजीकरण करके ऑनलाइन मार्केटिंग किया जा सकता है।
- NeML (NCDEX का सहायक संस्था) में (www-neml-in) पंजीकरण करके ऑनलाइन मार्केटिंग किया जा सकता है।
- एफ.पी.ओ. से निर्यात करने हेतु एपीडा के साथ समझौता ज्ञापन करना होता है।

नजदीक के मंडियों में ऑफलाइन मार्केटिंग करना चाहिए।

बिजनेस प्लान

प्रत्येक एफ पी ओ का बिजनेस प्लान होना चाहिए। यह एफ पी ओ के लिए रोड मैप का कार्य करता है। इसके अन्तर्गत सामान्य विवरण में एफ पी ओ का मिशन, विजन, उद्देश्य, ग्राहक की जानकारी, एफ पी ओ के ताकत (स्ट्रेंग्थ), स्वामित्व, आदि के बारे में जानकारी होता है। बिजनेस प्लान के उत्पाद एवं सेवाएँ में उत्पाद की विनिर्देश (स्पेसिफिकेशन), फोटोग्राफ, कीमत, विशिष्टता, आदि के बारे में जानकारी मिलता है/इसके अन्तर्गत मार्केटिंग प्लान में चयनित बाजार की जानकारी, मार्केट रिसर्च जैसे ग्राहक की मांग, मार्केट की मांग, कम्पीटीटर, मार्केट में स्थित उत्पाद का डिटेल, मार्केट प्रवेश करने में बाधाएँ एवं समाधान, एफ पी ओ के उत्पाद का कीमत निर्धारण आदि आता है। इसके अलावे बिजनेस प्लान के अन्तर्गत मानव संसाधन, मशीनरी, उत्पादन, बिजनेस आरम्भ करने में खर्च ,परिचालन लागत, वित्तीय योजना आदि सन्निहित होता है। बिजनेस प्लान के अनुसार एफ पी ओ बिजनेस कार्य करता है।

टिकाऊ एफ पी ओ बनाने में बाधाएं

प्रोफेशनल मैनेजमेंट की कमी: एफ पी ओ में बोर्ड ऑफ डायरेक्टर के सदस्य लोकतांत्रिक तरीके से चयनित होना चाहिए तथा प्रशिक्षित, अनुभवी एवं दक्ष व्यक्ति को मुख्य कर्यकारी अधिकारी (सी ई ओ) नियुक्त करना चाहिए। अधिकांश एफपीओ में बोर्ड ऑफ डायरेक्टर तथा मुख्य कर्यकारी अधिकारी अयोग्य है।

पूँजी का अभाव : एफपीओ के अधिकांश सदस्य सीमान्त एवं लघु किसान होते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होता है।

ऋण की अपर्याप्त उपलब्धता : क्रेडिट गारंटी योजना प्राप्त करने हेतु कम से कम 500 शेयर होल्डर होना चाहिए। इस योजना का लाभ सिर्फ एफ पी सी को मिल सकता है। कोपरेटिव/सोसाइटी। ट्रस्ट आदि को इसका लाभ नहीं मिल सकता है।

जोखिम से राहत का अभाव: एफ पी ओ के जोखिम भरे व्यवसाय के लिए कोई राहत योजना नहीं है।

मार्केट लिंकेज का अभाव होना: टिकाऊ एफपीओ के लिए इंडस्ट्री, मार्केट, खुदरा व्यापारी, थोक विक्रेता आदि से लिंकेज होना आवश्यक है। अधिकांश एफ पी ओ का मार्केट लिंकेज नहीं है।

आधारभूत संरचना की अपर्याप्तता: मूल्य श्रृंखला, ट्रांसपोर्ट, स्टोरेज, प्रोसेसिंग, ब्रांडिंग, मार्केटिंग आदि के

लिए संरचना का होना जरुरी हैं।

तकनीकी कौशल का अभाव होना: अधिकांश एफपीओ में सामूहिक खेती एवं विपणन के लिए उचित तकनीकी कौशल का अभाव है।

निष्कर्ष

किसान को समूह बनाकर एफ पी ओ का निर्माण करना चाहिए। एफ पी ओ को सहयोग प्रदान करने वाली संस्थाए जैसे नाबार्ड, एस.एफ. ए. सी., एन. सी. डी. सी., कृषि विभाग, उद्यानिकी विभाग, खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय, कृषि अनुसंधान संस्थाएँ आदि से लिंकेज स्थापित करके समुचित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करना चाहिए। एफ पी ओ को सरकार द्वारा चलाये जा रहे योजनाओं का लाभ उठाकर सामूहिक तरीके से खेती, मूल्य श्रृंखला एवं विपणन अपनाकर टिकाऊ बनाना तथा सदस्यों को लाभान्वित करना चाहिए।

नवजात बछड़ों के स्वास्थ्य में फेनुस का महत्व

● शंकर दयाल, रजनी कुमारी, ज्योति कुमार एवं राकेश कुमार
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

फेनुस क्या है?

बछड़े के जन्म के पश्चात् गाय जो प्रथम पीला व गाढ़ा दूध देती है उसे कोलोस्ट्रम, खीस या फेनुस कहते हैं। यह दूध नवजात बछड़ों के लिए अमृत के समान होता है क्योंकि यह उनकी संक्रामक बीमारियों से रक्षा करता है।

फेनुस की उपयोगिताः–

फेनुस की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नवजात बछड़ों की प्रतिरोधक क्षमता बढाने में है। फेनुस में मातृ प्रतिरोधक तत्व (एंटीबोडीज) एवं विभिन्न प्रकार के प्रतिरक्षक विद्यमान होते हैं, जो बछड़ों की संक्रामक रोगों से रक्षा करते हैं। यह एण्टीबोडीज बड़े आकार के प्रोटीन अणुओं से निर्मित होते हैं। यदि संक्रामक रोगों के कीटाणु बछड़ों पर आक्रमण करते हैं तो यह प्रतिरक्षक उन कीटाणुओं के साथ संलग्न होकर उनका विनाश कर देते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि फेनुस बछड़ों को संक्रामक रोगों से बचाती है।

फेनुस में प्रतिरक्षक पिण्ड 'एम', 'जी' व 'ए' ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण हैं तथा इनका कार्य दैहिक संक्रमण से रक्षा करना है। 'ए' पिण्ड आँतों, फेफड़ों व दुग्ध ग्रन्थियों की श्लेष्मल झिल्ली में पाया जाता है तथा इसका कार्य भी संक्रमण से शरीर की रक्षा करना है। 'एम' तत्व यद्यपि बहुत छोटा होता है पर फिर भी उपरोक्त लिखी दोनों प्रणालियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जन्म के तुरन्त बाद बछड़ों में अपनी प्रतिरक्षा के लिए शरीर में किसी भी प्रकार की एंटीबोडीज नहीं होती हैं। इसलिए उनको संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने का हमेशा भय बना रहता है। हालांकि, इन बछड़ों में एण्टीबोडीज निर्मित करने की क्षमता तो होती है परन्तु नवजात बच्चों में यह क्षमता बहुत कम होती है। इसलिए नवजात बछड़ों में अतिसार व विषाक्तता होने का भय रहता है। यदि प्रतिरक्षा तत्व (एंटीबोडीज) माँ से बछड़े को गर्भकाल के दौरान ही मिल जाए तो बछड़ों को जन्मोपरान्त होने वाले संक्रामक रोगों से बचाया जा सकता है। मनुष्यों में यह गर्भकाल के दौरान ही माँ से नवजात शिशु को मिल जाता है। अतः उनमें जन्म से पहले ही रोगों से लड़ने की क्षमता होती है पर यह प्रणाली पशु के बच्चों में जन्म के समय विकसित नहीं होती है। इसलिए नवजात बछड़े–बछड़ियों को संक्रामक रोगों से बचाना बहुत जरूरी हो जाता है। इस कमी को फेनुस पिलाकर पूरा किया जा सकता है फेनुस में विद्यमान एंटीबोडीज का नवजात बछड़े अच्छी तरह समावेश कर लेते हैं। चूँकि जन्म के एकदम पश्चात् ही बछड़ों पर जीवाणु (बैक्टीरियल) आक्रमण होने की सम्भावना रहती है । अतः यह आवश्यक है कि उन्हें फेनुस जन्म के तुरन्त बाद पिला दी जाये। प्रतिरक्षक गुण के अलावा फेनुस के कुछ अन्य उपयोग भी हैं जैसेः

- ❖ फेनुस रेचक या दस्तावर होती है बच्चे के अन्दर गर्भकाल के दौरान पाचन अंगों में जमा पदार्थों को बाहर निकालने व सफाई में मदद करती है।
- ❖ इसमें प्रोटीन अधिक मात्रा में (14 प्रतिशत) होती है। जो बछड़े की बढ़ोत्तरी में सहायक होती है।
- ❖ खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम, फास्फोरस व लौह तत्व की मात्रा फेनुस में दूध की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है, जो हड्डियॉं व रक्त बनाने में सहायक होती हैं।

फेनुस में काफी मात्रा में प्रतिरक्षक विद्यमान होते हैं फेनुस उत्पन्न करने के लिए पशु को अपने एण्टीबोडीज के एकत्रित भण्डार समाप्त करने पड़ते हैं। जन्म के तीन महीने पश्चात् तो बछड़ों की अपनी ही प्रतिरक्षक प्रणाली विकसित हो जाती हैं और वह रोगों से अपना बचाव कर सकते हैं। कुछ अधिक दूध देने वाली गायों को प्रसव से पूर्व ही अयन ज्यादा भरा होने के कारण दूध निकाल लिया जाता है। ऐसा करने से इनकी फेनुस में उत्पन्न लाभदायक अवयवों की मात्रा कम हो जाती है।

फेनुस में उपलब्ध एण्टीबोडीज का नवजात बछड़ों द्वारा अवशोषण होना भी एक बहुत तेज प्रक्रिया हैं फेनुस पिलाने

के 4 घण्टे के पश्चात् ही प्रतिरक्षक पिण्डों की मात्रा रक्त में पहुँच जाती है। यदि जन्म के तुरन्त पश्चात् फेनुस न पिलाई जाए तो यह प्रतिरक्षक पिण्ड जो आकार में काफी बड़े होते हैं उनको नवजात शिशुओं द्वारा शोषित करने की क्षमता कम हो जाती है क्योंकि बच्चे की ऑतों में इसका शोषण एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं द्वारा होता है। और यह कोशिकाएं शीघ्र ही छोटी–छोटी कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। जो फेनुस में उपलब्ध तत्वों को शोषित नहीं कर पाती हैं। इसीलिए जन्म के तुरन्त पश्चात् यानी 2 घण्टे के अन्दर ही फेनुस दे–देनी चाहिए क्योंकि फेनुस के प्रतिरक्षक पिण्ड बड़े आकार के होते हैं। जो बाद में बछड़ों द्वारा शोषित नहीं किये जा सकते।

फेनुस पिलाने का उचित समयः–

आधुनिक अन्वेषणों ने यह दिखा दिया है कि नवजात बछड़ों को आधे घंटे के अन्दर ही फेनुस पिलाना सबसे उत्तम रहता है। पर किसी कारणवश सम्भव न हो तो जन्म के दो घण्टे बाद तक अवश्य पिला देनी चाहिए। आम तौर पर अधिकतर पशु पालकों में यह भ्रान्ति रहती है कि जब तक गाय या भैंस जेर नहीं डालती है तब तक गाय से न तो फेनुस निकालते हैं और न ही नवजात बछड़ों को फेनुस पीने देते हैं। इस गलत धारणा की वजह से गाय–भैंस व बच्चे दोनों पर ही बहुत गलत प्रभाव पड़ता है। गाय–भैंस के अयन में फेनुस का दबाव बने रहने से परेशानी होती है व कई बार इसी कारणवश थनैला रोग हो जाता है। इधर बछड़े को सही समय पर फेनुस न मिलने के कारण स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यानी बच्चे को रोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना रहती है। इसी कारण नवजात बछड़ों को समय से फेनुस पिलानी चाहिए।

नवजात बछड़ा स्वयं गाय के थन को चूसने का प्रयास करता है और यदि बच्चा कमजोर पैदा हुआ है या खड़ा नहीं हो पा रहा है तथा थन से पीने में असमर्थ है तब फेनुस को स्वच्छ बर्तन में निकालकर पिला देना चाहिए।

फेनुस की मात्राः–

बच्चे को उसके शरीर भार का 1/10 भाग के बराबर ही फेनुस पिलाना चाहिए, यानी हर 10 किलोग्राम शरीर–भार पर 1 किलोग्राम फेनुस। उदाहरण के लिए यदि नवजात बछड़ा 20 कि0ग्रा0 वजन का है तो उसे पूरे दिन में 2.0 कि0ग्रा0 फेनुस तीन बार में बराबर–बराबर मात्रा में विभाजित करके पिलाना चाहिए। पर एक बार में अधिक मात्रा में फेनुस नहीं पिलाना चाहिए। इससे दस्त लगने का डर रहता है।

जब फेनुस उपलब्ध न होः–

यदि किसी कारणवश जैसे गाय से फेनुस का न उतरना, गाय का मर जाना, गाय का बच्चे को न लगाना आदि के चलते नवजात बछड़ों को फेनुस उपलब्ध न हो रहा हो तो उसे किसी दूसरी गाय का फेनुस पिला देना चाहिए। यदि यह भी संभव व उपलब्ध न हो तो फेनुस के पूर्ण रूप से अभाव की अवस्था में यह उचित है कि अरण्डी (कैस्टर) के तेल की थोड़ी मात्रा दूध में निम्न तरीके से नवजात बछड़े को दी जायेः–

दूध–	560 मि0ली0
पानी–	280 मि0ली0
अरण्डी का तेल–	1/2 चाय का चम्मच भरा हुआ
अण्डा–	एक फेटा हुआ

उपर्युक्त मिश्रण 5 दिन तक देना चाहिए इससे भी उसकी प्रतिरक्षा शक्ति बढ़ती है और पाचन नली भी साफ होती है।

फेनुस की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारकः–

पशु की फेनुस गाढ़ी व क्रीम की तरह हल्की पीली होने का मतलब है, उसकी गुणवत्ता अच्छी होना यानि उसमें अधिक मात्रा में एण्टीबोडीज का होना। इसके विपरीत पतली फेनुस की गुणवत्ता अच्छी नहीं है। पतली फेनुस होने के निम्न कारण होते हैं:

- **गाय–भैंस** का अपर्याप्त शुष्ककाल (दो माह से कम), अपरिपक्व प्रसव (प्रसव काल पूरा होने से पहले ही बच्चा दे देना) व प्रसव से पहले ही दूध का निकालना, ब्यांत से पहले ही थनों से दूध का निकालना आदि।
- **गाय की उम्रः**– पहले ब्यांत की गाय की फेनुस पतली होती है जिससे उसमें एण्टीबोडीज कम होती है इसके विपरीत पुरानी गायों में यह अवयव अधिक होते हैं साथ ही साथ इन पुरानी गायों की फेनुस में विविध प्रकार की एण्टीबोडीज पाई जाती है क्योंकि इनके शरीर में ज्यादा बीमारियों से लड़ने की क्षमता होती है।
- **गाय की नस्ल**– देशी गायों में संकर व विदेशी गायों की तुलना में एण्टीबोडीज अधिक होती हैं। अतः इनका दूध गाढ़ा होता है।

विभिन्न प्रजातियों की फेनुस का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत):–

प्रजातियाँ	कुल ठोस	वसा	लैक्टोज	प्रोटीन	भस्म	पानी
गाय	23–9	6–7	3–0	14–0	1–8	76–1
भैंस	27–0	7–6	4–2	15–50	0–84	73–0
भेंड़	41–8	17–4	2–2	20–1	1–0	58–2
बकरी	18–8	8–2	3–4	5–7	0–9	81–2
याक	36–4	14–8	2–3	17–9	1–4	63–6
मिथुन	48–1	6–8	3–5	36–7	1–1	51–9
सुअर	30–2	7–2	2–4	18–8	0–6	69–8
मानव	10–2	2–9	5–3	2–0	–	89–8

कई वैज्ञानिक प्रयोगों से यह तथ्य सामने आया है कि यदि बछड़ा सीधा ही थन से फेनुस पी लेता है तो फेनुस का बछड़े के शरीर द्वारा अच्छी प्रकार से शोषण होता है अगर फेनुस गाढ़ा है तो उसका मतलब है कि उसमें अधिक एण्टीबोडीज हैं।

नवजात बछड़ों को संक्रामक रोगों से बचाने एवं उनको स्वस्थ जीवन देने में फेनुस की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः नवजात बछड़े को सही समय व उचित मात्रा में फेनुस पिलाना चाहिए। ऐसा करने से एक स्वस्थ बछड़े को एक स्वस्थ पशु के रूप में तैयार किया जा सकता है।

पूर्वोत्तर राज्यों में बैकयार्ड मुर्गी पालन: किसानों की आय दोगुना करने के सिद्ध प्रौद्योगिकी

● राकेश कुमार, पी. सी. चंद्रन, शंकर दयाल, रजनी कुमारी, प्रदीप कुमार राय, ज्योति कुमार, अमिताभ डे एवं कमल शर्मा
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में मुर्गी पालन बहुत ही प्रचलित है। यहाँ के लोग इसे एक ATM के तौर पर इस्तेमाल करते हैं जिससे कि तात्कालिक धन की जरूरतों को पूरा किया जा सके। देसी नस्ल के प्रजातियों की अनुकूलन एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता प्रायः संशोधित एवं संवर्धित नस्लों की तुलना से ज्यादा होती है जिसके कारण ये मुर्गी कम–से–कम या नगण्य लागत में भी विषम परिस्थितियों (जैसे कि परभक्षियों का प्रकोप, बीमारियों एवं अन्य प्रतिकूल वातावरण) का सामना करते हुए औसतन उत्पादन देने में सक्षम है। आजकल पूर्वोत्तर क्षेत्र में ग्राहकों के बीच देसी उत्पाद की मांग धीरे–धीरे बढ़ रही है और इसके लिए वो अन्य उत्पाद की तुलना मे ज्यादा दाम देने की भी इच्छाशक्ति रखते हैं। इस क्षेत्र के अधिकतर आदिवासी किसान अपने घर के पीछे में कम–से–कम 5–15 देशी मुर्गियों का पालन करते हैं। बाज़ार मे इन देशी मुर्गियों के अंडे एवं मांस दूसरे प्रचलित संवर्धित प्रजाति की तुलना मे ज्यादा महंगे दामों मे बिकते है परंतु इसकी उत्पादकता (मांस एवं अंडा दोनों) उनकी तुलना में काफी कम है। किसानों को इन मुर्गियों के पालने मे प्रायः निम्नतम या नगण्य लागत खर्च होता है क्योंकि ये मुर्गियाँ घर के बचे–खुचे खाद्य पदार्थ एवं इससे उत्पन्न व्यर्थ उत्पादों से ही अपने पेट भर लेते हैं तथा घर के पीछे में मुक्त विचरण करके कीड़े–मकोड़ों को खाकर अपनी समस्त आहार जरूरतों को पूरा करते हैं। हालांकि देश के पूर्वोत्तर राज्यों मे मांसाहार ज्यादा प्रचलित होने के कारण देश के अन्य भागों की तुलना मे मुर्गियों के उत्पाद (अंडा एवं मांस) का बाज़ार भाव कहीं अधिक है। यहाँ पर देशी मुर्गियों के प्रति झुकाव ज्यादा है जिसके कारण देसी मुर्गियों एवं इसके जैसी दिखने वाली अन्य प्रजाति के मुर्गियों के उत्पाद की कीमत ब्रायलर एवं लेयर प्रजाति के उत्पादों की तुलना मे बहुत ज्यादा है। इसे देखते हुए इन इलाकों के लिए ऐसी मुर्गियों के प्रजातियों की आवश्यकता है जो कम लागत खर्च, उच्च रोग एवं प्रतिकूल वातावरण प्रतिरोधी तथा उच्च उत्पादकता जैसे गुणों से भरपूर है। इसीलिए यहाँ की सरकारें विभिन्न संस्थानों के साथ मिलकर प्रचलित दोहरे प्रयोजन (अंडा एवं मांस दोनों) वाली मुर्गियों की प्रजाति जैसे की क्रूओइलर, वनराजा, श्रीनिधि, ग्रामप्रिया इत्यादि के प्रचार–प्रसार पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रही है। दोहरे प्रयोजन वाले मुर्गियों की प्रजाति की पक्षियाँ बहुरंगी (देसी नस्लों जैसी दिखने वाली) एवं आकर्षित होने के साथ साथ इनकी रोग प्रतिरोधी क्षमता भी अधिक होती है। इन खूबियों के कारण इसको घर के पीछे अर्थात "बैकयार्ड" में मुक्त रेंज पद्धति में पालने के लिए अनुकूल होती है। इन पक्षियों के पैर अन्य पक्षियों की तुलना में ज्यादा लंबे तथा वजन में हल्के होते हैं जिससे ये परभक्षियों (कुत्ता, बिल्ली इत्यादि) से खुद किए रक्षा करने में अधिक सक्षम है। उच्च रोग प्रतिरोधी क्षमता होने के कारण इसमे दवा का प्रयोग कम होता है, जिससे कि इसका उत्पाद (अंडा एवं मांस) स्वास्थ्य की दृष्टि से

क्र.स.	विशेषताएँ	देशी मुर्गी पालन	ब्रायलर मुर्गी पालन	लेयर मुर्गी पालन	द्विउद्देशीय मुर्गी पालन
1.	मुर्गी पालन का उद्देश्य	मांस एवं अंडा	मुख्यतः मांस के लिये	मुख्यतः अंडा के लिये	मांस एवं अंडा दोनों के लिए
2.	प्रचलित प्रजातियाँ	देशी	वेनकाब–400	बीव–300	वनराजा/कुरोइलेर
3.	अनुकूल आवास विधि	मुक्त–रेंज पद्धति/बैकयार्ड	गहन प्रणाली	गहन प्रणाली	फ्री रेंज/बैकयार्ड
4.	शारीरिक वजन (औसत)	1.1 किलोग्राम	2.5 किलोग्राम	1.5 किलोग्राम	2.0 किलोग्राम
5.	अनुमानित उत्पादन अवधि	2.0 वर्ष	5–7 सप्ताह	2.0 वर्ष	2.0 वर्ष
6.	अंडा उत्पादन क्षमता	70–90 अंडे प्रतिवर्ष	145–150 अंडे प्रतिवर्ष	290–320 अंडे प्रतिवर्ष	140–160 अंडे प्रतिवर्ष

टेबल 1: मुर्गी के विभिन्न प्रजातियों का तुलनात्मक विवरण

ज्यादा लाभदायक होता है क्योंकि इसमे एंटीबायोटिक्स अवशेष बहुत ही कम मात्र में होते हैं। यहाँ के किसानों द्वारा पाले जाने वाले मुर्गी के विभिन्न प्रजातियों का तुलनात्मक विवरण टेबल:1 में प्रदर्शित किया गया है।

दोहरे प्रयोजन वाले पक्षियों के प्रबंधन की मुख्य तकनीकियाँ

आमतौर पर इस तरह की प्रजाति के पक्षियों को पहले छः सप्ताह तक नर्सरी प्रबंधन के तहत पालने की जरूरत होती है तथा इसके उपरांत इसे मुक्त रेंज अथवा अर्ध–गहन पद्धति के तहत पाला जा सकता है। इससे इन मुर्गियों के लागत खर्च कम हो जाते हैं ताकि शुद्ध लाभ ज्यादा से ज्यादा हो सके। इस प्रजाति की मुर्गियाँ का खाना बहुत ज्यादा होने के साथ साथ फीड रूपान्तरण अनुपात भी अधिक होता है। परिणामस्वरूप मुर्गी का वजन 2.5 से 3.5 किग्रा॰ से ज्यादा हो जाता है जो अंडा देने की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसलिए इसे मुक्त रेंज अथवा अर्ध–गहन पद्धति के तहत पालना बेहतर होता है।

टेबलः 2 दोहरी प्रजाति (वनराजा) की मुर्गियों का विभिन्न उत्पादन पद्धति के अंतर्गत तुलनात्मक विवरण

क्र॰	विवरण	मुक्त–रेंज पद्धति / बैकयार्ड
1.	प्रति चूजा क्रय मूल्य : डे ओल्ड चूजा : 4 सप्ताह ओल्ड चूजाप्रति	 30 रुपये 60 रुपये
2.	मुर्गी दाना खपत अ. स्टार्टर फीड (0–56 दिन) ब. ग्रोअर फीड (56–140दिन) स. लेयर फीड (141–540 दिन पश्चात)	 0.75 किग्रा॰ 1.5 किग्रा॰ 12 किग्रा॰
3.	औसतन प्रति मुर्गी कुल दाना खपत अ. स्टार्टर फीड (0–56 दिन) ब. ग्रोअर फीड (56–140 दिन) स. लेयर फीड (147–504 दिन पश्चात)	 22.5 30 360
4.	नर मुर्गी का बजन (20 सप्ताह ओल्ड)	2.0 किग्रा॰
5.	मादा मुर्गी का बजन (20 सप्ताह ओल्ड)	1.5 किग्रा॰
6.	पहले अंडे देने के समय मुर्गी की उम्र	180 दिन
7.	पहले अंडे देने के समय मुर्गी का वजन	1.6 किग्रा॰
8.	औसतन प्रति मुर्गी कुल अंडा की संख्या	110–120
9.	प्रति मुर्गी से आय का ब्योरा **अ॰** नर मुर्गी से आमदनी मुर्गी का वजन (16 सप्ताह ओल्ड): 2.5 किग्रा॰/मुर्गी ×180 रुपये/किग्रा॰	450/–
	ब॰ मादा मुर्गी से आमदनी मुर्गी का वजन (16 सप्ताह ओल्ड): 2.1 किग्रा॰/मुर्गी ×180 रुपये/किग्रा॰	378/–
	स॰ अंडे का उत्पादनः 140 अंडे/मुर्गी ×10रुपये प्रति अंडा	1400/–
10.	प्रति मुर्गी मूल्य/किग्रा॰	180–200
	प्रति अंडा का मूल्य	10

परंतु इस क्षेत्र के ज़्यादातर किसान इसको गहन पद्धति के तहत पालते हैं क्योंकि इन्हें लगता है की देशी प्रजातियों की तुलना में ये प्रजाति परभक्षियों से बचने के लिए सक्षम है। इसके कारण इन परिस्थिति में किसानों को कम लाभ होता है। नीचे दिए गए तुलनात्मक विवरण (टेबलः 2) से यह पता चलता है कि द्विउद्देशीय प्रजाति के पक्षियों को किसानों के यहाँ मुक्त–रेंज अथवा अर्ध–गहन पद्धति से पालने में ज्यादा लाभ हो सकता है।

1. नर्सरी प्रबंधन की तकनीकियाँ

अंडे से निकालने के बाद चूजों को गर्मी की आवश्यकता होती है जिसके लिए उपयुक्त तापमान बनाए रखना अत्यंत आवश्यक होता है अन्यथा चूजों मे मृत्यु दर बहुत अधिक हो सकती है। तापमान बनाए रखने की प्रक्रिया को ब्रूडिंग कहते है जिसके लिए ग्रामीण एवं क्षेत्रीय स्तर पर अधिकतर किसानों के पास बहुत कम सुविधा उपलब्ध होती है जिससे ये लोग ब्रूडिंग प्रबंधन में असक्षम होते है। अतः ब्रूडिंग के लिए एक विशेष घर तथा अन्य सुविधा की व्यवस्था की जाती है जिसमे 2–3 इंच मोटी लिट्टर या लकड़ी के बुरादे पर अखबार डालकर सही तापमान की व्यवस्था की जाती है।

अ॰ ब्रूडर आवास प्रबंधनः इसके लिए मुख्यतः धातु या लकड़ी के बने हुए विशेष घर (ब्रूडर घर) का प्रयोग किया जाता है। इस घर मे सही तापमान बनाए रखने के लिए 2 वाट प्रति चूजा के हिसाब से बिजली का बल्ब एवं उपयुक्त फीडर और साफ पानी पिलाने की व्यवस्था होती है। चूजों को बल्ब से दूर रखने के लिए चिक गार्ड का प्रयोग किया जाता है। इस तरह की आवास व्यवस्था से चूजों की मृत्यु दर कम होती है तथा वृद्धि दर बढ़ जाती है।

ब॰ ब्रूडर भोजन प्रबंधनः चूजों को सभी पोषक तत्वों से भरपूर दाना जिसमे खनिज एवं विटामिन की भी उपलब्धता हो दिया जाता है जो की बाज़ार मे 'स्टार्टर फीड' के नाम से उपलब्ध होता है। वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार प्रति चूजों को 2400 कैलोरी ऊर्जा, 16 प्रतिशत प्रोटीन, 0.77 प्रतिशत लाइसिन, 0.36 प्रतिशत मेथिओनिन, 0.35 प्रतिशत फास्फोरस और 0.7 प्रतिशत कैल्सियम की आवश्यकता होती है। पहले चार सप्ताह तक चूजों को ब्रूडर मे रखने की आवश्यकता होती है जिसके उपरांत इन चूजों को ग्रोअरफीड देना होता है जिसे 4–16 सप्ताह तक खिलाया

जाता है।

स॰ ब्रूडर स्वास्थ्य प्रबंधनः हालांकि इस तरह की प्रजातियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता ब्रॉयलर की तुलना में बेहतर होता है परंतु फिर भी कुछ विध्वंसक बीमारियाँ जो की विषाणुओं द्वारा जनित होती है उसके लिए इनमें टीकाकरण (टेबलः 3) करना अनिवार्य होता है।

उम्र	टीका का नाम	खुराक	देने की विधि
1 दिन	मैरेक बीमारी	0.2 एमएल	चमड़े के नीचे
7 दिन	रानीखेत बीमारी (लासोटा)	1.0 बूंद	आँख व नाक में
14 दिन	गमबोरो इंटर्मीडियट रानीखेत बीमारी	1.0 बूंद	मुँह में
28 दिन	(बूस्टर डोज)	1.0 बूंद	पानी में
42 दिन	फाउल कॉलरा	1.0 एम.एल	चमड़े के नीचे
42–70 दिन	फाउल पॉक्स	0.5 एम.एल	विंग वेब
105–126 दिन	इन्फेक्शस कोरीज़ा एवं एग ड्राप सिंड्रोम	0.5 एम.एल	मांस के निचे

टेबल ३. टीकाकरण का विवरण

प्रायः किसानों को मुर्गीयों में टीकाकरण नियमित रूप से करते रहना चाहिए जिससे की उनकी मृत्यु दर कम हो अन्यथा किसानों को बहुत अधिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। कृमि रहित रखने के लिए हर महीने के अंतराल पर डीवर्मिंग दवा देते रहना चाहिए।

2. अर्ध–गहन पद्धति से बैकयार्ड मे दोहरे प्रयोजन प्रजाति वाले मुर्गी की पालन

इस तरह की मुर्गी के प्रजाति को घर के पीछाते (बैकयार्ड) मे कम से कम लागत मे आसानी से पाला जा सकता है। एक किसान अपनी रुचि, क्षमता एवं उपलब्ध संसाधनों को देखते हुए 20–50 मुर्गी तक पाल सकता है। इसके लिए प्रति मुर्गा कम से कम 2 वर्ग फीट की जगह के हिसाब से जमीन से 1–2 फीट ऊंचाई पर एक विशेष घर बनाना चाहिए ताकि इसके मल को आसानी से साफ किया जा सके। प्रायः घर के सतह को छिद्रयुक्त बनाना चाहिए ताकि इसका मल आसानी से नीचे गिर सके और घर के अंदर जीवाणुओं एवं विषाणुओं का घनत्व कम से कम हो जिससे इनमें होने वाले बीमारी की संभावना कम हो जाती है। औसतन एक किसान 10 फीट X 10 फीट के घर को कम लागत वाली सामाग्री से बनाने में 8–10 हजार रुपए का खर्च आता है जिसकी उम्र लगभग 4–5 साल होती है। इस पद्धति मे मुर्गियों को दिन में घर के पिछे में बाहर निकालने दिया जाता है और शाम में उसे घर के अंदर थोड़ा दाना देकर रात में वहीं रहने दिया जाता है।

अ॰ आहार व्यवस्थाः समान्यतः बैकयार्ड मुर्गी पालन में ज्यादा बाहरी दाना देने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ये घर के पिछाते मे कीड़े–मकोड़े, अनाज इत्यादि खाकर अपनी पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा कर लेती है। परंतु उत्पादकता बढ़ाने के लिए पूरक के रूप में प्रति दिन उसकी उम्र के हिसाब से कुछ स्टार्टर/ग्रोअर/लेयर फीड देना चाहिए। मुख्यतः 24–28 वें सप्ताह में मुर्गियाँ अंडे देना प्रारम्भ करती है इस समय इनका वजन लगभग 2.2–2.5 किग्रा॰ तक होता है। समान आकार एवं वजन तथा ज्यादा से ज्यादा अंडे देने के लिए लेयर फीड अथवा विभिन्न कैल्सियम के स्रोतों वाले आहार (लाईम पाउडर, शेल ग्रिट इत्यादि) 3–4 ग्राम प्रति दिन प्रति चूजा देना चाहिए।

ब॰ स्वास्थ्य प्रबंधनः बैकयार्ड मुर्गी पालन में रानीखेत बीमारी की संभावनाएं ज्यादा होती है जो की पूर्ण विनाशकारी होती है इसीलिए इन मुर्गियों का टीकाकरण करवाना बहुत जरूरी होता है। इसके अलावा मुक्त रेंज में चरने के कारण परजीवी संक्रमण का खतरा बना रहता है जिसके लिए हर तीन महीने के अंतराल पर कृमि उन्मूलन (डीवर्मिंग) की दवा देते रहना चाहिए जिससे इनकी वृद्धि दर बढ़ती है। आवास हवादार एवं ऊंचे स्थान पर होने से भी सूक्ष्म जीवाणुओं एवं विषाणुओं का घनत्व कम रहता है और परिणामस्वरूप बीमारी का खतरा भी घट जाता है। अगर ऊँचे स्थान पर आवास बनाने की व्यवस्था ना हो तो फर्श पर 3–4 इंच मोटी लकड़ी के बुरादे की परत डाल देने से भी बीमारी के रोकथाम मे मदद मिलती है। एक किसान का 25 इम्प्रूवड मुर्गी पालन से होने वाले सकल लाभ एवं लाभ–लागत अनुपात का विवरण टेबलः 4 में परदर्शित किया गया है।

टेबल 4: बैकयार्ड (13 नर + 12 मादा) मुर्गीपालन के लाभ–लागत अनुपात का विवरण

क्र.	विवरण	मूल्य (रू0)	कुल मूल्य (₹)
1.	गैर–आवर्ती / अनावर्ती व्यय		
	अ. घर बनाने का खर्च (स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री एवं एस्बेस्टोस)– घर का टिकाऊपन केवल 3 साल तक होता है।	.....	5000 / –
	ब. उपकरण की लागत (2 प्लास्टिक का ड्रिंकर एवं फीडर)		500 / –
	कुल गैर– आवर्ती / अनावर्ती व्यय (टोटल खर्च का केवल 50 प्रतिशत)	.....	
2.	आवर्ती व्यय		2750 / –
	अ. 25 चूजों का कुल लागत (2 महीना ओल्ड) 2250 / –		
	ब. नरमुर्गी (9–16 सप्ताह) के दाना का कुल खर्च: 13 मुर्गी ×56 दिन×30 ग्राम दाना / मुर्गी	90 / चूजा 30 / किग्रा.	2250 / – 436.8 / –
	स. मादा मुर्गी (9–76 सप्ताह) के दाना का कुल खर्च:12 मुर्गी ×476 दिन×30 ग्राम दाना / मुर्गी	30 / किग्रा.	5140.8 / –
	द. दवाई एवं टीका का कुल खर्च	20 / मुर्गी	500 / –
	(25 मुर्गी) मजदूर का कुल खर्च	.....	
	मृत्यु दर	.....	
	कुल आवर्ती व्यय		8327.6 / –
3.	कुल व्यय (1+2)		11077.6 / –
	आमदनी का ब्योरा		
	अ.16 सप्ताह ओल्ड नर मुर्गी से कुल आय: 2.5 किलोग्राम / मुर्गी ×13	180 / किग्रा.	5850 / –
	ब. अंडे से कुल आय:140 अंडे / मुर्गी / चक्र	10 / अंडे	16800 / –
	स. मादा मुर्गी से कुल आय: 2.1 किलोग्राम / मुर्गी × 12	180 / किग्रा.	4536 / –
4.	कुल आमदनी (सकल लाभ)	.....	27186 / –
5.	शुद्ध लाभ = कुल आमदनी (4)–कुल व्यय (3) =(27186–11077.6)	.....	16108.4 / –
6.	लाभ–लागत अनुपात (बी:सी अनुपात): 16108.4 / 11077.6	.....	1.45

निष्कर्ष

पूर्वोत्तर क्षेत्र की जलवायु परिस्थिति में बैकयार्ड मुर्गी पालन के लिए बहुत कम जमीन एवं पूंजी की आवश्यकता होती है, क्योंकि ये मुर्गियाँ घर की चहारदीवारी के अंदर स्वतः घूमते हुए अपने भोजन का आसानी से इंतेज़ाम कर लेती है। इन मुर्गियों को पालने के लिए विशेष घर बनाने की जरूरत नहीं पड़ती है केवल परभक्षियों से बचाव करने के लिए लोकल उपलब्ध सामग्री से घर बनाना पड़ता है। इन मुर्गियों की प्रतिकूल परिस्थिति में भी बहुत अच्छी रोग प्रतिरोध क्षमता होती है एवं इसके अंडे एवं मांस का स्वाद देशी मुर्गी की तुलना में ज्यादा गुणकारी माना जाता है। इस सिद्ध प्रौद्योगिकी को अपनाने से ग्रामीण परिवेश की महिला एवं बच्चों को कुपोषण से सुरक्षा प्रदान करने में सहायता मिलेगी।

पोषक तत्वों से भरपूर एवं महत्वपूर्ण दलहनी सब्जियां: पोषण सुरक्षा के आयाम

• मीनू कुमारी[1], आर.एस.पान[1], अरूण कुमार सिंह[1], स्मरणिका मिश्रा[2] एवं कुमारी शुभा[3]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर –कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

[2] भारतीय बागवानी अनुसन्धान संस्थान, हैसरघट्टा, बैंगलोर

[3] भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दलहनी सब्जियाँ स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले बायोएक्टिव रसायनों के साथ–साथ कार्बोहाइड्रेट, विटामिन और खनिजों का एक आवश्यक स्रोत हैं। ताजा या प्रसंस्कृत दलहनी सब्जियाँ के उपयोग की मांग उनके संतुलित आहार के बारे में बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता के कारण लगातार बढ़ रही है। इसलिए, दलहनी सब्जियाँ की इष्टतम पैदावार को बनाए रखना बेहद महत्वपूर्ण है। अब तक अनुसंधान का ध्यान मुख्य रूप से दलहनी सब्जियों की तुलना में दाल पर केंद्रित था। अल्पदोहित दलहनी सब्जियाँ विभिन्न स्थलों में रूपात्मक रूप से भिन्न होती हैं। भविष्य में बढ़ती आबादी को खिलाने के लिए उनके उपयोग में सुधार लाने के लिए अल्पदोहित दलहनी सब्जियाँ को बढ़ावा देने के लिए अनुसंधान प्रयासों की आवश्यकता है।

दलहनी सब्जियाँ के समूह में मटर, लोबिया/बोदी, फ्रेंच बीन, सेम, सब्जी सोयाबीन, लीमा बीन, ग्वार फली, बाकला, सोर्ड बीन/सेम्बा, कमरंगा बीन/विंग्ड बीन, केवाच आदि सब्जियों की एक श्रृंखला शामिल है। लेकिन इन बीजों का भंडार राष्ट्रीय बीज निगम (National Seed Corporation) के बीज स्टॉक में कुल स्टॉक उपलब्धता का केवल 18 % –19 % है जो केवल चार दलहनी सब्जियों (मटर, बोदी, फ्रेंच बीन और सेम) की सीमित किस्मों से युक्त है। इन सब्जियों में से, देश के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में खेती के लिए ए आई सी आर पी (AICRP) के माध्यम से सीमित संख्या में किस्मों की पहचान की गई है । यह फलियों की खेती की स्थिति और उनकी बीज उपलब्धता को इंगित करता है जिसे टमाटर वर्गीय या सब्जियों के अन्य प्रमुख समूह की तरह उन्नत करने की आवश्यकता है। दलहनी सब्जियां न केवल मानव आहार में प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं बल्कि प्रचुर मात्रा में विटामिन और खनिजों की आपूर्ति भी करती हैं। अफ्रीका में, अधिकांश फलियां आमतौर पर ज्वार और बाजरा के साथ दाल के रूप में खाई जाती हैं, जबकि भारत में, हरी कोमल फली और छिलके वाले अपरिपक्व बीजों को सब्जी के रूप में और दाल के लिए सूखे बीजों का भी सेवन किया जाता है। अत्यधिक पोषण महत्व होने के अलावा (तालिका 1), दलहनी सब्जियाँ की नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता इसे मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए भी लाभदायक होती है। इन फलीदार पौधों की विविधता की समृद्धि काफी हद तक आदिवासी और जातीय विविधीकरण, पौधों के उपयोग और धार्मिक अनुष्ठानों के साथ पारिस्थितिक विविधता के कारण है। फलियां विविधता उत्तर पूर्वी क्षेत्र,पूर्वी पठारी क्षेत्र और पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में व्यापक रूप से वितरित हैं। हालांकि खपत के मामले में, केवल मटर, बोदी, सेम और फ्रेंच बीन प्रमुख समूह में शामिल किये जाते हैं और अन्य छोटी फलियां कम अवधि के लिए बाजार में उपलब्ध होती हैं।

नाम	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	कैलोरी
मटर	5	14	0.4	81
सेम	8	21	0.6	117
फ्रासबीन	2	7	0.1	31
लीमाबीन	8	21	0.4	115
बाकला	8	18	0.7	88
रनरबीन	2	3	0	23
केवांच	23.5	52	14	–
सोर्डबीन	27–35	45–69	1.4–9.9	–
बोदी	3	11	–	16
सब्जी सोयाबीन	7.2	11	6	141
सब्जी अरहर	21	23.88	2.3	136
विंग्डबीन (कमरंगा)	12	28	0.9	148
ग्वारफली	3.2	10.8	–	16

तालिका 1

दलहनी सब्जियों का पोषण मूल्य (ग्राम प्रति 100 ग्राम)

(स्रोतः चौधरी, 1967)

वांछनीय लक्षणों के हस्तांतरण के लिए दलहनी सब्जियों पर ज्यादा काम नहीं किया गया है, इसका व्यावसायिक रूप से उपयोग करने की आवश्यकता है। आई सी ए आर (ICAR) ने

कम उपयोग वाली सब्जियों के सुधार और इन फसलों की अपार संभावनाओं को महसूस करने को प्राथमिकता दी। इस क्रम में, नेटवर्क के तहत विभिन्न समूहों की 13 महत्वपूर्ण कम उपयोग वाली सब्जी फसलों पर ध्यान केंद्रित करते हुए "कम इस्तेमाल की गई सब्जी फसलों में सुधार" एक नेटवर्क परियोजना शुरू की गई है जिसमें बाकला और सेम भी शामिल हैं। इस खंड में "कम इस्तेमाल की गई दलहनी वर्ग" के संभावित फसलों का उल्लेख किया गया है, जहां सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों द्वारा सुधार कार्य किए जाने की आवश्यकता है।

सेम (Lablab purpureus): यह स्वदेशी सब्जी भारत में व्यापक रूप से उगाई जाती है और अनुकूलन की विविध प्रकृति के कारण प्रसार अन्य देशो में भी बढ़ रहा है, हालाँकि अभी भी कुछ संभावित प्रजातियाँ क्षेत्र के स्थानीय आदिवासियों द्वारा अप्रयुक्त और संरक्षित हैं। फली के प्रकारों की परिवर्तनशीलता भारत के पूर्वी क्षेत्र में स्थित जर्मप्लाज्म विविधता को दर्शाती है (चित्र–1a)। इसकी उन्नत किस्में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में बीज श्रृंखला में उपलब्ध हैं। यद्यपि प्रतिरोध प्रजनन के साथ–साथ पोषण संबंधी शोध के लिए विविध जर्मप्लाज्म का उपयोग करने के लिए अनुसंधान हस्तक्षेप की जरूरत है। उदाहरण के लिए लाल रंग की सेम की प्रजातियां स्थानीय लोगों के बीच काफी प्रचलित है और पोषक तत्वों के सन्दर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है, हलाकी इसकी प्रकाश से असंवेदनशील किस्मों की उपलब्धता नहीं है। अतः ऐसी किस्मों के अनुसन्धान की आवश्यकता है।

लीमा बीन (Phaseolus lunatus L-) : इसे डबल बीन या बटर/ मक्खन बीन के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत में व्यावसायिक रूप से नहीं उगाया जाता है और इसलिए फ्रेंचबीन की तरह लोकप्रिय नहीं है। यह ज्यादातर देश के पहाड़ी इलाकों में उगाया जाता है और कुछ जगहों पर इसे स्थानीय रूप से 'वाल' के नाम से जाना जाता है ।इसके बीज और ताजी हरी फलियों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है, हालांकि पूरी फली को उबालने के बाद भी खाया जाता है (चित्र–1b) ।इसके दो मुख्य बीज प्रकारः छोटे और बड़े बीज वाले रूप हैं, जिनमें से छोटे बीज वाले एक को भारत में खपत के लिए पसंद किया जाता है ।इसे लोकप्रिय बनाने के लिए प्रति पौधे फली की संख्या, प्रति फली में बीजों की संख्या और बीजों के पोषण मूल्य को मजबूत करने कीआवश्यकता है।

फील्ड बीन (Lablab purpureus var- lignosus): इसे आमतौर पर अपने स्थानीय नाम (हिंदी – बल्लारय मराठी–पोपट, गुजराती – वैलय तेलुगु – अनुमुलुय तमिल – मोचाईय कन्नड़ – अवारेय मलयालम –मोच कोट्टा) से जाना जाता है। इसके कोमल और सूखे बीज को क्रमशः सब्जी और दाल के रूप में खाया जाता है (चित्र1c)द्य इसकी खेती ज्यादातर छोटे और सीमांत किसानों द्वारा अपने स्वयं के सहेजे गए बीजों के उपयोग से की जाती है। यह झाड़ीदार प्रकार की होती है और चढ़ने की बहुत कम या कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाता है। फली आयताकार, चपटी और चौड़ी,और रेशेदार होती है, जिसमें 4–6 बीज होते हैं। बीज लगभग गोल सफेद, भूरा या काला होता है। पौधा एक विशिष्ट गंध का उत्सर्जन करता है।

इसकी खेती अक्सर बारानी फसल के रूप में की जाती हैऔर चावल की फसल के बाद बची हुई नमी का उपयोग करती है। इसकी लोकप्रियता महाराष्ट्र, तेलंगाना और कर्नाटक के कुछ हिस्सों तक सीमित है, हालांकि देश के अन्य कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों में इस फसल दक्षता का परीक्षण नहीं किया गया है। अतः इस सब्जी –सह–दाल फसल को अन्य कम लाभकारी फसलों के स्थान पर संभावित फसल के रूप में खाया जा सकता है। इसकी वैज्ञानिक खेती, उपज और आर्थिक लक्षणों में सुधार, यांत्रिक कटाई के मुद्दों को अनुसंधान गतिविधियों के रूप में लेने की आवश्यकताहै।

क्लस्टर बीन/ग्वारफली (Cyamopsis tetragonoloba L- Taub-): क्लस्टर बीन प्रोटीन और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का एक सस्ता स्रोत है औरहरी खाद की अच्छी फसल भी है(चित्र 1d)। सूखा प्रतिरोधी और उच्च तापमान सहिष्णु फसल होने के कारण यह जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में उष्णकटिबंधीय देशों के लिए एक संभावित सब्जी फसलहै। आहार विविधीकरण और वह भी बेहतर पोषण के साथ ग्वारफलीएकसस्ती और व्यापक रूप से अनुकूलित सब्जियों में प्रमुख भूमिका निभाता है। कैल्शियम, आयरन और फाइबर का अच्छा स्रोत होने के साथ साथ, हड्डियों के स्वास्थ्य, बेहतर रक्त परिसंचरण और पाचन तंत्र के लिए भी लाभदायक हैं।

कमरंगा बीन/ विंग्डबीन (Psophocarpus tetragonolobus L-): विंग्डबीन को गोवा बीन, मनीला बीन और फोरएंगल्ड बीन के नाम से भी जाना जाता है। यह वार्षिक फसल के रूप में उगाया जाता है। इसकी हरी कोमल फली, छिलका, सूखेबीज, पत्ते, फूल, कंदमूल को खाया जाता है (चित्र 1e)। इसके अलावा,यह फसल प्रोटीन और कोलेस्टेरोलरहित तेल के समृद्ध स्रोत के साथ औषधीय गुणों से भी युक्त है।यह व्यापक रूप से भारत के पूर्वी और उत्तर–पूर्वी भागों के आदिवासियों के बीच पिछवाड़े की फसल के रूप में उगाया जाता है। 1970 के दशक के अंत में विंग्डबीन के लिए सुधार कार्यक्रम शुरू किया गया था, हालांकि इसकी लोकप्रियता नहीं है और अभी भी इस फसल को मुख्य धारा में लाने के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है।

केवांच/वेलवेट बीन (Mucuna puriensis L-): इसे केवांच के नाम से भी जाना जाता है जो अफ्रीका और उष्णकटिबंधीय एशिया का मूलनिवासी है।यह प्रोटीन से भरपूर होता है और इसमें अन्यफलियां जैसे सोयाबीन, लीमाबीन आदि की तुलना में अधिक पोषकतत्व होते हैं (चित्र 1f)।परंपरागत रूप से केवांच के बीज का उपयोग पार्किंसंस रोग के उपचार के लिए और यूनानी दवाओं की तैयारी में भी किया जाता है। इस औषधीय सह सब्जी फसल को इष्टतम उपज और गुणवत्ता के लिए खेती और कटाई की तकनीक पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसकी औषधीय किस्में विकसित की गई हैं किन्तु सब्जी किस्मों के भी विकाश की आवश्यकता है।

सब्जी सोयाबीन (Glycine maũ L-): सब्जी सोयाबीन, इसकी अनाज प्रजातियों के समान है, लेकिन इसकी हरी, मीठे और बड़े आकार के फली को सब्जी की खेती की जाती है (चित्र 1g)। हरी सब्जी सोयाबीन या एडामे, पूर्वी एशियाई देशों (चीन, जापान, ताइवान, थाईलैंड) में लंबे समय से खेती की जाती है और नाश्ते के उद्देश्य के लिए काफी लोकप्रिय है। इसमें प्रोटीन, आयरन और कैल्शियम अन्य दलहनी फसलों की तुलना में ज्यादा मात्रा में पाई जाती है। इसकी 65–75 दिनों की छोटी वृद्धि अवधि होती है और यह लगभग उच्च उपज के साथ फसलचक्र में संकीर्ण समय में उगाने के लिए उपयुक्त बनाती हैद्य इसलिए, भारतीय आहार में सोयाबीन की सब्जी को शामिल करने की काफी संभावनाएं हैं।स्वर्ण वसुंधरा इसकी एक उच्च पैदावार वाली किस्म का विकास भी किया गया है जो सब्जी के साथ साथ प्रसंस्करण के लिए भी उपयुक्त है।

सब्जी अरहर (Cajanus cajan L-): अरहर की सब्जी अत्यधिक पोषक संभावित फसल है।यह पोषक तत्वों में अनाज का प्रोफाइल, प्रोटीन, विटामिन (A, C, B कॉम्प्लेक्स) और खनिज (कैल्शियम, आयरन, जिंक और कॉपर) का एक अच्छा स्रोत है (चित्र 1h)। अरहर की सब्जी के छिलके का प्रतिशत 72% है जबकि हरी मटर के 53% हैं। विशेष रूप से उत्तरी भारत में यह दैनिक व्यंजनों में सबसे अधिक पोषकतत्वों से भरपूर सब्जियों में से एक बन सकता है।

बकला (Vicia faba L-): यह बकला बीन के नाम से भी जाना जाता है। यह मुख्य रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहारऔर मध्यप्रदेश में दलहनी फसल के रूप में उगाया जाता है। लेकिन इसकी हरी कोमल फली और छिलके वाली हरी फलियाँ भी सब्जी के रूप में खाई जाती हैं (चित्र 1i)। बीज प्रोटीन के समृद्ध स्रोत हैं और इसमें पोषण–विरोधीकारक (टैनिन, विसिन, कॉन्विसाइन) भी होते हैं जो फेविजम का कारण बनते हैं। पौधों की संरचना, जैविक और अजैविक स्रोतों का प्रतिरोध और बीज की गुणवत्ता सुधार की गुंजाइश के लिए ध्यान आकर्षित करती है और इसलिए, इसे कम फसलों के लिए आई सी ए आर नेटवर्क परियोजना में शामिल किया गया है।

अगस्ती/अगाथी (Sesbania grandiflora L-) : यह अपने फूलों और पत्तियों के लिए मूल्यवान है जो विटामिन ए में समृद्ध है। इसमें दवा, सजावटी, भोजन और चारा मूल्य भी हैं। यह एक बार हमासी फसल है, जिसे आमतौर पर पिछवाड़े के पेड़ के रूप में उगाया जाता है और विशेष रूप से पंजाब, दिल्ली, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, तमिलनाडु, केरल और अंडमान में पाया जाता है।यह बीज द्वारा लगाया जाता है। आज तक, अगाथी की कोई उन्नत किस्म नहीं है, लेकिन दो रूपों को जाना जाता है, एक सफेद फूल और दूसरा लाल फूलों वाला(चित्र 1j)। सफेद फूल वाले प्रकार पोषणवाटिका के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।

सोर्ड बीन (Canavalia gladiata L-) : यह एक बारहमासी के रूप में उगाया जाता है और ज्यादातर मध्य और दक्षिण भारत में इसकी खेती की जाती है। कोमलफली, बीज और पत्तियों का सेवन सब्जी के रूप में किया जाता हैय लेकिन

भ्च्छ विषाक्तता के कारण यह एक अप्रचलित सब्जी के रूप में मानी जाती है जब इसे कच्चा खाया जाता है (चित्र 1k)द्य हालांकि इसे पकाने पर विषाक्तता को हटाया जा सकता है।यह फसल बीज से उगाई जाती है। इसके चारा और बीजों में कई पोषण और जातीय औषधीय गुण होते हैं जो इसे सुधार कार्यक्रम के लिए एक संभावित फसल बनाते हैं।

रनर बीन (Phaseolus coccineus L-): इसे आमतौर पर स्कार्लेट रनर बीन के रूप में जाना जाता है।यह उष्णकटिबंध में अधिक ऊंचाई पर उगाया जाता है। इसमें बीन येलो मोजेक वायरस, स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम, जैंथोमोनस, स्यूडोमोनास फेजोलिकोला, एस्कोकाइटा एस पी पी, बीन कॉमन मोजेक वायरस और ककड़ी मोजेक वायरस का प्रतिरोध है। प्रतिरोध प्रजनन के लिए उपयोग की जानेवाली क्षमता के अलावा, इसके आकर्षक लाल रंग के फूल इसे सजावटी पौधे के लिए भी उपयुक्त बनाते हैं।लत्तरदार प्रकार के पौधे को बांस के डंडे से या अन्य लोहे के सलाखें पर सहारा देने की आवश्यकता होती है। यह भारत के उत्तर–पूर्वी पहाड़ियों में उगाया जाता हैऔर उपलब्ध परिवर्तनशीलता के संग्रह के लिए ICAR-NBPGR कार्यरत है।

निष्कर्ष:

दलहनी सब्जियां पोषण सुरक्षा प्रदान करती हैं जो विकासशील देशों में बहुत आवश्यक है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से, फलियां पौधों के प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, आवश्यक खनिज, विटामिन और ऑक्सीकरणरोधी का मूल्यवान स्रोत मानी जाती हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि फलियां वाली सब्जियों में कम वसा वाला आहार होता है जिसमें उच्च मात्रा में सुपाच्य प्रोटीन होता है। महिलाओं और बच्चों में मोटापा, हृदयरोग, मधुमेह और खून की कमी / एनीमिया जैसी नई जीवनशैली की बीमारियां उभर रही हैं, जिससे चिकित्सा खर्च अधिक हो रहा है। उपर्युक्त और अन्य कम ज्ञात दलहनी सब्जियां विकासशील देशों की आबादी के लिए पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करेंगी।

चित्र : a) सेम b) लीमाबीन c) फील्डबीन d) ग्वारबीन e) विंग्डबीन f) वेलवेटबीन g) सब्जी सोयाबीन h) सब्जीअरहर i)बाकला j) अगस्ती k) सोर्डबीन

पोषण सुरक्षा की ओर बढ़ते कदम

• शिवानी, कीर्ति सौरभ, सोनका घोष, संजीव कुमार, उमेश कुमार मिश्र, आशुतोष उपाध्याय एवं अभिषेक कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

हमारे देश में 1960 के दशक के आखिरी दौर में आई हरित क्रांति ने कृषि को एक नई दिशा दी, नया मोड़ दिया। इस क्रांति के दौरान खेती करने के तरीकों में बड़ा बदलाव हुआ। नई–नई प्रौद्योगिकियों जैसे धान एवं गेहूं की अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों के बीज, रासायनिक उर्वरक का इस्तेमाल, सिंचाई तंत्र, मशीनी उपकरणों का प्रयोग, कीटनाशकों द्वारा फसलों की सुरक्षा इत्यादि अपनाकर कृषि में आधुनिकता का समावेश किया गया। अधिक से अधिक किसानों को जागरूक बनाकर इन प्रौद्योगिकियों को अपनाने पर बल दिया गया। फलस्वरूप वैज्ञानिक एवं कृषक संवर्ग के सामूहिक प्रयास से उपज में काफी वृद्धि हुई और आज हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि स्वतंत्रता के बाद भारत में कृषि में एक रणनीति अपनाई गई, जिसकी परिणति हरित क्रांति में हुई, विशेषकर गेहूं एवं चावल के उत्पादन में और परिणामस्वरुप खाद्यान्न उत्पादन कई गुना बढ़ गया। वर्तमान दौर में हमने खाद्य सुरक्षा तो प्राप्त कर ली है पर अब हमें पोषण सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

जब बात पोषण सुरक्षा की आती है, तो सर्वप्रथम मिलेट्स अर्थात मोटे अनाज या कदन्न फसलों की बात होती है। मोटे अनाज के सेवन की समृद्ध परंपरा रही है और यह मानव जाति द्वारा उपजाई जाने वाली सबसे पुरानी फसलों में से एक है। हमारे साहित्य एवं दस्तावेजों में कई उद्धरण हैं, जिससे ज्ञात होता है कि पहले मोटा अनाज समग्र रूप से हमारे खान–पान की आदतों, पाक कला, अनुष्ठानों और समाज का अभिन्न अंग था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक मोटे अनाजों का उल्लेख है और भिगोने या उबालने पर उनके विभिन्न गुणों का वर्णन किया गया है। हमारे देश में मोटे अनाज की विविध पैठ और उनसे जुड़ी पाक विधियां है पर आधुनिकता के दौर में यह सारी चीजें बहुत पीछे छूट गई और धीरे–धीरे हमारी थाली से ये अनाज गायब हो गए। मोटे अनाजों को पुनः अपने खान–पान की दिनचर्या में शामिल करने के लिए भारत सरकार ने कई सराहनीय प्रयास किए हैं और कर रही है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन द्वारा पोषक अनाज पर वर्ष 2018 में एक उप–मिशन लागू किया गया तथा अप्रैल 2018 में मोटे अनाज को न्यूट्री अनाज का नाम दिया गया एवं वर्ष 2018 को मोटे अनाज के राष्ट्रीय वर्ष के रूप में घोषित किया गया था, जिसका मुख्य उद्देश्य बड़े पैमाने पर इस फसल को प्रोत्साहन देना और मांग पैदा करना था। फलतः संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मार्च 2021 में अपने 75 वें अधिवेशन में वर्ष 2023 को मोटे अनाजों का अंतरराष्ट्रीय वर्ष (इंटरनेशनल इयर ऑफ मिलेट्स –2023) घोषित किया तथा विश्व के लगभग 70 से अधिक देशों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। हमारे देश में प्रतिवर्ष 170 लाख टन मोटे अनाजों का उत्पादन होता है, जो एशिया के कुल उत्पादन का 80% से भी अधिक है। इस अन्न की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए इसे 'श्रीअन्न' भी कहा जाने लगा है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या है, जिसका बुरा प्रभाव विभिन्न फसलों पर हो रहा है। न्यूट्री अनाजों को उगाना आसान है तथा इनमें खराब जलवायु एवं सूखे को झेलने की क्षमता सकते हैं। न्यूट्री अनाज या श्रीअन्न केवल मानव जाति के स्वास्थ्य के लिए ही नहीं बल्कि हमारी धरती के लिए भी अच्छा है। जलवायु परिवर्तन और उससे उत्पन्न खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के कारण यह अनाज फिर से हमारे भोजन का हिस्सा बनने जा रहा है। मिट्टी की बिगड़ती स्थिति की चिंता और बढ़ती आबादी को पर्याप्त पोषण प्रदान करने की आवश्यकता भी इसे हमारे भोजन में शामिल करने का एक महत्वपूर्ण कारण कहा जा सकता ह। विषम परिस्थितियों, सभी प्रकार की मिट्टी और मौसम में भी यह फसल आसानी से उगाई जा सकती है। पोषक अनाज में पोटेशियम, मैग्नीशियम, जिंक, कैल्शियम, आयरन, प्रोटीन, फाइबर, विटामिन बी तथा कई अन्य

खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। ग्लूटेन नहीं होने के कारण यह अनाज आसानी से पच जाता है तथा मधुमेह को नियंत्रित करने में भी कारगर है। इसके अलावा यह हड्डियों को मजबूत बनाने, रक्त कोलेस्ट्रॉल कम करने, खून की कमी से निपटने तथा वजन को भी नियंत्रित रखने में काफी उपयोगी है ।

पोषक अनाजों का अंतरराष्ट्रीय वर्ष सतत् विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र के वर्ष 2030 के कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा, जैसे भुखमरी की समाप्ति, अच्छा स्वास्थ्य तथा आरोग्य, आजीविका तथा आर्थिक प्रगति, टिकाऊ उपभोग तथा उत्पादन, बेहतर पर्यावरण और सतत् विकास तथा पृथ्वी पर जीवन इत्यादि, जिसका विवरण निम्नलिखित है :–

1. पोषक अनाजों की टिकाऊ खेती से विषम जलवायु में भी टिक सकने वाली फसलें हो सकेंगी।

सतत विकास लक्ष्य–13 – बेहतर पर्यावरण और सतत विकास लक्ष्य पृथ्वी पर जीवन

- पोषक अनाज (मिलेट्स) कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सूखी जमीन पर न्यूनतम देख–रेख के साथ हो सकती है। अन्य अनाजों की तुलना में ये फसल कीट–पतंगों और मौसम के बड़े बदलावों से भी कम प्रभावित होती हैं।
- देश के कृषि क्षेत्र में मोटे अनाजों का उत्पादन करने और इसे बढ़ाने से अधिक कुशल, समेकित, आपदा–प्रतिरोधी और टिकाऊ कृषि–खाद्य प्रणाली विकसित होगी जिससे बेहतर पोषण, बेहतर पर्यावरण और बेहतर जीवन हासिल हो सकेगा।

2. पोषक अनाज की टिकाऊ खेती से खाद्य सुरक्षा तथा पोषण सुनिश्चित किया जा सकता है।

सतत विकास लक्ष्य–2 – भुखमरी की समाप्ति

- कम वर्षा वाले इलाकों में सूखे मौसम में केवल मोटे अनाजों की ही खेती हो पाती है। ऐसे में ये अनाज ही भोजन का साधन होते हैं।
- मोटे अनाज की खेती करने पर ये जमीन में उपलब्ध पोषक तत्वों को समाप्त नहीं करते बल्कि सूखी जमीन पर भी हरियाली का आवरण उपलब्ध करा कर, ये फसलें जमीन को बंजर होने से रोकती हैं और जैव–विविधता बढ़ाने तथा मिट्टी की उर्वरता को टिकाऊ बनाए रखने में मदद करती है।

3. पोषक अनाज पौष्टिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा

सतत विकास लक्ष्य–3 – अच्छा स्वास्थ्य तथा आरोग्य

- मोटे अनाज भोजन में खनिजों, फाइबर, एंटी–ऑक्सीडेंट्स और प्रोटीन के अच्छे स्रोत हैं। इनका ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है इसलिए ये उच्च रक्त शर्करा वाले लोगों के लिए अच्छे हैं। ये ग्लूटेन–रहित भी होते हैं तथा लौह तत्व की कमी वाले आहार में लोहे के अच्छे स्रोत हैं। विभिन्न प्रकार के फाइबर होने के कारण ये पाचन ठीक रखने तथा खून में शर्करा तथा वसाओं की मात्रा संतुलित रखने में सहायक होते हैं।

4. पोषक अनाजों की फसल और भंडारण उचित तरीके से करने से इनकी गुणवत्ता और पोषक तत्व सुरक्षित।

सतत विकास लक्ष्य–3 – अच्छा स्वास्थ्य और आरोग्य
सतत विकास लक्ष्य– 8 –सम्माननीय आजीविका तथा आर्थिक प्रगति

- फसल की सही समय पर कटाई और कुटाई करने से अच्छा दाना मिलना सुनिश्चित होता है। मशीनों के जरिए दानों का छिलका निकालना हाथ से दाना निकालने की तुलना में अधिक कुशलता से हो सकता है। मशीनों से छिलका निकालने से अनाज दूर–दूर छिटक कर बर्बाद नहीं होता और बाजार में अच्छी बिक्री के लिए बिना टूटे साबुत दाने मिलते हैं। इससे छोटे किसानों तथा अनाज के कारोबार में विभिन्न स्तरों पर लगे सभी लोगों की अच्छी आमदनी होती है। पोषक अनाजों के उपभोग और इनके बाजार को बढ़ावा मिलने से छोटे किसानों की अतिरिक्त आमदनी होगी और खाद्य–क्षेत्र में आर्थिक प्रगति को बढ़ावा मिलेगा।
- कृषि–प्रसंस्करण, खास तौर से पोषक आहारों के उत्पादन में, आधुनिक तरीके अपनाने से पारंपरिक और अपारंपरिक, दोनों तरह के ग्राहकों और बाजारों को आकर्षित किया जा सकता है। इन ग्राहकों में युवा, शहरी उपभोक्ता, पर्यटक आदि भी शामिल हैं। उत्पादों के मूल्य–संवर्धन से इनके बाजार का भी विस्तार होता है, खाद्य तथा पोषण सुरक्षा में वृद्धि होती है तथा छोटे किसानों की आमदनी में वृद्धि होती है।

5. पोषक अनाजों का व्यापार बढ़ने से वैश्विक खाद्य प्रणाली में विविधता बढ़ेगी।

सतत विकास लक्ष्य–8 –सम्माननीय आजीविका तथा आर्थिक प्रगत्ति और सतत विकास लक्ष्य–12 टिकाऊ उपभोग तथा उत्पादन।

- ज्वार सहित पोषक अनाज इस समय वैश्विक धान्य व्यापार का मात्र 3 प्रतिशत है। वैश्विक बाजार की मजबूती बढ़ाने तथा इसे खाद्यान्न बाजार में अचानक आ सकने वाले बदलावों को झेलने लायक बनाने के लिए पोषक अनाज महत्वपूर्ण विकल्प साबित हो सकते हैं। इनके अधिक उत्पादन से अनाजों में विविधता बढ़ेगी और बाकी अनाजों के उत्पादन में अचानक कमी होने की स्थितियों में खाद्य सुरक्षा बनी रहेगी।
- पोषक अनाजों के उत्पादन की मात्रा और कीमतों को लेकर बाजारों का उचित स्वरूप और पारदर्शिता सुनिश्चित की जानी चाहिए। तभी इनके उत्पादन में स्थायित्व और टिकाऊपन बना रहेगा। यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि दूसरे अनाज व्यापारियों की तरह पोषक अनाज के व्यापारियों को भी उपलब्ध आधुनिक संसाधनों (जैसे डिजिटाइदेशन आदि) के लाभ मिलें ताकि दूसरे अनाजों की तरह पोषक अनाजों को भी अतिरिक्त मूल्य मिल सके और इसके उत्पादकों की भी आमदनी बढ़ सके।

वर्षाश्रित क्षेत्रों में जल प्रबंध नीति

●आशुतोष उपाध्याय, पवन जीत, अकरम अहमद एवं अनुप दास
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

विश्व का कुल फसल भूमि का 80 प्रतिशत (लगभग 1.2 बिलियन हेक्टेयर) क्षेत्र वर्षा आधारित है, जो विश्व के खाद्य उत्पादन का आधा से ज्यादा भाग का निर्वहन करता है। वर्षा आधारित कृषि के अन्तर्गत उप–सहारा अफ्रीका में 95% से अधिक खेती योग्य भूमि, लैटिन अमेरिका में 90%, पूर्वी और उत्तरी अफ्रीका में 75%, पूर्वी एशिया में 65% और दक्षिण एशिया में 60% खेती योग्य भूमि आती है। वर्षा आधारित कृषि की विशाल क्षमता को नए और बेहतर कृषि जल प्रबंधन तकनीकों के कार्यान्वयन के माध्यम से उजागर करने की आवश्यकता है। जल संचयन और मिट्टी एवं जल संरक्षण तकनीकें, दो ऐसे पहलू हैं जिनके माध्यम से बेहतर तरीके से वर्षा आधारित कृषि में पैदावार बढ़ाने की रणनीतियाँ, वर्षा का उपयोग कर बनाई जा सकती हैं। विश्व स्तर पर यह अनुमान लगाया गया है कि जल संरक्षण और संचयन दोनों को मिलाकर फसल उत्पादन में लगभग 20 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है। लगभग 20 प्रतिशत वैश्विक फसल भूमि जल संचयन और संरक्षण रणनीतियाँ के लिए उपयुक्त है। भारत में, वर्षा आधारित क्षेत्रों में लगभग 47.5% खाद्यान्न, 80.2% दालें, 73% तिलहन एवं 90% से अधिक बाजरा का उत्पादन होता है। साथ ही साथ 40% चावल और 60% कपास का उत्पादन भी वर्षाश्रित क्षेत्रों में ही होता है और यह क्षेत्र देश की लगभग 40% आबादी और 60% पशुधन का भरण–पोषण करता है। वर्षाश्रित क्षेत्रों के किसानों को सिंचित क्षेत्रों की तुलना में कृषि से लगभग 40% कम आय प्राप्त होती है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में नीति विकल्प

वर्षा आधारित क्षेत्रों का विकास करने के लिए कृषि–पारिस्थितिकी के अनुसार योजना बनाकर काम करने की आवश्यकता है। कुछ प्रमुख नीति विकल्प निम्नलिखित हैं, जिसे नीचे दर्शाया गया है:–

- कृषि में नकदी फसलें शामिल करना (उदाहरण के लिए, जेट्रोफा की खेती पेट्रोलियम संकट की भयावहता को कम कर सकती है)।
- चारा और पशु आहार पैदा करने की क्षमता भी वर्षाश्रित क्षेत्रों में होती है। इन क्षेत्रों में व्यापक जल प्रबंधन नीतियों द्वारा फसल सघनता में काफी सुधार किया जा सकता है।
- भारत के पूर्वी पठारी क्षेत्रों में धान–परती भूमि प्रबंधन की काफी संभावनाएं हैं. परती भूमि में उचित फसल का चयन करके उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

धान परती भूमि में फसल सघनीकरण

वर्षाश्रित चारा उत्पादन

फसल विविधीकरण

- फसल विविधीकरण, मृदा कार्बनिक पदार्थ, अंतः नमी संरक्षण आदि उपायों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। यह उपाय वाष्पीकरण को कम करने, स्थानीय स्तर पर वर्षा का संग्रह/भण्डारण और इसे मिट्टी के अंदर लंबे समय तक बनाए रखने में मदद करते हैं।
- संग्रहित जल के निष्कर्षण और उपयोग को स्थानीय फसल–जल बजट की सीमा तक सीमित करना, पशुधन के लिए प्रावधान, और भागीदारीपूर्ण निर्णय लेने और शासन को सुविधाजनक बनाना भी वर्षाश्रित क्षेत्रों में आवश्यक है।
- मिट्टी में नमी की कमी को पूरा करने के लिए अन्य जलसंभर/झरनो/नदियों से पानी के स्थानांतरण के साथ क्षेत्रीय वर्षा की पूर्ति करना (या जल निकायों को आपस में जोड़ना) एवं कई तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। जिनमें बिना जुताई, बहु–प्रजाति कवर फसलें, स्ट्रिप क्रॉपिंग, छत पर खेती, शेल्टर बेल्ट, चारागाह फसल आदि शामिल हैं।
- मध्य–मौसम शुष्क अवधि के दौरान पूरक सिंचाई, खेत स्तर पर जल संचयन और पूरक सिंचाई, बेहतर सब्जी की खेती के तरीके जैसे टपक जल सिंचाई प्रणाली, प्लास्टिक मल्च, सीडलिंग ट्रे में नर्सरी तैयार करना और टेरेस कल्टीवेशन ने वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि प्रणालियों में जलवायु अनुकूलन की काफी संभावनाएं प्रदर्शित कीं हैं।

टपक जल पद्धति

प्लास्टिक मल्चिंग

सीडलिंग ट्रे में नर्सरी

टेरेस कल्टीवेशन

- वर्षाश्रित क्षेत्र में मृदा एवं जल संरक्षण संरचनाओं और जलाशयों का रख–रखाव, गाद निकलना आदि प्रक्रियाओं भी पर ध्यान देना चाहिए।
- क्षेत्रीय स्तर पर वर्षा जल संग्रहण, भंडारण और उपयोग पर निवेश, पशुधन और आजीविका आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद वर्षा आधारित फसलों को पूरक सिंचाई करके सुरक्षित करने के लिए एकत्रित पानी के सदुपयोग हेतु अधिनियम बनाने की आवश्यकता है।
- पानी के कई रूपों जैसे वाष्पीकरण, मिट्टी की नमी, ओस, वर्षा, सतह और भूजल में प्रौद्योगिकी एकीकरण को वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलों और आजीविका को सुरक्षित करने के लिए अभिन्न माना जाना चाहिए।
- संस्थागत तंत्र और भागीदारी के साथ टैंकों, बड़े स्थानीय जल निकायों के एक संरचित पुनरुद्धार की बहुत आवश्यकता है।
- बेहतर मिट्टी, पोषक तत्व और फसल प्रबंधन के साथ पूरक सिंचाई के लिए छोटे निवेश से छोटे पैमाने पर वर्षा आधारित कृषि में जल उत्पादकता और पैदावार दोगुनी से अधिक हो सकती है।
- वर्षा जल रिसाव और मिट्टी की जल धारण क्षमता को अधिकतम करने के लिए निवेश भूमि क्षरण को कम

करता है एवं फसल के विकास के लिए मिट्टी में उपलब्ध पानी को बढ़ाता है। इसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में पानी की गुणवत्ता में सुधार होता है।

- उत्पादन कारकों जैसे मिट्टी की उर्वरता, फसल की किस्में और जुताई के तरीकों में एक साथ सुधार होता है।
- छोटे पैमाने पर पूरक सिंचाई और संरक्षण कृषि जैसी प्रौद्योगिकियों के परिणामस्वरूप स्थानीय नीले जल संसाधनों पर कब्जा हो जाएगा और हरे पानी की खपत में वृद्धि होगी।

सीढ़ीदार निर्माण

समोच्च खेती

संरक्षण खेती

कमबद्ध ट्रेंच

- सीढ़ीदार निर्माण, समोच्च खेती, संरक्षण कृषि, डेड फरोस और क्रमबद्ध ट्रेंच जैसी विभिन्न रणनीतियाँ यथा स्थान जल संरक्षण (वर्षा जल रिसाव को अधिकतम करना) में वृद्धि करता है।
- शुष्क अवधि से निपटने के लिए, भूजल को रिचार्ज करने, ऑफ–सीजन सिंचाई को सक्षम करने, वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल के बहुआयामी उपयोग की अनुमति देने के लिए सतही सूक्ष्म बांधों, उपसतह टैंकों, खेत तालाबों, रिसाव टैंकों, डायवर्जन और रिचार्जिंग संरचनाओं को अपनाना चाहिए।
- किसान के खेत में वर्षा जल प्रबंधन में सुधार से लेकर जल की आपूर्ति के लिए अपवाह जल के प्रबंधन एवं पूरक सिंचाई द्वारा खाद्य उत्पादन करना।
- उन्नत किस्मों और सूक्ष्म पोषक तत्वों में संशोधन के साथ भूमि और जल प्रबंधन विकल्पों के समन्वय से वर्षा जल उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।
- वाटरशेड और बेसिन पैमाने पर एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन मुख्य रूप से नदियों, भूजल और झीलों में नीले पानी के आवंटन और प्रबंधन पर केंद्रित है।
- फसली क्षेत्र में अपवाह के माध्यम से वर्षा जल को संग्रह करके या वर्षा आधारित क्षेत्रों में अन्य उपयोग के लिए बांधों, मेड़ों, चौड़ी क्यारियों और फरोस, सूक्ष्म–बेसिनों, अपवाह पट्टियों को अपनाना चाहिए।

परकोलेशन टैंक

पवनरोधी व आश्रय पट्टियाँ

कृषि वानिकी

अंतर फसलें

- शुष्क रोपण, मल्चिंग, संरक्षण कृषि, अंतरफसल, पवनरोधी, कृषिवानिकी और वनस्पति के माध्यम से वर्षा आधारित क्षेत्रों से गैर–उत्पादक वाष्पीकरण को कम करें।
- संरक्षण कृषि, शुष्क रोपण, उन्नत फसल किस्मों, मिट्टी की उर्वरता प्रबंधन, इष्टतम फसल चक्र, अंतरफसल, कीट नियंत्रण और कार्बनिक पदार्थ प्रबंधन के माध्यम से उत्पादक वाष्पोत्सर्जन के रूप में बहने वाले जल संतुलन के अनुपात में वृद्धि की जानी चाहिए।
- हल द्वारा जुताई को संरक्षण कृषि में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अर्धशुष्क से लेकर शुष्क उप–आर्द्र क्षेत्रों के कुछ हिस्सों में उपज और जल उत्पादकता में बड़े सुधार हुए हैं।
- स्थानीय/क्षेत्रीय माप और रिमोट सेंसिंग का उपयोग करके वर्षा, मिट्टी की नमी, फसलों, जल निकायों और भूजल पर डेटा उत्पन्न करने के लिए वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए एक विशेष डेटा सेंटर स्थापित करने की आवश्यकता है।
- मांग पर पर्याप्त सेवा प्रदान करने के लिए बेहतर जल वितरण प्रणाली के साथ–साथ वर्षा आधारित कृषि में जल उपयोग दक्षता और उत्पादकता में सुधार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियों यानी मिट्टी की नमी सेंसर और उपग्रह वाष्पीकरण माप का उपयोग किया जाता है।
- प्रमुख सरकारी योजनाएं, जैसे कि बीज और उर्वरक सब्सिडी और मृदा स्वास्थ्य कार्ड, सिंचित क्षेत्रों के लिए डिजाइन की गई हैं और उनकी जरूरतों को ध्यान में रखे बिना केवल वर्षा आधारित किसानों तक विस्तारित की जाती हैं।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए संसाधनों का विधिवत राशि आवंटन करते हुए जल संसाधनों पर निवेश समानता बनाए रखी जानी चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल प्रबंधन के लिए समर्पित निवेश की आवश्यकता है और इसे किसी अन्य व्यापक कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
- स्थानीय भागीदारी शासन और जल पहुंच, उपयोग के मानदंड स्थापित करना और संबंधित संस्थागत तंत्र को नीति का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता है।
- वर्षा आधारित प्रणालियों में शासन एवं संस्थागत व्यवस्थाओं को सुदृढ़ कर स्थायी जल प्रबंधन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ को बनाया जा सकता है।
- वर्षा और मिट्टी पर समन्वित तरीके से विचार कर वर्षा आधारित कृषि की सम्भवानाओं को बढ़ाया जा सकता है।
- जल का लेखा–जोखा एवं अंकेक्षण कर वर्षा आधारित क्षेत्रों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष

वर्षाश्रित क्षेत्रों में भूमि एवं जल प्रबंधन कृषि उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पानी के विभिन्न रूपों – वाष्पीकरण/वाष्पोत्सर्जन, मिट्टी की नमी, ओस, वर्षा, सतही और भूजल संग्रह में विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलोत्पादन और आजीविका में सुधार किया जा सकता है। जल निकायों, मिट्टी और जल

संरक्षण परिसंपत्तियों, गाद हटाने/गाद अनुप्रयोग के रखरखाव के लिए तंत्र को परिभाषित करना आवश्यक है। पारंपरिक जल निकाय संख्या में असंख्य हैं और काफी जर्जर स्थिति में हैं। सरकार की पहल, संस्थागत तंत्र और जन भागीदारी के साथ योजनाबद्ध ढंग से इन टैंकों, पोखरों व अन्य बड़े स्थानीय जल निकायों के संरचित पुनरुद्धार एवं नियमित रखरखाव द्वारा वर्षाश्रित क्षेत्रों में भूमि एवं जल उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

संक्रामक बोवाइन राइनोट्रैकाइटिस : संकर नस्ल पशुओं में बांझपन का एक गंभीर समस्या

• पंकज कुमार[1], रश्मि रेखा कुमारी[2], मनोज कुमार त्रिपाठी[1], उमेश कुमार मिश्र[1], तारकेश्वर कुमार[1] एवं मनीष कुमार[3]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

[2]बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

[3]भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गुवाहाटी

पशुधन हमारे देश के लोगों के लिए प्रमुख रोजगार के साधन के साथ हमारे रीति रिवाज में भी शामिल है। पशुधन का कृषि में भी उपयोग है और इससे मिलने वाला दूध हमारे खान पान में भी सम्मिलित है। गोधन से बेहतर फायदा पाने के लिए प्रत्येक मादा गाय से प्रति साल एक नवजात का जन्म होना उचित माना जाता है। परन्तु अक्सर कई कारणों से ऐसा संभव नहीं हो पाता है। उन कारणों में प्रजनन अंगका संक्रमण भी प्रमुख है जिसका किसानों के बीच जानकारी होना जरुरी है। ऐसे ही एक कारण संक्रामकबोवाइन राइनोट्रैकाइटिस (आई.बी.आर) है। पशुपालकों में इसके संक्रमण के बारे में जानकारी का अभाव पाया गया है। अतः इस लेख से आई.बी.आर के बारे में जानकारी और रोकथाम के तरीकों के बारे में बताने का प्रयास किया गया है ।

परिचय

भारत में पशुधन की विशाल आबादी है, जिस पर देश के अधिकतर लोग सामाजिक–आर्थिक रूप से निर्भर हैं। देश में 19 वीं पशुधन जनगणना के अनुसार 3,287,240 वर्ग किमी के भौगोलिक क्षेत्र में 300 मिलियन गोजातीय पशु , 65.07 मिलियन भेड़, 135.2 मिलियन बकरियां और लगभग 10.3 मिलियन सूअर हैं। हाल की पशुधन गणनाओं में मवेशियों की आबादी को नकारात्मक वृद्धि के रूप में आंका गया है, जिसका मुख्य कारण देशी पशु की आबादी में कमी है। मवेशियों की आबादी में कमी के बावजूद, हमारे देश में संकर नस्ल की आबादी में वृद्धि देखी गई है। हमारे सर्वेक्षण के आधार पर यह देखा गया कि यद्यपि कृत्रिम गर्भाधान (AI) के कार्य में वृद्धि हुई है, फिर भी लगभग 60–70% गर्भाधान गांवों के सामुदायिक सांड की सेवा पर आधारित है।उच्च गुणवत्ता वाले वीर्य की डोज की बर्बादी, गर्भाधान करवाने वाले कर्मियों की कम दक्षता और कुल परियोजना में उपलब्ध देशी सांड के वीर्य के उपयोग (10%) जैसे विभिन्न कारणों से भारत वर्ष 2017–18 में 100 मिलियन कृत्रिम गर्भाधान के अपने महत्वाकांक्षी लक्ष्य का केवल 26 % ही हासिल कर सका है (द पायनियर, 10 अगस्त 2017)। इन सामुदायिक सांडों द्वारा दी जाने वाली प्राकृतिक सेवाएँ बोवाइन हर्पीस वायरस सहित कई यौन संचारित रोगों के लिए जिम्मेदार हैं, जो गोजातीय पशु में बांझपन के लिए जिम्मेदार है। विलंबता चरण में जाना संक्रामक बोवाइन राइनोट्रैसाइटिस पैदा करने वाले वायरस की विशेषता है। ऐसे गुप्त वायरस वाहक मवेशी बिना कोई लक्षण प्रकट किये, वायरस फैलाने का एक शक्तिशाली स्रोत बने रहते हैं। सबसे खतरनाक स्थिति पशुधन मालिकों या क्षेत्र के कृत्रिम गर्भाधान करवाने वाले कर्मियों और पारा वेटनरी कर्मियों के बीच इस बीमारी के बारे में अनभिज्ञता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर (आईसीएआर आरसीईआर), पटना द्वारा एक परियोजना के तहत किए गए सर्वेक्षण ने इस तरह के कथन का समर्थन किया, क्योंकि बिहार के 8 गांवों और झारखंड के 4 गांवों में किसी भी किसान को इस बीमारी के बारे में जानकारी नहीं थी। इस प्रकार के शोध का उद्देश्य पशु चिकित्सकों, प्रसार कार्यकर्ताओं और शिक्षाविदों के बीच इस बीमारी, इसके नियंत्रण और शमन के लिए उपलब्ध उपचार के बारे में जागरूकता फैलाना है, ताकि यह किसानों तक पहुंच सके जो पशुधन क्षेत्र के हित धारक श्रृंखला में पहले और अंतिम स्थान पर हैं।

संक्रामक बोवाइन राइनोट्रैकाइटिस (आई.बी.आर) वायरस बोवाइन हर्पीस वायरस 1 (BHV1) के कारण आईबीआर

होता है, जो हर्पीसविरिडे परिवार और अल्फा–हर्पीस–विरिने उपपरिवार से संबंधित है। यह डबल–स्ट्रैंडेड डीएनए वायरस है। बताया जाता है कि जीनोम लगभग 70 प्रोटीनों को एनकोड करता है, जिनमें से तीन ग्लाइकोप्रोटीन, gB, gC एवं gD नैदानिक महत्व के हो सकते हैं। BHV1 को प्रतिबंध एंडोन्यूक्लिज के आधार पर BHV–1.1 (श्वसन रूप) और BHV–1.2 (जननांग रूप) और अधिक सामान्य श्वसन रूप के रूप में तीन उपप्रकारों में विभेदित किया जा सकता है, जिसे सामान्यतः संक्रामक बोवाइन राइनोट्रैसाइटिस या रेड नोजके रूप में जाना जाता है। BHV–1.3 उपप्रकार (एन्सेफैलिटिक रूप) को अब BHV–5 के रूप में पुनर्वर्गीकृत किया गया है। BHV–1 हर्पीस सिम्प्लेक्स वायरस के साथ कुछ जैविक गुण साझा करता है और म्यूकोसल एपिथेलियम में प्रतिरूपित (तमचसपबंजपवद) होने में सक्षम है और बाद में परिधीय तंत्रिका तंत्र के गैंग्लिओनिक न्यूरॉन्स में आजीवन स्थापित रहता (latency) है। BHV–1 आम तौर पर 6 महीने से अधिक उम्र के मवेशियों को संक्रमित करता है जब मातृ प्रतिरक्षा (maternal immunity) कायम रहने में विफल हो जाती है।यह वायरस पर्यावरण में काफी प्रतिरोधी है। वायरस की संक्रामकता 4°C पर एक महीने तक स्थिर रहती है। यह वायरस फिनोल डेरीवेट, क्वाटरनरी अमोनियम यौगिक और फॉर्मेलिन जैसे आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले कई कीटाणुनाशकों के प्रति संवेदनशील होते हैं।

महामारी विज्ञानः

BHV–1 का पहला संक्रमण जर्मनी में 1841 में मवेशियों में दर्ज किया गया था, हालांकि इसे पहली बार 1958 में अलग किया गया था। BHV–1 की उपस्थिति देश–दर–देश और समय–समय पर अफ्रीका, अमेरिका चीन, इंग्लैंड, भारत और कई अन्य देशों से अलग–अलग बताया गया है। डेनमार्क, स्वीडन और स्विट्जरलैंड जैसे देश इस बीमारी को खत्म करने में सक्षम हैं और आधिकारिक तौर पर आईबीआर से मुक्त हैं। भारत में आईबीआर पहली बार 1976 में उत्तर प्रदेश में रिपोर्ट किया गया था और उसके बाद, यह देश के अधिकांश राज्यों में दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम (यानी बिहार, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, उड़ीसा, नागालैंड आदि) में रिपोर्ट किया गया है। रोगों की संख्या और मृत्यु दर दोनों आम तौर पर कम है। भारत की विभिन्न डेयरियों में किए गए एक विस्तृत अध्ययन में, यह बताया गया कि आईबीआर एंटीबॉडी देश के सभी क्षेत्रों में 36.5–84.5% के बीच व्यापक रूप से मौजूद थे और कुल मिलाकर 61.6% का प्रसार था। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर (आईसीएआर आरसीईआर), पटना ने बिहार के गोजातीय पशु के सीरम नमूनों में 6.1% में पाए जानेकी जानकारी दी है।

अतिसंवेदनशील परपोषीः मवेशी BHV–1 का प्राथमिक परपोषी है, हालांकि अन्य जानवर जैसे बकरी, भेड़, भैंस, ऊंट, हाथी, जंगली प्रजातियां संक्रमित हो सकती हैं और वायरस को आश्रय दे सकती हैं और वायरस को बनाए रखने में भूमिका निभा सकती हैं।

संक्रमण और संचरण के स्रोतः

सभी उम्र के जानवर संभावित रूप से जोखिम में होते हैं। वायरस मुख्य रूप से श्वसन, नेत्र या जननांग स्राव के सीधे संपर्क से संक्रमित पशुओं से असंक्रमित अतिसंवेदनशील पशुओं में फैलता है। आईबीआर वायरस बछड़ों के झुंड में तेजी से फैलता है। प्रभावित बछड़ों का स्राव अत्यधिक संक्रामक होता है और 10–14 दिनों तक संक्रामक रह सकता है।

संक्रमण का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत संक्रमित सांड और उसका वीर्य है। वीर्य संग्रह करने के दौरान संक्रमित सांड से अन्य सांडों के बीच वायरस यांत्रिक रूप से फैल सकता है। संक्रमित वीर्य कृत्रिम गर्भाधान द्वारा अतिसंवेदनशील मादा के लिए संक्रमण के स्रोत के रूप में भी कार्य कर सकता है और अक्सर संक्रामक पुस्टुलर वल्वो–वैजिनाइटिस पैदा करने वाले वायरस के संक्रमण का मुख्य मार्ग होता है। संक्रमित वीर्य चक्रीय पशुओं में प्रजनन क्षमता में कमी और असामान्य भ्रुण विकास के लिए भी जिम्मेदार हो सकता है।

रोग प्रकटीकरण

आईबीआर वायरस श्वसन और प्रजनन संबंधी लक्षणों और अक्सर माध्यमिक जटिलताओं से जुड़े बहु–प्रणालीगत रोग का कारण बनता है। ऊष्मायन अवधि 21 दिनों तक हो सकती है। आईबीआर संक्रमण पशु में नैदानिक (Clinical), उपनैदानिक (Subclinical) और अव्यक्त (latent) हो सकता है। क्लिनिकल आईबीआर बुखार के साथ नाक से स्राव, नाक में परिगलित घाव, श्वसन पथ के दर्द के कारण नेत्र श्लेष्मला शोथ के रूप में प्रकट होता है। नाक बंद होने के साथ–साथ नाक से स्राव विकसित हो सकता है और नाक में सुज्जनहोने

से इसे रेड नोज कहा जाता है। श्वसन संक्रमण के बाद गर्भपात भी हो सकता है। BHV–1 अन्य माध्यमिक बैक्टीरियल/वायरल संक्रमणों (बोवाइन पैराइन्फ्लुएंजावायरस, बोवाइन रेस्पिरेटरी सिन्सिटियल वायरस, मैनहेमिया हेमोलिटिका, पास्चरेला मल्टीसिडा और हिस्टोप्लाज्मा सोमनिस) के संक्रमण के बाद हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप ब्रोन्कोपमोनिया (Bronchopneumoni) या बोवाइन श्वसन रोग कॉम्प्लेक्स (BRDC) या शिपिंग बुखार हो सकता है। नेत्र श्लेष्मला शोथ से पलकें सूज सकती हैं और गंभीर मामलों में नाक पर अल्सर भी हो सकता है। स्वरयंत्र (Larynx) और श्वासनली में मवाद से दुर्गंध आती है, और श्वसन प्रक्रिया में दिक्कत होती है। भूख न लगना, वजन कम होना और दूध उत्पादन में कमी अक्सर हो सकता है। BHV–1 संक्रामक मादा पशु में पुस्टुलर वुल्वोवैजिनाइटिस (आई.पी.वी) और नर पशु में बालनोपोस्टहाइटिस (आई.बी.पी) का भी कारण बनता है। नैदानिक और उपनैदानिक दोनों प्रकार के संक्रमणों के दौरान सांडों के वीर्य में वायरस आ सकता है। गाय में आईपीवी या सांड में आईबीपी, जननांग पथ के पुष्ठीय घावों का कारण बनता है और गर्भपात का कारण बन सकता है। संभोग के 1–3 दिन बाद आईपीवी देखा जाता है। आईपीवी का पहला संकेत बार–बार पेशाब आना और बाद में योनी पर छोटी–छोटी फुंसियां (1–2 मिमी) निकलना है (चित्र 1)। आईपीवी संक्रमण आम तौर पर गर्भाशय ग्रीवा या गर्भाशय में प्रवेश नहीं करता है और इस प्रकार गर्भपात दुर्लभ है। यदि संक्रमित वीर्य का उपयोग करके कृत्रिम रूप से गर्भाधान सीधे गर्भाशय में किया जाता है, तो यह एंडोमेट्रैटिस को प्रेरित कर सकता है। इससे गाय का मद चक्र बाधित हो सकता है और उसकी प्रजनन क्षमता कम हो सकती है।

चित्र 1. संभावित आईबीआर ग्रसित मादा पशु (आई.पी.वी) में जाँच के लिए नमूना लेते हुए

आईबीपी वाले सांडों में कामेच्छा (libido) कम हो जाती है, लिंग और अग्रभाग की श्लैष्मिक सतह पर फुंसियां या अल्सर की उपस्थिति के कारण दर्दनाक इरेक्शन और स्खलन होता है।

नेत्र श्लेष्मला शोथ मोराक्सेला बोविस के कारण होने वाले "गुलाबी आँख" जैसे अन्य रोगजनकों की भागीदारी के परिणामस्वरूप भी प्रकट होता है, लेकिन गंभीर नेत्रश्लेष्मलाशोथ और कॉर्नियो–स्केलरल जंक्शन के पास कॉर्निया की सूजन और कॉर्नियल अल्सर की कमी के आधार पर इसे विभेदित किया जा सकता है । कभी–कभी यह एकमात्र नैदानिक प्रकटीकरण होती है।

रोग निदान

निदान का मुख्य उद्देश्य रोग की घटनाओं को जानना, नियंत्रण उपाय अपनाना और इस रोग से मुक्त सांडों का प्रमाणीकरण करना है। प्रभावित पशुओं में रोग का निदान नैदानिक लक्षणों और इतिहास के आधार पर नहीं हो सकता है। हालाँकि, प्राकृतिक सेवा के लिए स्थानीय सांड के उपयोग का इतिहास, ऊपर वर्णित लक्षण आगे की जांच के लिए संकेत हो सकते हैं। किसी आबादी में BHV–1 संक्रमण का मूल्यांकन सीरम एंटीबॉडी के आधार पर रोगजनक के प्रति परपोषी प्रतिक्रिया का अप्रत्यक्ष रूप से पता लगाकर और सबसे विशिष्ट वायरस का प्रत्यक्ष रूप पता लगाकर किया जाता है।

वायरस के एंटीबॉडी का पता लगाने के लिए आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले सीरोलॉजिकल परीक्षण वायरस न्यूट्रलाइजेशन (वीएन) परीक्षण, फ्लोरोसेंट एंटीबॉडी तकनीक और एंटीबॉडी के लिए एंजाइम–लिंक्ड इम्युनोसॉरबेंट एसे (एलिसा) हैं। संक्रमण के 1–21 दिनों के भीतर वायरस के प्रति सीरम एंटीबॉडी का पता लगाया जा सकता है। मातृ–व्युत्पन्न एंटीबॉडी आमतौर पर लगभग 4–5 महीनों में गायब हो जाती हैं।

BHV–1 के वायरस होने की पुष्टि अतिसंवेदनशील सेल कल्चर में लगाकर प्रयोगशाला में इसको अलग करके की जा सकती है। आमतौर पर वायरस को अलग करने का प्रयास रोग के दौरान नाक या प्रजनन पथ में घावों को साफ करके और उपयुक्त परिवहन मीडिया में संग्रह करके किया जा सकता है।

हाल ही में पॉलीमरेज चेन रिएक्शन (पीसीआर), रियल

टाइम पीसीआर (क्यूपीसीआर), दक्षिणी ब्लॉट हाइब्रिडाइजेशन और लेबल जांच जैसी कई आणविक जीवविज्ञान तकनीकें विकसित की गई हैं और इन्हें बहुत संवेदनशील, तेज, नमूना गुणवत्ता से स्वतंत्र और BHV–1 के निदान में प्रभावी माना जाता है। इस वायरस की जाँच के लिए विभिन्न नैदानिक जीन का पीसीआर द्वारा प्रवर्धन कर किया जाता है।

उपचार

आईबीआर समेत वायरल बीमारियों का कोई सीधा इलाज नहीं है। बचाओ और रोकथाम एक मात्र उपाय है । संक्रमित आईबीआर गाय या सांड को झुंड के बाकी हिस्सों से अलग किया जाना चाहिए और सूजन–रोधी दवाओं के साथ इलाज किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो माध्यमिक संक्रमण को रोकने के लिए व्यापक स्पेक्ट्रम एंटीबायोटिक दवाएं दी जा सकती हैं। पूरक उपचार में मल्टी–विटामिन का उपयोग और पर्याप्त खाना और आरामदायक तनाव मुक्त वातावरण का प्रावधान शामिल है। प्रभावी एंटी–हर्पीज दवाएं, जैसे एसाइक्लोविर, गैन्सीक्लोविर और विडारैबिन, मानव चिकित्सा में उपचार के लिए उपलब्ध हैं, लेकिन पशु चिकित्सा पद्धति में नहीं। कोई भी एंटीवायरल रोगनिरोधी उपचार रोग की घटनाओं को कम करने और/या गुप्त संक्रमण से उबरने में सक्षम नहीं है।

पशुओं में इस वायरस को कम करने के लिए अनुसंधान एंटीवायरल पुनः संयोजक इम्यूनोटॉक्सिन और हर्बल दवाओं के विकास पर आधारित है। हर्बल और शुद्ध उत्पाद नई एंटीवायरल दवा के विकास के लिए एक समृद्ध संसाधन प्रदान करते हैं, हालांकि अधिकांश अध्ययन कोशिका संस्कृतियों में हर्पीस सिम्प्लेक्स वायरस 1 तक ही सीमित हैं। पौधों की विभिन्न प्रजातियों से निकाले गए कई यौगिकों (टैनिन, फ्लेवोन, एल्कलॉइड) ने वायरस के स्पेक्ट्रम के विरुद्ध कृत्रिम परिवेशीय एंटीवायरल गतिविधि दिखाई है। एलोवेरा, रैम्नस फ्रेंगुला, रूम ऑफिसिनेल और कैसिया एंगुस्टिफोलिया के अर्क से एंथ्राक्विनोन को एचएसवी–1 के विरुद्ध उपयोगी बताया गया है। कैसिया जावनिका, मेलिया एजेडाराच, फिलैन्थस यूरिनेरिया, अचिरांथेस एस्पेरा की जड़ें, बेसेला रूब्रा और स्वर्टिया चिराटा पौधे के अर्क में हर्पीस वायरस सहित डीएनए वायरस के विरुद्ध एंटीवायरल गुण होने की जानकारी मिली है।

नियंत्रण के उपायः

बीमारी की घटनाओं को कम करने के लिए रोगनिरोधी टीकाकरण सबसे उपयुक्त साधन है और बाद में समय पर निदान, सकारात्मक जानवरों को अलग करना और हटाना और व्यापार संबंधी जैव सुरक्षा प्रभावी हो सकती है। BoHV1 संक्रमण के खिलाफ मवेशियों में उपयोग के लिए वैश्विक बाजार में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के टीके हैं परन्तु भारत वर्ष में यह इस्तमाल में नहीं है। यह 4 महीने और उससे अधिक की उम्र में और क्षेत्र में सभी अतिसंवेदनशील गोजातीय पशु आबादी को नैदानिक प्रकोप के मामले में दिया जा सकता है।

वायरसवाहक पशुओं की पहचान की जानी चाहिए और उन्हें झुंड से अलग किया जाना चाहिए। झुंड में नई गाय या सांड लाने से पहले स्वच्छता संबंधी उपाय और 21 दिनों की अवधि के लिए अलगाव या क्वारंटाइन अनिवार्य होना चाहिए। BoHV1 संक्रमित देशों से पशुओं, वीर्य और भ्रूणों पर सख्त आयात प्रतिबंध होना चाहिए।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में नैनोफर्टिलाइज़र का उपयोग

• कीर्ति सौरभ, शिवानी, गोविन्द मकराना, वेद प्रकाश, आशुतोष उपाध्याय, अनुप दास, अनिल कुमार सिंह, सोनका घोष एवं रवि रंजन
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

हरित क्रांति के बाद हमारे देश में कृषि उत्पाद की पैदावार में बहुत बढ़ोतरी हुई है, लेकिन अधिक उपज की ज्यादा से ज्यादा पाने की चाह ने किसानों को रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का भी जमकर उपयोग करने के लिए प्रेरित किया, जिसके दुष्परिणाम के हम सभी भुक्तभोगी हैं। आज जहां हमें इन जहरीली खाद्यान्नों का उपभोग कर कैंसर ग्रसित हो रहे हैं वहीं हमने अपने वातावरण अर्थात् जल, वायु एवं मृदा को भी प्रदूषित कर दिया है। इसलिए मौजूदा समय में खेत को उपजाऊ बनाए रखना आधुनिक कृषि की सबसे बड़ी और कठिन चुनौती बन गई है। हमें टिकाऊ फसल उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य संतुलन हेतु, समेकित पोषक तत्व प्रबंधन को अपनाने की आवश्यकता है। पोषक तत्वों के सभी स्रोत (रासायनिक उर्वरक, जैविक एवं जीवाणु खाद) का संतुलित, समुचित तथा समयानुकुल प्रयोग कर फसलों से उच्च उत्पादकता निरंतर पाने की प्रबंधन तकनीक जिससे मिट्टी और पर्यावरण को हानि ना पहुंचे "समेकित पोषक तत्व प्रबंधन" कहलाता है। यूं तो भारतीय कृषि में समेकित पोषक तत्व प्रबंधन का इस्तेमाल कोई नई बात नहीं है परंतु इसमें नैनो उर्वरकों का समावेश कृषि पद्धतियों की निरंतर विकसित होती प्रकृति का एक प्रमाण है । पारंपरिक उर्वरकों और जैविक उर्वरकों के साथ नैनो उर्वरक के एकीकरण से किसानों को अनेक फायदे हैं ।

उर्वरकों का सही मात्रा में उपयोग किसानों के लिए लाभकारी कृषि का आधार माना गया है। जहाँ पारंपरिक उर्वरकों का उत्पादन, भंडारण एवं स्थानांतरण प्रमुख चुनौती है, वहीं इनके असंतुलित प्रयोग के दुष्प्रभाव भी बृहद रूप से देखे गए हैं, साथ ही साथ इनकी उपयोग दक्षता भी दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। अतः उच्च पोषक तत्वों के साथ–साथ पर्यावरण–अनुकूल उर्वरकों को विकसित करने की आवश्यकता है। इन सभी समस्याओं के निवारण के लिए नैनो उर्वरक एक आशाजनक विकल्प के रूप में तेजी से उभर रहा है। नैनो उर्वरकों में फसल की पैदावार बढ़ाने, किसान की उत्पादन लागत कम करने और सब्सिडी बिल एवं उर्वरक आयात संबंधी सरकारी धन को बचाने की क्षमता है। साथ ही किसानों की पारंपरिक उर्वरकों के स्थानांतरण एवं भंडारण में होने वाले खर्च से भी बचत होती है। नैनो उर्वरकों में पोषक तत्वों के नैनो फार्मूलेशन होते हैं, जो कि 1–100 नैनोमीटर व्यास के आकार के होते हैं। विशिष्ट सतह क्षेत्र और अत्यंत सूक्ष्म आकार के होने के कारण, यह नियंत्रित एवं धीमी गति से पोषक तत्वों को मुक्त करते हैं, और साथ ही यह रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के संभावित प्रतिकूल प्रभावों के साथ–साथ उर्वरक अनुप्रयोग आवृत्ति को भी कम करते हैं। यह मृदा उर्वरा शक्ति, उत्पादकता और कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में सुधार के लिए जरूरी होता है। पोषक तत्वों के नैनो आकार में होने के कारण यह प्रतिक्रियाशील होते हैं एवं पौधों में बेहतर एवं प्रभावी तरीके से अवशोषित होते हैं। नैनो उर्वरक पोषक तत्वों की लीचिंग (निक्षालन) एवं वाष्पीकरण द्वारा होने वाली हानि को कम करते हैं तथा अधिक प्रतिक्रियाशील होने के कारण पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता में भी सुधार करते हैं। नैनो उर्वरक के रूप में हाल ही में इफको द्वारा किसानों के लिए कई तरल नैनो उर्वरक जैसे कि नैनो यूरिया,नैनो जिंक एवं नैनो डीएपी का निर्माण किया गया है। जिसका प्रयोग किसान

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन अर्थात पारंपरिक एवं जैविक खाद के साथ कर अधिक से अधिक लाभ कमा सकते हैं।

इस लेख में हमने भारतीय बाजार में उपलब्ध नैनो फर्टिलाइजर (नैनो यूरिया एवं नैनो डीएपी) की सही तरीके से प्रयोग करने की जानकारी किसानों तक पहुंचाने की कोशिश की है, ताकि किसान इस नवीन कृषि इनपुट का समावेश समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में करके कृषि उत्पादकता और स्थिरता को बढ़ा सके।

नैनो यूरिया उपयोग विधिः

(यूरिया की टॉप ड्रेसिंग के स्थान पर फसल की आवश्यकतानुसार नैनो यूरिया के 2–3 छिड़काव करें)

सारणी – 01

फसलों के प्रकार	नैनो यूरिया की मात्रा (प्रति 15 लीटर टंकी)	पहला छिड़काव	दूसरा छिड़काव	तीसरा छिड़काव
अनाज (धान, गेहूं, जौ)	2–3 ढक्कन	बुवाई के 35–40 दिन बाद या रोपाई से 20–25 दिन बाद	बुवाई के 50 से 65 दिन बाद या रोपाई से 40 से 50 दिन बाद	फसल विशेष में नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार
तिलहन (सरसों, मूंगफली, सोयाबीन)	1–2 ढक्कन	बुवाई के 30–35 दिन बाद	बुवाई के 50–60 दिन बाद	फसल विशेष में नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार
दलहन (चना, मसूर, मूंग, मटर, उरद)	1–2 ढक्कन	बुवाई के 40–50 दिन बाद	फसल विशेष में नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार करें	
सब्जियाँ	1–2 ढक्कन	बुवाई के 30–35 दिन बाद या रोपाई से 20–25 दिन बाद	अधिक बार तुड़ाई वाली फसलों में प्रत्येक तुड़ाई के बाद छिड़काव	
मक्का	1–2 ढक्कन	बुवाई के 30–35 दिन बाद या रोपाई से 20–25 दिन बाद	बुवाई के 55–65 दिन बाद	नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार
फल–फूल वाली फसलें	1–2 ढक्कन	फसल की नाइट्रोजन आवश्यकतानुसार 2–3 छिड़काव– फूल निकलने से पहले, फल बनने की प्रारंभिक अवस्था पर और बढ़वार के समय करें		
आलू	2–3 ढक्कन	कंद अंकुरण से 35 दिन बाद	कंद निर्माण के समय (अंकुरण से 45–55 दिन बाद)	नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार
गन्ना	2–3 ढक्कन	अंकुरण से 45–60 दिन बाद	अंकुरण से 75–80दिन के बाद	अंकुरण से 100–110 दिन बाद
चारा फसले (ज्वार एवं जई)	1–2 ढक्कन	बुवाई के 30–40 दिन बाद	प्रत्येक कटाई के 10–15 दिन बाद	

(स्रोतः इफको)

नैनो यूरिया का छिड़काव विभिन्न स्प्रेयर के द्वारा निम्नलिखित तरीके से किया जा सकता हैः

बैट्री चालित स्प्रेयर

फसल नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार 1.5–3.0 ढक्कन प्रति टंकी उपयोग करें (प्रायः 8–10 टंकी की मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त होती है।)।

पावर स्प्रेयर

फसल में नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार 3–4 ढक्कन प्रति टंकी उपयोग करें (प्रायः 4–6 टंकी की मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त होती है)।

ड्रोन स्प्रे

फसल की नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार 250–500 मिली प्रति टंकी प्रयोग करें (प्रायः 1–3 टंकी की मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त होती है)।

नैनो डीएपी प्रयोग दर, समय एवं विधि

बीज उपचार

- 3 –5 मिलीलीटर नैनो डीएपी की मात्रा का प्रयोग प्रति किलो बीज के दर से करें। एक समान रूप से घोल की परत बनाने के लिए उसमें आवश्यकतानुसार पानी मिलाएं।
- 20– 30 मिनट तक उपचारित बीजों को छांव में सुखाने के उपरांत बुवाई करें।

जड़ / कंद / सेट उपचार

- 3 –5 मिलीलीटर नैनो डीएपी की मात्रा का प्रयोग प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाने के लिए करें।
- जड़ / कंद / सेट को 20–30 मिनट तक उस घोल में डुबाएं फिर छांव में सुखाने के उपरांत ट्रांसप्लांट / बुवाई करें।

पर्णीय छिड़काव

- 2–4 मिलीलीटर नैनो डीएपी का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पौधे की क्रांतिक अवस्था (कल्ले शाखा बनना) पर छिड़काव करें।
- लंबी अवधि वाली या अधिक फास्फोरस की आवश्यकता वाली फसलों में फूल निकलने से पहले की अवस्था पर एक अतिरिक्त छिड़काव कर सकते हैं।

नैनो डीएपी का फसलवार प्रयोग, समय एवं दर

अनुशंसित फास्फोरस उर्वरक की आधी मात्रा को बुवाई से पहले अंतिम जुताई के समय खेत में डाल दें। इसके उपरांत नैनो उर्वरक का प्रयोग पौधे की विभिन्न क्रांतिक अवस्थाओं पर नीचे दिए गए सारणी के अनुसार करें।

(नैनो बोतल के एक ढक्कन की मात्रा = 25 मिली)

फसलों के प्रकार	बीज / जड़ / कंद / सेट उपचार	पर्णीय छिड़काव / 2–4 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी
अनाज (धान, गेहूं, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि)	बीज उपचार 3 –5 मिलीलीटर प्रति किलो बीज उपचार हेतु या रोपनी:3 –5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में जड़ उपचार हेतु	कल्ले निकलने पर (बीज अंकुरण से 30–35 दिन बाद या पौध रोपण से 20 से 25 दिन बाद)
तिलहन (सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी इत्यादि)	3 –5 मिलीलीटर प्रति किलो बीज	शाखाएं बनने पर (बीज अंकुरण से 30 – 35 दिन बाद)
दलहन (चना, मसूर, अरहर, मूंग, मटर, उरद इत्यादि)	3 –5 मिलीलीटर प्रति किलो बीज	शाखाएं बनने पर (बीज अंकुरण से 30 – 35 दिन बाद)
सब्जियाँ (आलू, प्याज, लहसुन, मटर, सेम, गांठदार सब्जी इत्यादि)	बीज उपचार 3 –5 मिलीलीटर प्रति किलो बीज उपचार हेतु या रोपनी :3–5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में जड़ उपचार हेतु	शाखाएं बनने पर (बीज अंकुरण से 30 – 35 दिन बाद)
कपास	3 –5 मिलीलीटर प्रति किलो बीज	शाखाएं बनने पर (बीज अंकुरण से 30–35 दिन बाद)
गन्ना	3 –5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी	शुरुआती कल्ले निकलने पर (प्लांटिंग से 40 से 60 दिन बाद)

(स्रोतः इफको)

नोटः नैनो डीएपी के प्रयोग की मात्रा फसल के प्रकार, बीज दर एवं फसल अवस्था के अनुसार परिवर्तनीय है।

- बेहतर परिणाम हेतु फास्फोरस की अधिक आवश्यकता वाली फसलों में फूल निकलने से पहले या अधिकतम कल्ले बनने की अवस्था पर दूसरा छिड़काव करें।

- सामान्यतः नैनो डीएपी तरल की 250 से 500 मिलीलीटर की मात्रा 1 एकड़ क्षेत्र में पर्णीय छिड़काव हेतु पर्याप्त है। छिड़काव के लिए पानी की मात्रा फसल बढ़वार की अवस्था एवं स्प्रेयर के अनुसार परिवर्तनीय है।

नैनो डीएपी तरल की मात्रा स्प्रेयर के अनुसार निम्नलिखित है

नैपसेक स्प्रेयर

नैनो डीएपी तरल के 1–2 ढक्कन (25–50 मिलीलीटर) का प्रयोग प्रति टंकी (15–16 लीटर) के हिसाब से करें। सामान्यतः एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव हेतु 8–10 टंकी का प्रयोग होता है।

पावर स्प्रेयरः

नैनो डीएपी तरल के 2–3 ढक्कन (50–75 मिलीलीटर) का प्रयोग प्रति टंकी (20–25 लीटर) के हिसाब से करें। सामान्यतः एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव हेतु 4–6 टंकी का प्रयोग होता है।

ड्रोनः

नैनो डीएपी तरल के 250–500 मि.ली. की मात्रा ड्रोन द्वारा 1 एकड़ क्षेत्र में छिड़काव हेतु उपयुक्त है। सामान्यतः एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव हेतु 10–20 लीटर पानी का प्रयोग होता है।

सामान्य जानकारी

- ❖ नैनो तरल उर्वरक का घोल बनाने हेतु साफ पानी का प्रयोग करें।
- ❖ स्प्रेयर से छिड़काव हेतु फ्लैट फैन या कट नोजल का प्रयोग करें।
- ❖ सुबह या शाम के समय छिड़काव करें जब पत्तियों पर ओस के कण न हों और अच्छे से अवशोषण हो सके।
- ❖ यदि छिड़काव से 12 घंटे के अंदर बारिश हो जाए तो पुनः छिड़काव करें।
- ❖ नैनो तरल उर्वरक सुरक्षित है और इसके संगठन GRAS (generally recognised as safe) एवं वैश्विक मानकों के अनुरूप है।

सावधानियाँः किसी भी नैनो तरल खाद के उपयोग से पहले हमें निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता हैः

- ❖ उत्पादन तिथि से 24 महीनों के अंदर प्रयोग करें।
- ❖ छिड़काव के समय मास्क व दस्ताने पहने।
- ❖ ठन्डे व सूखे स्थान पर भण्डारण करें।
- ❖ बच्चों व पालतू जानवरों की पहुँच से दूर रखें।

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध में यह पाया गया है कि जब हम हरी खाद के साथ 50% अनुशंसित नाइट्रोजन एवं फास्फोरस खाद की मात्रा एवं 0.5% की दर से नैनो फास्फोरस का छिड़काव गेहूं में कल्ले एवं फूल आने की अवस्था पर करते हैं तो 100% अनुशंसित नाइट्रोजन एवं फास्फोरस उर्वरक की तुलना में अधिक उपज प्राप्त होती है। इसी प्रकार एक अन्य शोध में यह पाया गया कि 50% अनुशंसित नाइट्रोजन खाद की मात्रा के साथ यदि 25% नाइट्रोजन गोबर खाद से एवं साथ में नैनो जिंक का छिड़काव किया जाए तो धान की उपज में 8.82% की बढ़ोतरी, 100% रासायनिक खाद की तुलना में प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष :

नैनो उर्वरकों को समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के मौजूदा ढांचे में निर्बाध रूप से समाहित किया जा सकता है। नैनो उर्वरकों का प्रयोग जब जैविक संशोधनों के साथ किया जाता है तो यह अपने उन्नत पोषक तत्व रिलीज गुण के साथ मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के लाभों को पूरा कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधे की वृद्धि एवं उत्पादकता पर सह–क्रियात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में नैनो उर्वरक की शुरुआत टिकाऊ कृषि के लक्ष्यों के अनुरूप है। पोषक तत्वों की उपयोग की दक्षता में सुधार करके और उर्वरक अनुप्रयोग की कुल मात्रा को कम करके नैनो उर्वरक पोषक तत्वों के अपवाह, भूजल प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

उत्तराखंड की निचली पहाड़ियों में सेब के फिनोलॉजी और अन्ना किस्म (कम द्रुतशीतन कल्टीवर) की अनुकूलन क्षमता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

●नेहा चंद[1] एवं मनीषा टम्टा[2]

[1]गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

सेब की खेती, भारत के हिमालयी क्षेत्रों में अनुकूल मौसम के कारण व्यापक रूप से फैली हुई है। हालांकि पर्वतीय क्षेत्र अपने प्राकृतिक सौंदर्य के बावजूद, उच्च तापमान, अनियमित वर्षा, वसंत में ओलावृष्टि और अत्यधिक ठंड की चपेट में आने जैसी चरम मौसमी घटनाओं के लिए विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं, जिस कारण क्षेत्र विशेष की सभी फसलों के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। उत्तराखंड की पहाड़ियों में जहां वर्षों से पारंपरिक रूप से सेब की खेती फलती–फूलती रही है, वहाँ आज के समय में जलवायु परिवर्तन एक महत्वपूर्ण खतरा बना हुआ है। मौसम की प्रतिकूल स्थितियों के दुष्प्रभाव को सेब की खेती के विभिन्न पहलुओं में स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है, जिसमें पौधे की फेनोलॉजी, कोंपल निकालना, फूल खिलना, फल धारण, उत्पादन और गुणवत्ता शामिल हैं। बढ़ता तापमान सीधे तौर पर सेब की द्रुतशीतन (चिलिंग) के लिए आवश्यक ठंडक पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता हैं, जिससे कम पुष्पन होता है और फलस्वरूप पैदावार भी कम होती है। इसके अलावा, वसंत के मौसम में ओलावृष्टि और बर्फबारी भी फल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप, जलवायु अनुकूलनता अधिक होने के कारण कीवी और अनार जैसे फलों का इन उच्च हिमालायी क्षेत्रों में विस्तार हो रहा है। इन चुनौतियों को कम करने और पहाड़ी क्षेत्रों में सेब की खेती के व्यावसायिक महत्व को बनाए रखने के लिए, बदलते जलवायु परिदृश्य में सेब की जलवायु अनुकूल कम द्रुतशीतन आवश्यकता वाली प्रजातियों का विकास का महत्वपूर्ण है। उत्तराखंड की निचली पहाड़ियों में ऐसी ही एक कल्टीवर "अन्ना" जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के लिए संभावित समाधान प्रदान करती है।

सेब (*Malus pumila*) रोसेसी परिवार में आता है। यह एक मध्यम जलवायु का फल है, जो समुद्र स्तर से 1500 – 2600 मीटर के बीच उगाया जाता है (वानी और सोंगारा, 2017)। स्वभाव से पतझड़ी होने के कारण, सेब ठंडे तापमान को पसंद करता है जिससे कि उसकी बेहतर वृद्धि और कली का विकास हो सके। भारत में प्रमुख सेब उत्पादक राज्य जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड हैं, जो कुल सेब के क्षेत्र का 95.4 प्रतिशत और कुल सेब उत्पादन का 98.7 प्रतिशत देते हैं। भारत में, इसका 3.01 लाख हेक्टेयर क्षेत्र पर उत्पादन किया जाता है, जिससे 23.27 लाख मीट्रिक टन उत्पादन और 7.73 टन/हेक्टेयर उत्पादकता प्राप्त होती है (एनएचबी 2018)। भारत में उत्तराखंड राज्य बागवानी फसलों के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें सेब और नारंगी शीर्ष स्थान पर हैं। अन्य फसलों में, मालटा, मैंडरीन, नींबू और गलगल की भी खेती की जाती है। उत्तराखंड में सेब की खेती लगभग 25201 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है (चिमवाल एट अल, 2019)।

जलवायु परिवर्तन का पहाड़ी क्षेत्रों में सेब उत्पादन पर

प्रभाव

पहाड़ी क्षेत्रों में सेब उत्पादन जलवायु परिवर्तन के कारण निम्न रूप से प्रभावित हो रहा है– फिनोलॉजीः जलवायु में बदलाव, पौधों की विकास अवस्थाओं / गतिविधियों जिसे फिनोलॉजी भी कहा जाता है, पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जलवायु परिवर्तन, विशेष रूप से तापमान, कोंपल निकालना / कली फूलना, कली फूटना, पुष्पन, फल विकास, परिपक्वता, उत्पादन और गुणवत्ता सहित फिनोलॉजिकल चरणों को प्रभावित करता है। समशीतोष्ण फलों की फसलों में, फूल निकलने की शुरुआत तापमान के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है और इसके लिए कम तापमान (पर्याप्त चिलिंग घंटों की पूर्ति के लिए 7 डिग्री सेल्सियस से कम) की आवश्यकता होती है। फूल निकालना मुख्य रूप से कम तापमान से प्रभावित होता है, हालांकि आनुवंशिक रूप, प्रकाश अवधि और तापमान के बीच एक मजबूत अंतःक्रिया भी फूल को नियंत्रित करती है। सर्दियों के दौरान जलवायु गर्म होने से गर्मी की आवश्यकता तेजी से पूरी हो जाती है, जिससे फूल आने का समय और फूल आने की अवधि दोनों में भिन्नता आती है।

फल पैदावारः प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में वसंत ऋतु के दौरान जब तापमान काफी कम हो जाता है, तब फूल खिलने और लगने के समय आमतौर पर सेब के फलों को पाले (फ्रॉस्ट) से नुकसान पहुंचता है। ओलावृष्टि की घटनाएं पौधों को वानस्पतिक अवस्था में रहने के लिए मजबूर करती हैं और प्रजनन चरण में देरी करके पौधों को प्रभावित करती हैं जो अंततः फल बनने को प्रभावित करती है । यह विभिन्न चरणों में विकासशील फूलों और फलों को भी नुकसान पहुंचाता है और अंततः कम फलधारण और खराब पैदावार प्राप्त होती है।

फल गुणवत्ताः हिमालयी क्षेत्रों में सर्दियों के दौरान बढ़ते तापमान और वर्षा की कमी सेब के फूलने और फलने के पैटर्न को बदल देती है, जिससे फल की पैदावार और गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती है। सेब की खेती के तहत, अधिकांश निचले ऊंचाई वाले क्षेत्र तापमान बढ़ने के कारण सर्दियों में पर्याप्त ठंडक नहीं पाते हैं, जिससे फूलों की कलियां गुच्छों का उत्पादन करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप खिलने की अवधि में देरी होती है और फलों की गुणवत्ता भी खराब होती है।

परागण

फलों के उत्पादन के लिए परागण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। वसंत ऋतु में पाले की घटना और कम तापमान पर फल बनने से फलों के उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कम तापमान और असमय वर्षा परागण को बाधित करती है क्योंकि इससे परागकण धुल जाते हैं। शोध बताते हैं कि -2.2° C से नीचे का तापमान फूलों को नष्ट कर सकता है और 4.4° C से कम तापमान पर मधुमक्खियों की गतिविधि पूरी तरह से रुक जाती है। फलस्वरूप, कम परागण के कारण फलों की पैदावार कम हो जाती है। इससे न केवल किसानों की आय प्रभावित होती है बल्कि बाजार में फलों की उपलब्धता और उनकी कीमत भी बढ़ जाती है।

सेब उत्पादन हेतु समाधान

सेब में फसल उत्पादन को सीमित करने वाले कारकों में न्यूनतम शीतकालीन तापमान, वसंत ऋतु में पाला, ओलावृष्टि, उच्च आर्द्रता और गर्मियों के दौरान शुष्क हवाएं शामिल हैं। गहन सेब उत्पादन के लिए, M9 और MM 111 रूटस्टॉक पर ग्राफ्टेड अन्ना किस्म अच्छा प्रदर्शन करती है और रेड डिलीशियस, ग्रानी स्मिथ और गाला स्मिथ सेब की किस्मों की तुलना में सबसे अधिक फल लगने का प्रतिशत (22.6%) दर्ज किया गया है। सेब की सभी कम ठंड की आवश्यकता वाली किस्मों में, अन्ना किस्म ने फल के आकार, रंग और दृढ़ता के मामले में सर्वोत्तम परिणाम दिखाए है।

उत्तराखंड की निचली पहाड़ियों में सेब की खेती के लिए "अन्ना" किस्म का विकास 1965 में इजराइल में ए. स्टीन द्वारा किया गया था। इसकी ठंड की आवश्यकता बहुत कम है, यानी केवल 300 घंटे, और इसे सीमित ठंड वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता है (कार्टर, 2007)। अन्ना किस्म, जिसे कम ठंड की आवश्यकता वाली किस्मों के रूप में जाना जाता है, को गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है और इसे कम, मध्यम ऊंचाई वाली पहाड़ियों और यहां तक कि कोमल ढलान वाली भूमि पर भी उचित फूल आने और फलने के लिए उगाया जा सकता है।

बढ़ते वायुमंडलीय तापमान, असमान वर्षा, और पाले के जोखिम से जुड़े बढ़ते अपरिहार्य और अवांछनीय जोखिमों का सामना करने के लिए अनुकूलन उपायों की आवश्यकता है। आईपीसीसी की तीसरी आकलन रिपोर्ट के अनुसार, अनुकूलन में जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को कम

करने और लाभकारी प्रभावों को बढ़ाने की क्षमता है (आईपीसीसी 2007 बी)। बेहतर बागवानी उत्पादन के लिए, कम बर्फबारी की तीव्रता के प्रमाणों को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। नए बाग की योजना बनाने के लिए संकेतित जलवायु परिवर्तनों के अनुसार फलों की किस्मों का पुनर्मूल्यांकन अनिवार्य है। बेहतर उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए, निचली पहाड़ियों और उत्तर भारतीय मैदानी इलाकों के कुछ क्षेत्रों में कम ठंड (800 घंटे से कम) वाले फलों की किस्मों जैसे सेब, आड़ू, नाशपाती और बेर को लिया जा सकता है और उनका व्यावसायिक रूप से उत्पादन किया जा सकता है। सेब की कुछ कम ठंड वाली किस्में तनावपूर्ण परिस्थितियों, विशेष रूप से समशीतोष्ण क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अनुकूलित हो चुकी हैं, जैसे अन्ना, मायान, तम्मा वेरेड, ट्रॉपिकल ब्यूटी, पार्लिन की ब्यूटी, श्लोमित, मिशेल, नियोमी (राय एट अल., 2015)। अन्य महत्वपूर्ण अनुकूलन उपायों में शामिल हैं–

1. जल संचयन और सिंचाई प्रबंधन में सुधार
2. पाले से बचाव के उपाय लागू करना, जैसे धुआं करना या पेड़ों को ढकना
3. मृदा स्वास्थ्य में सुधार और कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग
4. कीट और रोग प्रबंधन तकनीकों को अपनाना
5. जलवायु–स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाना, जैसे मिश्रित खेती और फसल चक्रण

निष्कर्ष

चूंकि उत्तराखंड राज्य हिमालय और मैदानी दोनों क्षेत्रों को समाहित करता है, कम ठंड की आवश्यकता वाली किस्मों को किसी भी क्षेत्र में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है जो कि राज्य की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने में मददगार हो सकती हैं। जलवायु परिवर्तन फल की मात्रा और गुणवत्ता दोनों के उत्पादन को कैसे प्रभावित करती है यह जानना सभी के लिए अति आवश्यक है। हिमालयी क्षेत्रों में मौजूदा जलवायु परिस्थितियों जैसे तापमान में उतार–चढ़ाव, अपर्याप्त ठंड, ओलावृष्टि और असमय बारिश की बढ़ती घटनाओं से प्रायः खराब परागण, निम्न स्तर का फूल प्रतिधारण और फल बनता है और जिसके परिणामस्वरूप सेब के फल की खराब उत्पादकता प्राप्त होती है। नतीजतन, गुणवत्ता और मात्रा इन परिवर्तनों के नकारात्मक प्रभाव को और अंततः सेब के फल के कम व्यावसायिक उत्पादन को झेलती है। अतएव सेब की कम द्रुतशीतन आवश्यकता वाली किस्मों जैसे "अन्ना" की और अधिक व्यावसायिक खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।

पशुओं में मिर्गी रोग के प्रकार, कारण एवं उपचार

●रश्मी रेखा कुमारी[1], निर्भय कुमार[1], पंकज कुमार[2] एवं मंजू कुमारी[1]
[1]बिहार वेटनरी कॉलेज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दौरे मस्तिष्क में तेजी से अत्यधिक न्यूरोनल डिस्चार्ज का नैदानिक परिणाम है। यह या तो शरीर के एक विशिष्ट हिस्से में, या अधिक सामान्यतः, एक साथ कई क्षेत्रों में ऐंठन के रूप में प्रकट होता है। मिर्गी कृन्तकों, बिल्लियों, कुत्तों, घोड़ों, मवेशियों, बकरियों और प्राइमेट सहित कई प्रजातियों में होती है। इन प्रजातियों में कुत्ते और बिल्लियाँ में सबसे आम तौर पर मिर्गी के दौरे पड़ते हैं । यह कुत्तों की आबादी के 0.5 से 5.7 प्रतिशत तक को प्रभावित करता है। मिर्गी को मुख्य रूप से इडियोपैथिक/क्रप्टोजेनिक मिर्गी, रोगसूचक मिर्गी और प्रतिक्रियाशील मिर्गी में वर्गीकृत किया गया है एवं नैदानिक अभिव्यक्ति के आधार पर, दौरे के प्रकारों को दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है: सामान्यीकृत और फोकल। दौरे के उपचार का उद्देश्य दौरे की आवृत्ति, अवधि और गंभीरता को कम करना है। दीर्घकालिक दौरे पर नियंत्रण के लिए दो सबसे लोकप्रिय दवाएं फेनोबार्बिटल और पोटेशियम ब्रोमाइड हैं। मिर्गी के गैर–औषधीय उपचार में सर्जरी, योनि तंत्रिका उत्तेजना, केटोजेनिक आहार और अन्य वैकल्पिकध्पूरक उपचार, जैसे, योग, आयुर्वेद, इलेक्ट्रोएन्सेफलोग्राफी (ईईजी), बायोफीडबैक तकनीक, संगीत चिकित्सा, ट्रांसक्रानियल चुंबकीय उत्तेजना, एक्यूपंक्चर, और हर्बल उपचार (पारंपरिक चीनी चिकित्सा) शामिल हैं ।

दौरे को शरीर की गैर–विशिष्ट, कंपकंपी और असामान्य घटनाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है और यह मस्तिष्क में तेजी से अत्यधिक न्यूरोनल डिस्चार्ज का नैदानिक परिणाम है। मिर्गी का दौरा मस्तिष्क में असामान्य अत्यधिक या समकालिक न्यूरोनल गतिविधि के कारण संकेतों और/या लक्षणों की एक क्षणिक घटना है और पशु चिकित्सा में सबसे आम क्रोनिक न्यूरोलॉजिकल विकार है। इसकी पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति के साथ अचानक और सहज शुरुआत होती है। क्षणिक मस्तिष्क अधिभार एकल दौरे का कारण बन सकता है, हालाँकि तंत्रिका संबंधी स्थिति को मिर्गी कहा जाता है जब दौरे बार–बार होते हैं और किसी प्रणालीगत बीमारी के कारण अकारण होते हैं। अधिकांश मामलों में, मिर्गी एक आजीवन बीमारी है।

मूल रूप से, मस्तिष्क कोशिकाएं संचार करने केलिए विद्युत और रासायनिक संकेतों का उपयोग करती हैं, जो या तो दूसरे न्यूरॉन को सक्रिय या बंद कर सकती हैं। ऐसा माना जाता है कि दौरे तब पड़ते हैं जब मस्तिष्क में उत्तेजक और निरोधात्मक संकेतों का असंतुलन होता है। मस्तिष्क की खराबी के परिणाम स्वरूप तंत्रिका तंत्र के माध्यम से विद्युत संकेतों की बौछार शुरू हो जाती है और यह या तो शरीर के एक विशिष्ट हिस्से में, या अधिक सामान्यतः, एक साथ कई क्षेत्रों में ऐंठन के रूप में प्रकट होता है। दौरा मस्तिष्क की कार्यप्रणाली में क्षणिक गड़बड़ी है। यह अचानक शुरू होता है, अपने आप बंद हो जाता है और दोबारा होने लगता है। मस्तिष्क के सेरेब्रल कॉर्टेक्स में न्यूरॉन्स के आवेगीय डीपोलराइजिंग शिफ्ट के कारण न्यूरॉन्स के अचानक और अनियंत्रित विद्युत निर्वहन के कारण दौरा पड़ता है। न्यूरॉन्स

कई कारणों से अनायास डिस्चार्ज हो सकते हैं, जिनमें निरोधात्मक न्यूरोट्रांसमीटर गतिविधि में कमी, उत्तेजक न्यूरोट्रांसमीटर गतिविधि में वृद्धि या दोनों का संयोजन शामिल है। कोशिका झिल्ली या आंतरिक कोशिका चयापचय में परिवर्तन से न्यूरोट्रांसमीटर गतिविधि को बदला जा सकता है। दौरे की शुरुआत में, केवल कुछ अत्यधिक अस्थिर न्यूरॉन्स ही अनायास डिस्चार्ज हो सकते हैं। यह प्रारंभिक डिस्चार्ज मस्तिष्क के विपरीत गोलार्ध में आसपास के न्यूरॉन्स या न्यूरॉन्स को भी डिस्चार्ज करने का कारण बन सकता है और क्रमशः किंडलिंग औरमिररिंग नामक प्रक्रियाओं द्वारा जब्ती गतिविधि को फैला सकता है। न्यूरॉन के वातावरण में लगभग किसी भी परिवर्तन से सहज निर्वहन शुरू हो सकता है। न्यूरोनल परिवर्तन वि/रुवण की सीमा को प्रभावित करते हैं जो दौरे की गतिविधि का कारण बनता है।

मिर्गी कृन्तकों, बिल्लियों, कुत्तों, घोड़ों, मवेशियों, बकरियों और प्राइमेट सहित कई प्रजातियों में होती है। इन प्रजातियों में कुत्ते और बिल्लियाँ में सबसे आम तौर पर मिर्गी के दौरे पड़ते हैं। अमेरिकन केनेल क्लब द्वारा हाल ही में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, कुत्तों में 80 से अधिक स्वास्थ्य समस्याओं में से यह शीर्ष तीन चिंताओं में से एक है। यह कुत्तों की आबादी के 0.5 से 5.7 प्रतिशत तक को प्रभावित करता है।

नस्ल पूर्ववृत्ति और वंशानुक्रमः कुछ नस्लों में विशेष रूप से इसके विकसित होने की संभावना होती है, जो आनुवंशिक कारक की भूमिका का सुझाव देती है। सबसे अधिक प्रभावित होने वाली नस्लों में बीगल, डछशंड, डेलमेटियन, जर्मन शेफर्ड कुत्ते, कीशोंड, बॉक्सर, कॉकर और स्प्रिंगर स्पैनियल, कोलीज, गोल्डन और लैब्राडोर रिट्रीवर्स, मिनिएचर श्नौजर, पूडल, सेंट बर्नार्ड, साइबेरियन हस्की और वायर–बालों वाले टेरियर शामिल हैं।

मिर्गी के प्रकार

मिर्गी मस्तिष्क का एक विकार है जिसमें बार–बार दौरे पड़ते हैं। अंतर्निहित पहचान योग्य कारण (ईटियोलॉजी) के आधार पर मिर्गी को मुख्य रूप से तीन प्रकार के इडियोपैथिक/क्रिप्टोजेनिक मिर्गी, रोगसूचक मिर्गी और प्रतिक्रियाशील मिर्गी में वर्गीकृत किया गया है। यदि अंतर्निहित कारण की पहचान नहीं की जा सकती है तो प्राथमिक मिर्गी का दौरा (यानी, इडियोपैथिक) शब्द का उपयोग किया जाता है। यदि दौरे मस्तिस्क में किसी–किसी संरचनात्मक घाव के कारण होते हैं, तो उन्हें द्वितीयक मिर्गी के दौरे के रूप में परिभाषित किया जाता है। रिएक्टिव मिर्गी दौरा शब्द का प्रयोग तब किया जाता है जब सामान्य मस्तिष्क क्षणिक प्रणालीगत अपमान या शारीरिक तनाव के प्रति प्रतिक्रिया करता हैय इन दौरों को आवर्ती नहीं माना जाता है। घरेलू पशुओं में नैदानिक अभिव्यक्ति के आधार पर, दौरे के प्रकारों को दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता हैः सामान्यीकृत और फोकल। कुत्तों में इस तरह की समस्या में नोट किए गए एक्स्ट्रा–क्रैनियल कारणों में स्ट्राइकिन टॉक्सिकोसिस, हाइपोकैल्सीमिया और बेबेसिया गिब्सनी द्वारा हाइपोग्लाइसीमिया, नशीली दवाओं का नशा, और इंट्राक्रैनियलकारण वायरल एन्सेफलाइटिस, कैनाइन डिस्टेंपर आदि शामिल थे। इसके अलावा, संभावित कारणों की एक लंबी सूची है। इडियोपैथिक मिर्गी का निदान आम तौर पर तब किया जाता है जब अन्य सभी दौरे–उत्प्रेरण कारको को खारिज कर दिया जाता है। इडियोपैथिक मिर्गी कुत्तों में बार–बार होने वाले दौरे का सबसे आम कारण है और शुरुआत की उम्र आमतौर पर 1 से 3 साल के बीच होती है। कुछ चिकित्सक 6 महीने से लेकर 5 साल तक की व्यापक सीमा का उपयोग करते हैं। प्रकाशित प्रसार 0.5 से 4.1 प्रतिशत के बीच है और पुरुष महिलाओं की तुलना में अधिक प्रभावित हैं।

8 महीने से कम आयु वर्ग के कुत्तों में दौरे के संभावित कारण–विकास संबंधी विकार, एन्सेफलाइटिस या मेनिनजाइटिस, आघात, पोर्टाकैवल शंट, हाइपोग्लाइसीमिया, विषाक्त पदार्थ, आंतों के परजीवी, इडियोपैथिक मिर्गी (दुर्लभ)

8 महीने से 5 वर्ष आयु वर्ग के कुत्तों में दौरे के संभावित कारण–इडियोपैथिक मिर्गी (सबसे आम), विकासात्मक विकार, आघात, एन्सेफलाइटिस यामेनिनजाइटिस, एक्वायर्ड हाइड्रोसिफलस, नियोप्लासिया (ट्यूमर), पोर्टाकैवल शंट, हाइपोग्लाइसीमिया, इलेक्ट्रोलाइट गड़बड़ी, हाइपोथायरायडिज्म, विषाक्त पदार्थ।

5 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के कुत्तों में दौरे के संभावित कारण–नियोप्लासिया (ट्यूमर), अपक्षयी विकार, संवहनी विकार, हाइपोक्सिया (शरीर के ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी), हाइपोग्लाइसीमिया, इडियोपैथिक मिर्गी, आघात,

एन्सेफलाइटिस या मेनिनजाइटिस, एक्वायर्ड हाइड्रोसिफलस, गंभीर यकृत रोग, हाइपोकैल्सीमिया, इलेक्ट्रोलाइट गड़बड़ी, हाइपोथायरायडिज्म।

नैदानिक प्रत्यक्षीकरण

अधिकांश दौरे तीन चरणों में होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में विशिष्ट नैदानिक लक्षण होते हैं। दौरे का पहला भाग,आभा कहलाता है। इस पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता है, लेकिन कुत्ते के व्यवहार में बदलाव दिखाई देता है,जो आसन्न दौरे का संकेत देता है, और चिकित्सकीय रूप से आशंका, बेचैनी, घबराहट और लार आना इसकी विशेषता है। आभा की अवधि कुछ सेकंड से लेकर कुछ दिनों तक रहती है। आभा के बाद वास्तविक जब्ती होती है, जिसे इक्टस कहा जाता है। हालाँकि यह शायद ही कभी एक मिनट से अधिक समय तक चलता है, यह मालिक के लिए बहुत परेशान करने वाली घटना हो सकती है। दौरे के दौरान, जानवर आमतौर पर अपनी तरफ गिर जाता है और पैरों की पैडलिंग और शरीर की कठोरता से जुड़े हिंसक मांसपेशियों के संकुचन की एक श्रृंखला का अनुभव करता है। अधिक गंभीर दौरे में चेतना की हानि, अत्यधिक लार आना और अनैच्छिक पेशाब और शौच भी हो सकता है। दौरे के तुरंत बाद की अवधि को पोस्टिक्टल चरण के रूप में जाना जाता है। यह आमतौर पर एक घंटे से कम समय तक चलता है लेकिन एक या दो दिन तक भी चल सकता है। जानवर भ्रम, भटकाव, बेचैनी और अस्थायी अंधापन के लक्षण दिखा सकता है। बार–बार दौरे पड़ने के मामलों में, इंटर–इक्टल अवधि दौरों के बीच के अंतराल को दर्शाती है।इस अवधि के दौरान कुछ जानवर सामान्य होते हैं और अन्य नहीं, यह दौरे के कारण पर निर्भर करता है।दौरे से जुड़े व्यवहारिक परिवर्तनों में स्मृति की हानि, चेतना की कमी, मांसपेशियों की टोन या गति में परिवर्तन, दृश्य, श्रवण, या घ्राण मतिभ्रम और लार, पेशाब, शौच, या अन्य स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में व्यवधान शामिल हैं। इस प्रकार, दौरे की गंभीरता और विभिन्न चरणों की अवधि के आधार पर, जब दौरा गंभीर होता है, तो इसे ग्रैंडमाल कहा जाता है। पेटिट माल शब्द एक विशिष्ट ईईजी पैटर्न के साथ सामान्यीकृत दौरे को संदर्भित करता है। हालाँकि, उपरोक्त दो शब्दावलियों का अब उपयोग नहीं किया जाता है। थोड़े समय के भीतर दौरे की एक श्रृंखला, जिसमें दौरे के बीच कुत्ते को होश आ जाता है, उसे क्लस्टर दौरे कहा जाता है। स्टेटस एपिलेप्टिकस का तात्पर्य तेजी से दोहराए जाने वाले दौरे से है जिनके बीच चेतना की कोई अवधि नहीं होती है। दौरे को आंशिकया सामान्यीकृत के रूप में वर्गीकृत किया गया है। पहले मामले में, न्यूरॉन्स एक विशिष्ट क्षेत्र में निर्वहन करतेहैं। सामान्यीकृत दौरे के मामले में (जिसे टॉनिक–क्लोनिक दौरे भी कहा जाता है) इसमें जानवर का पूरा शरीर शामिल होता है। पहले (यानी टॉनिक) चरण के दौरान, जो आम तौर पर 10 से 30 सेकंड के बीच रहता है, एक जानवर जमीन पर गिर जाता है, चेतना खो देता है, और कठोरता से पैरों तक फैल जाता हैय इससे सांस रुक भी सकती है या कंपकंपी भी हो सकती है। दूसरे (यानी क्लोनिक) चरण में, जानवर के पैर दौड़ते हैं या चप्पू चलातेहैं, उसका मुंह चबाने की गति करता है, और वह हिलना जारी रख सकता है। इसके अलावा, जानवर किसी भीचरण के दौरान पेशाब कर सकता है, शौच कर सकता है, उसकी पुतलियाँ फैल सकती हैं, अत्यधिक लार निकलसकती है, आवाज कर सकता है या उल्टी कर सकता है। दौरे की अवधि के दौरान दौरा एक बार या बार–बारटॉनिक और क्लोनिक चरणों के बीच वैकल्पिक हो सकता है। संपूर्ण दौरा आमतौर पर 1 से 2 मिनट के बीच रहता है।

दौरे का प्रबंधन

इडियोपैथिक मिर्गी के इलाज के लिए कोई इलाज या मानक प्रोटोकॉल नहीं है। हालाँकि, दौरे को निरोधी दवाओंसे नियंत्रित किया जा सकता है। उपचार का उद्देश्य दौरे की आवृत्ति, अवधि और गंभीरता को कम करना है। उपचार प्रत्येक जानवर के लिए उसके इतिहास और शारीरिक परीक्षण के आधार पर व्यक्तिगत किया जाता है। कोई भी एक दवा हमेशा प्रभावी नहीं होती, सफल उपचार मिलने से पहले कई दवाओं या दवाओं के संयोजन काप्रयास करना पड़ सकता है। इसके अलावा, एक चिकित्सीय खुराक स्थापित करने में कई सप्ताह लग सकते हैंजो एक व्यक्तिगत कुत्ते के लिए काम करती है। यह दवा बदलने या खुराक बदलने की आवश्यकता का संकेत दे सकता है। कुत्ते को उसके पूरे जीवन भर प्रतिदिन कई बार दवा देना आवश्यक हो सकता है और दवा अनुसूची का बारीकी से पालन किया जाना चाहिए। शेड्यूल में बदलाव से दौरे या दौरे की श्रृंखला की संभावना हो सकती है। माध्यमिक मिर्गी के मामलों में एटियलॉजिकल कारकों पर ध्यान दिया जाना चाहिए और दौरे को जन्म देनेवाली समस्या को कम करने या खत्म करने के लिए थेरेपी शुरू

की जानी चाहिए। हालाँकि, ऐसे मामलों में मोटर गतिविधियों को दबाने के लिए एंटीकॉन्वेलसेंट दवाएं दी जानी चाहिए। चयापचय संबंधी विकारों, कुत्ते के सिस्टम में जहरीले रसायनों, संक्रमण या सूजन की पहचान करने के लिए रक्त परीक्षण किया जाना चाहिए।

उपवास रक्त ग्लूकोज परीक्षण से दौरे के कुछ चयापचय कारणों का पता चल सकता है। एक न्यूरोलॉजिकल जांच केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की अंतर्निहित बीमारी की ओर इशारा कर सकती है, जिसकी पुष्टि कुत्ते के मस्तिष्क मेरुद्रव पर किए गए परीक्षणों से की जा सकती है। यह द्रव सामान्य एनेस्थीसिया के तहत कुत्तों से एकत्र किया जाता है। अधिक उन्नत परीक्षण, जैसे कि इलेक्ट्रोएन्सेफलोग्राम (ईईजी) और मस्तिष्क स्कैन, सुविधा की कमी और निष्कर्षों की व्याख्या करने के अच्छे ज्ञान वाले अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर्मियों की कमी के कारण शायद ही कभी किए जाते हैं। वे केवल तभी किए जाते हैं जब कुत्ते की मिर्गी का इलाज करना मुश्किल हो जाता है, और वे आम तौर पर केवल अच्छी तरह से सुसज्जित पशु अस्पतालों में ही उपलब्ध होते हैं। दीर्घकालिक दौरे पर नियंत्रण के लिए दो सबसे लोकप्रिय दवाएं फेनोबार्बिटल और पोटेशियम ब्रोमाइड हैं। प्रत्येक एक प्रभावी निरोधी है, जिसका उपयोग अकेले या संयोजन में किया जा सकता है। हालाँकि, दौरे पड़ने वाले 10 से 50% कुत्तों में फेनोबार्बिटल सोडियम की दुर्दम्यता पाई गई है। ब्रोमाइड एक हैलाइडएंटीकॉन्वल्सेंट है जो कुत्तों में मिर्गी के इलाज के लिए फेनोबार्बिटल और अन्य बार्बिट्यूरेट्स का एक प्रभावी विकल्प प्रदान करता है। गंभीर लक्षण (दौरे) वाले कुत्तों में एंटीकॉन्वेलसेंट के रूप में पोटेशियम ब्रोमाइड (K Br) का उपयोग बहुत मददगार रहा है, खासकर क्लस्टर दौरे में। दवा का चयापचययकृत द्वारा नहीं किया जाता है और इसमें फेनोबार्बिटल की तुलना में कम दवा पारस्परिक क्रिया होती है। लेवेतिरासेटम दवा का उपयोग मिर्गी के दुर्दम्य मामलों में अन्य मिर्गीरोधी दवा के सहायक के रूप में किया गया है और दवा प्रतिरोधी मिर्गी के उपचार में प्रभावी पाया गया है।मिर्गी के गैर–औषधीय उपचार में सर्जरी, योनि तंत्रिका उत्तेजना, केटोजेनिक आहार और अन्य वैकल्पिक/पूरक उपचार, जैसे, योग, आयुर्वेद, इलेक्ट्रोएन्सेफलोग्राफी (ईईजी), बायोफीडबैक तकनीक, एरोबिक व्यायाम, संगीत चिकित्सा, ट्रांसक्रानियल चुंबकीय उत्तेजना, एक्यूपंक्चर, और हर्बल उपचार (पारंपरिक चीनी चिकित्सा) शामिल हैं ।

मेलिया दुबिया (मालाबार नीम): तेजी से बढ़ने वाला एक बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति

• आलोक कुमार सिंह[1], बिपिन कुमार सिंह[2], माखन सिंह कराडा[3], धीर अग्निहोत्री[4], संग्राम चव्हाण[5] एवं अभिषेक कुमार[6]

[1]डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन
[2]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, आयोध्या
[3]जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
[4]उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर
[5]भाकृअनुप – राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती
[6]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकतम आबादी गाँवो में निवास करती है जिसके जीवन–यापन का श्रोत कृषि या वन है, जिसके कारण वनों के क्षेत्रफल में तेजी से कमी पायी गयी है, जो चिंता का विषय हैं। भारत की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि और वनों के क्षेत्रफल में कमी से जलवायु में अनेकों परिवर्तन के साथ–साथ घरेलू और औद्योगिक लकड़ी की मांग और आपूर्ति के बीच असमानता देखने को मिल रही है। देश में पल्पवूड, प्लाईवूड, फर्नीचर और बायोमास ऊर्जा जैसे उद्योगों के लिए कच्चे माल की मौजूदा आपूर्ति मांग से काफी पीछे है। न केवल देश की वन सम्पदा घट रही है बल्कि इसकी उत्पादकता भी विश्व की औसत उत्पादकता की तुलना में काफी कम होती जा रही है। घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों मोर्चों पर अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए भारत को इमारती लकड़ी की आपूर्ति की भारी कमी का सामना करना पड़ सकता है। वनाच्छादित क्षेत्रों के विस्तार की गुंजाइश सीमित है। यह प्रवृत्ति आर्थिक दबाव पैदा करती है जो प्राकृतिक वनों के व्यावसायिक शोषण को प्रोत्साहित करती है। ऐसे में उच्च उपज वाले वृक्षारोपण की स्थापना एक उचित उपाय है जिसके माध्यम से उपज आपूर्ति में वृद्धि की जा सकती है। तेजी से बढ़ने वाले पेड़ शीघ्र लकड़ी देने में सक्षम होते हैं जो उपज में सुधार करने में मदद करता है। हालांकि उपयुक्त कच्चे माल की भारी कमी को देखते हुए उद्योगों को कम रोटेशन अवधि के भीतर अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए उपयुक्त प्रजातियों के वृक्षारोपण की स्थापना करनी होगी। ऐसे स्थिति में मेलिया दुबिया एक ऐसा विकल्प है जो इमारती लकड़ी, प्लाईवूड, पल्पवूड और ईंधन की लकड़ी के लिए उपयुक्त है। लकड़ी उद्योग में उपयोग के अलावा मेलिया दुबिया के पेड़ में कई संभावित औषधीय गुण हैं। साथ ही साथ हर्बल दवा की मांग दुनिया भर में प्राकृतिक पेड़–पौधों पर आधारित उत्पादों की बढ़ती मान्यता के कारण बढ़ रही है। गैर विषैले होने के कारण कोई साइड इफेक्ट नहीं है और आसानी से सस्ती कीमत पर उपलब्ध हो जाते है। व्यावसायिक महत्व के अलावा यह तापमान वृद्धि को रोकने और वातावरण में ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को रोकने में मदद करता है क्योंकि पेड़ स्वाभाविक रूप से अधिकतम कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने के लिए सक्षम होते हैं। इमारती लकड़ी उद्योग में उच्च मूल्य, तेजी से बढ़ने की प्रवृति, उच्च उपज, पर्यावरण में सुधार और संभावित औषधीय गुणों के कारण मेलिया दुबिया वृक्षारोपण के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।

आवास एवं स्वभाव

यह दक्षिण–पूर्व एशिया और ऑस्ट्रेलिया की एक स्वदेशी प्रजाति है जो मेलियेसी परिवार से संबंधित है। भारत में यह

स्वाभाविक रूप से 600–800 मीटर की ऊंचाई, 1000 मिमी की वर्षा और 50–90% की सापेक्ष आर्द्रता वाले क्षेत्रों में विशेष रूप से सिक्किम, हिमालय, उत्तरी बंगाल, असम, खासी पहाड़ियों, ओडिशा के पहाड़ी क्षेत्रों, दक्कन के पठार और पश्चिमी घाटों जैसे स्थानों में मूलतः पाया जाता है। इसकी व्यापक अनुकूलता के कारण इसे भारत के अधिकांश हिस्सों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह पेड़ प्रकृति में अर्ध–सदाबहार के लिए पर्णपाती है जो सुंदर पर्णसमूह की विस्तृत फैलती शाखाओं के साथ 25 मीटर तक लंबा होता है। छाल गहरे भूरे रंग की रेशेदार होती है जो आयताकार आकार की लंबी पट्टियों में छिल जाती है। युवा शाखाएं स्कर्सी–टोमेंटोज होती हैं और शाखाएँ परिपक्व होने पर चमकदार होती हैं। मेलिया दुबिया पौधे पर्णपाती जंगलों में बंजर भूमि और सड़क के किनारों पर उगते हुए पाए जाते हैं। दिसम्बर–जनवरी में पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा फरवरी–मार्च में नई पत्तियाँ फूलों के साथ आ जाती हैं। पुष्पक्रम एक सहायक पुष्पगुच्छ है जो 12–20 सेमी लंबा होता है। फूल छोटे, हरे–सफेद, शहद–सुगंधित, गुच्छों में पत्तियों के नए प्रवाह के साथ दिखाई देते हैं। फल एक ड्रूप, अंडाकार या दीर्घवृत्ताभ होता है जिसमें अनुदैर्ध्य लकीरें, गूदेदार और मीठी गंध के साथ पकने पर पीले रंग का होता है। फल ठंडे मौसम (अक्टूबर–फरवरी) में पकते हैं, इसके प्रत्येक फल में 3–4 बीज होते हैं।

मृदा एवं जलवायु

मेलिया दुबिया की खेती मूलतः सभी प्रकार की जलवायु में की जा सकती है। लेकिन 800 मिमी और उससे अधिक की वार्षिक वर्षा वाली रेतीली दोमट लाल और लैटेराइट मिट्टी तथा तापमान न्यूनतम 0–15 डिग्री सेल्सियस और अधिकतम 30–43 डिग्री सेल्सियस के बीच में अच्छी तरह से उगाया जा सकता है।

पौध की तैयारी

मालाबार नीम की पौध बीज या कलम के द्वारा तैयार किये जाते है। इसके साफ और सूखे बीज को मार्च–अप्रैल महीनों में खुले नर्सरी बेड जो 10–15 सेंटीमीटर ऊँची हो, जिसमे 2:1 अनुपात में मिट्टी और गोबर की खाद मिले हो, 5 सेंटीमीटर की दुरी पर लाइनों में बुआई करना चाहिए। बोए गए बीजों को जहाँ का तापमान अधिक हो वहाँ नियमित रूप से दिन में एक बार पानी देना चाहिए, या जहाँ नर्सरी छाया में हो, नर्सरी बेड को पुआल या तिरपाल शीट से ढक् देना चाहिए ताकि तापमान सामान्य बना रहे। 60–90 दिनों के अन्दर बीज का अंकुरण हो जाता है।

कलम विधि द्वारा पौधे उगाने के लिए पेंसिल जितनी मोटी कटिंग का चयन करना चाहिये। कलम को नर्सरी बेड पर लगाने से पूर्व 1000–2000 आई० बी० ए० के तरल विलयन से उपचार करके जहाँ जल निकास की अच्छी प्रबंध हो, बुआई करने पर जड़े आसानी से निकल आती है। इस विधि द्वारा 50–75 प्रतिशत तक पौधे प्राप्त हो जाते है।

पौध की रोपण एवं प्रबंधन

मालाबार नीम के पौध को रोपण 60–90 सेंटीमीटर ऊँचाई के पौधे 5X5 मीटर या 8X8 मीटर की दुरी पर रोपित करना वृद्धि और विकास के लिए उचित माना जाता है। पौध में अच्छी विकास के लिए गर्मी के मौसम में 4–6 दिनों तथा ठंढ़ के दिनों 8–12 दिनों के नियमित अंतराल पर सिचांई और छः महीने में एक बार खाद का प्रयोग करनी चाहिए। पौधे में जमीन से 5–8 मीटर की ऊँचाई पर शाखाएं निकलना प्रारंभ होते है, जिसका 6 महीनों के अंतराल पर कंटाई एंव छंटाई करने से टहनियाँ नियंत्रित रहती है जिससे पौधे का तना सीधा, गोल एंव गांठ रहित होता है।

बीज एकत्रिकरण

मालाबार नीम के पके फल को जनवरी–फरवरी के महीनों में एकत्र किया जाता है, बीजों को अच्छे से पकने के बाद पानी से धोकर, सुखा कर अंत में पालीथीन या टिन में संग्रहित कर लेना चाहिए। मालाबार नीम के बीज की अंकुरण क्षमता 25 प्रतिशत से भी कम पाई गयी है। नर्सरी बेड में बीज की अच्छी अंकुरण के लिए बीज को गोबर के घोल के साथ उपचारित कर लेना चाहिए।

मालाबार नीम का इमारती लकड़ी/लकड़ी उद्योग

और पर्यावरण सुधार में महत्व

इस पेड़ की लकड़ी का उपयोग प्लाईवुड उद्योग में प्रमुखता से किया जाता है। इसे पल्पवुड के लिए भी एक वैकल्पिक पेड़ माना गया है। लकड़ी का उपयोग पैकिंग केस, माचिस की तीली, फोटो फ्रेम, पेंसिल स्टूल, बेंच, लकड़ी की मेज, आंतरिक सजावट, खिड़की के दरवाजे, लकड़ी के रैक और पैकिंग उद्योग, संगीत जैसे मिनी फर्नीचर के लिए भी किया जाता है। उपकरण, चाय पाउडर के बक्से, सिगार के बक्से, भवन निर्माण के उद्देश्य, छत के तख्ते कृषि उपकरण आदि। मालाबार नीम 8 से 12 साल के जीवन चक्र के साथ कृषि वानिकी के लिए अत्यधिक उपयुक्त एक आशाजनक पेड़ है जो घरेलू और वैश्विक दोनों में आर्थिक महत्व प्राप्त कर रहा है।

[illegible] बढ़ता है और 10 साल में प्रति एकड़ प्रति वर्ष औसतन 40 टन तक बायोमास उपज देने की क्षमता रखता है। न्यूनतम खेती की अवधि छह वर्ष है और अच्छे आर्थिक मूल्य के लिए इसे 8–10 वर्ष तक की अनुमति दी जा सकती है। तेजी से विकास, शाखाओं के बिना तना सीधा, कम छाया प्रभाव और कीट के हमलों के लिए सहनशील होने जैसी विशेषताओं के कारण इसकी व्यावसायिक खेती किसानों के बीच लोकप्रिय हो रही है। ऊपर बताए गए विभिन्न कारणों से कृषि वानिकी वृक्षारोपण के लिए व्यावसायिक महत्व बढ़ रहा है और मालाबार नीम का कुछ पेड़ों की किस्में लोकप्रिय हो रही हैं क्योंकि यह बायबैक व्यवस्था के साथ सुनिश्चित आय प्राप्त करती है और कम रखरखाव की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, ये पेड़ कार्बन पृथक्करण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी योगदान देते हैं। एक एकड़ में लगभग 400 पेड़ लगाए जा सकते हैं जो 6–8 साल के समय में 10–12 लाख रुपये प्राप्त करते हैं। इसका उच्च कैलोरी मान इसे बायोमास बिजली संयंत्रों के लिए फीडस्टॉक का व्यवहार्य स्रोत बनाता है। विभिन्न व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए इमारती लकड़ी की बढ़ती मांग और प्राकृतिक संसाधनों की कमी को देखते हुए तेजी से बढ़ रही मालाबार नीम की अहमियत लगातार बढ़ती जा रही है।

औषधीय महत्व

एंटीऑक्सिडेंट शरीर द्वारा मुक्त कणों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए उपयोग किए जाने वाले पदार्थ हैं जो लिपिड पेरोक्सीडेशन, डीएनए के ऑक्सीकरण, प्रोटीन आदि का कारण बनते हैं जो कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाते हैं। कैंसर, मधुमेह, गठिया, सूजन आदि जैसी कई बीमारियों के लिए ऑक्सीडेटिव तनाव प्रमुख कारकों में से एक है। इसलिए प्राकृतिक रूप से व्युत्पन्न एंटीऑक्सिडेंट पर विशेष जोर देने के साथ एंटीऑक्सिडेंट के उपयोग पर शोध केंद्रित किया गया है। पौधों से प्राप्त फेनोलिक यौगिक जैसे टैनिन, फ्लेवोनोइड्स, अल्कलॉइड्स, टरपेनोइड्स आदि को शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट के रूप में जाना जाता है। कई अन्य शोधकर्ताओं द्वारा मालाबार नीम के पत्ते और फलों के अर्क के एंटीऑक्सीडेंट गुण भी बताए गए हैं।

मालाबार नीम के फलों के अर्क ने हर्बल दवाओं में व्यापक स्पेक्ट्रम के उपयोग को विकसित करने और मनुष्यों में ऑक्सीडेटिव तनाव संबंधी स्वास्थ्य विकारों के खिलाफ शक्तिशाली दवाओं के विकास के लिए एक आधार के रूप में एक महत्वपूर्ण गुंजाइश स्थापित की गयी है। मालाबार नीम को मानक रोगाणुरोधी परीक्षणों का उपयोग करके मानव विकृति के लिए जिम्मेदार अलग–अलग रोगजनक सूक्ष्मजीवों के खिलाफ उनकी रोगाणुरोधी गतिविधि के लिए

परीक्षण किया गया है। मालाबार नीम पत्ती के आवश्यक तेल से क्रमशः स्यूडोमोनास एरुगिनोसा, एस्चेरिचिया कोली, क्लेबसिएला न्यूमोनिया और फुसैरियम ऑक्सीस्पोरम और कैंडिडा अल्बिकन्स के खिलाफ बैक्टीरियोस्टेटिक और कवकनाशी गतिविधियों में लाभ पाया गया है साथ ही मधुमेह विरोधी गतिविधि अल्कोहल में मालाबार नीम फलों का अर्क हाइपोग्लाइकेमिक एजेंट के रूप में सबसे प्रभावी पाया गया है।

जैव कीटनाशक गतिविधि में महत्वपूर्ण बात यह है कि मालाबार नीम के विभिन्न भागों में कीटनाशक क्षमता वाले कई यौगिक मौजूद हैं। इस पौधे के विभिन्न भागों के कई अर्क कीटनाशक गुण दिखाते हैं। रिफाइंड छाल में 60–70: टोसांडानिन होता है जिसका उपयोग हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा को नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है। मेलियेसी के लिमोनोइड्स में पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना विभिन्न प्रकार के कीटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने की क्षमता भी पाई जाती है। मालाबार नीम के पत्तों के मेथनॉल के अर्क का उपयोग करके तैयार किया गया जलीय सूत्रीकरण काफी हद तक फसल की खेती में कैटरपिलर से होने वाले नुकसान को रोकने में मदद और उपज को सुरक्षित करता है क्योंकि यह कैटरपिलर की संख्या को कम करके पत्ती क्षेत्र में कमी को रोकता है।

कृषिवानिकी में महत्व

मालाबार नीम की खेती के साथ साथ हम अन्य फसलें भी आसानी से ले सकते है, इसकी फसल अवधी में अन्तःफसली योजना अपनाकर अनेक प्रकार के फसल जैसे– मुंग, उर्द, मूंगफली, हल्दी, बरसीम, मिर्ची, टमाटर, मेंथी, केला, पपीता, चारे वाली फसल आदि फसलों की खेती आसानी से की जा सकती है, मालाबार नीम कृषि वानिकी प्रणालियों के तहत बड़े पैमाने पर इस लिए पसंद किया जा रहा है क्योंकि इस प्रजाति में एलीलोपैथी की सूचना नहीं मिली है जिससे अन्य फसल को किसी प्रकार का नुकसान उठाना पड़े।

उपसंहार

प्लाईवुड, लुगदी लकड़ी और इमारती लकड़ी उद्योग में कई उपयोगों के साथ–साथ देश की विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों के लिए इसकी तीव्र वृद्धि और अनुकूलन क्षमता के कारण, मेलिया दुबिया को शॉर्ट रोटेशन के मनी स्पिनिंग ट्री के रूप में भी जाना जाता है। इस स्वदेशी पेड़ की व्यावसायिक खेती को विभिन्न कृषि वानिकी प्रणालियों के तहत बड़े पैमाने पर पसंद किया जा रहा है क्योंकि इस प्रजाति में एलीलोपैथी की सूचना नहीं मिली है। इस पौधे के विभिन्न हिस्सों के औषधीय गुणों की खोज करने वाले शोध कार्य ने लकड़ी उद्योग के अलावा औषधीय पौधे उद्योग में व्यावसायिक उपयोग के लिए इसकी संभावित गुंजाइश दिखाई है। अच्छी गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री की आपूर्ति के साथ–साथ इस बहुउद्देशीय वृक्ष की खेती के दायरे और तकनीक के बारे में किसानों को जागरूक करने की भी आवश्यकता है।

फीरोमोन ट्रैप द्वारा फसलों में कीट प्रबंधन

•रामकेवल[1], मोनोबुल्लाह[2], आरिफ परवेज[1], जयपाल सिंह चौधरी[3], अभिषेक कुमार[2] एवं रचना दूबे[2]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर–कृषि विज्ञान केन्द्र, बक्सर
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
[3]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर–कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

जैव मंडल में उपस्थित सभी जीव जन्तुओं में संचार एक बहूत ही महत्वपूर्ण किया है। कीट एक दूसरे के मध्य संचार के लिए आवाज एंव वाष्पशील रसायन का उपयोग करते हैं। ये वाष्पशील रसायन कीटों की बहूत सी व्यवहारिक क्रियाएं जैसे गति, समागम, एकत्रीकरण, आकर्षण, तथा प्रतिकर्षण आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिसे फीरोमोन कहते हैं। ये रसायन जीवों द्वारा वातावरण में छोडे जाते हैं जिससे उसी जाति अथवा उससे सम्बंधित जाति के दूसरे जीवों पर रसायन का प्रभाव परिलक्षित होता है जिन्हे अन्तर जातीय संचार माध्यम के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिससे वे इच्छित अनुक्रिया प्रदर्शित कर सकें। समेकित कीट प्रबंधन में गंधपाश का प्रयोग महत्वपूर्ण एंव आवश्यक है जिसका प्रयोग नाशीकीट निरीक्षण एंव कीटों को समूह में एकत्र करके नष्ट किया जाता है। अतः आजकल इसका प्रयोग मुख्यतः कीट नियंत्रण में सार्थक सिद्ध हो रहा है।

सेक्स फीरोमोन

कीटों में फीरोमोन विशेष रूप से लेपिडाप्टेरा गण के कीट प्रजाति के एक लिंग द्वारा छोडा जाता है तथा इनके प्रभाव से उसी प्रजाति के दूसरे लिंग में व्यवहारिक परिवर्तन होता है जो संगम को सुगम बनाते हैं। कीट प्रबंधन के क्रम में प्रौढ़ मादा कीट द्वारा मोचित फीरोमोन को कृत्रिम रूप से तैयार कर चारे के रूप में ट्रैप पर लगाकर प्रयोग किया जाता है। इस ल्यूर से धीरे–2 एक विशेष सुगंध वातावरण में फैलती है जिस पर मादा की खोजमें प्रौढ़ नर कीट आकर्षित हो कर अंततः ट्रैप में फंस जाते हैं। शोध के द्वारा अब तक 150 कीट प्रजातियों में मादा और कुछ कीट प्रजातियों में नर फीरोमोन की पहचान कर ली गई है। इन फीरोमोन का प्रयोग विभिन्न प्रजातियों के कीटों के प्रबंधन में सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

फीरोमोन ट्रैप की बनावट

फीरोमोन ट्रैप एक बहुत साधारण उपकरण होता है इसके उपर के भाग में एक प्लास्टिक की गोल प्लेट होती है जिसकी निचली सतह पर खूटियां बनी होती हैं। बीच की खुंटी में मादा कीट की कृत्रिम रूप से तैयार गंध को फीरोमोन के घोल में डूबा हुआ रबर, प्लास्टिक या रूई का टूकडा फंसा दिया जाता है जिसे फीरोमोन ल्यूर कहते हैं। कीट की जाति विशेष के लिए निर्मित इस ल्यूरकी कीमत 10–15 रूपये प्रति ल्यूर होती है। यह ल्यूर वायुरोधी पाउच में बंद होती है।

फीरोमोन का आई. पी. एम. में उपयोग

आई.पी.एम. पद्धति में फीरोमोन का उपयोग बडे पैमाने पर किया जाता है जिसके अर्न्तगत कीट सर्वेक्षण एंव कीट नियंत्रण से उनकी संख्या में कमी लाई जाती है।

कीट सर्वेक्षण

फसल में कीट की प्रारंभिक उपस्थिति की निगरानी के लिए फीरोमोन ट्रैप का प्रयोग किया जाता है और इससे भविष्य में कीट की सघनता का अनुमान भी लगाया जा सकता है। सर्वेक्षण कि लिए लगाये गये ट्रैप से निम्न सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं।

- ❖ प्रारम्भिक स्तर पर कीट ग्रसित क्षेत्रों का ज्ञान।
- ❖ कीटों की संख्या में वृद्धि अथवा कमी का ज्ञान।
- ❖ निकट भविष्य में कीट की सघनता का अनुमान।

- ❖ कीट के प्रबंधन हेतु उपयुक्त समय एंव साधन का चयन।
- ❖ कीट सर्वेक्षण हेतु एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए 2 ट्रैप पर्याप्त होते हैं जिन्हे 30–30 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है।

कीट प्रबंधन

कीट के प्रबंधन हेतु समय एंव साधन के चयन में इन सूचनाओं का अत्यन्त महत्व है। उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर परजीवियों को खेतों में छोड़ने के उपयुक्त समय का निर्धारण किया जाता है तथा साथ ही कीट की नाजुक अवस्था पर जैविक/रासायनिक कीटनाशी के छिड़काव के समय को नियोजित करके कीटनाशकों की मात्रा में कमी की जा सकती है।

प्रौढ़ कीट एकत्रीकरण एवं नष्ट करना

शल्कपंखीय (लेपिडाप्टेरस) कुल के कीटों के नियंत्रण के लिए फीरोमोन ट्रैप में प्रौढ़ नर कीट फंसते हैं जबकि पौधों को क्षति लारवा (सूंडी) के द्वारा होती है और इन दोनों अवस्था में एक सप्ताह का अन्तर हो सकता है। शल्कपंखीय गण के प्रौढ कीट प्रायः पौधो को नुकसान नहीं पहूंचाते हैं तथा नर–मादा प्रौढ कीटों का कार्य संगम करके अपनी जाति की वंश वृद्धि करना होता है। व्यापक पैमाने पर फीरोमोन ट्रैप का उपयोग करने का उद्देश्य है प्रौढ़ नर कीटों को भारी संख्या में ट्रैप करके मारना जिससे नर मादा में संगम की प्रकिया न हो तथा इनकी वंश वृद्धि को रोका जा सके और भविष्य में इन कीटों के लारवा/सूडियों द्वारा फसल को क्षति न हो।

फेरोमोन ट्रैप लगाने के तरीके

एक हेक्टेयर खेत के लिए 20 फीरोमोन ट्रैप की आवश्यकता होती है। इन्हे खेत में मेड़ से 10 मीटर अन्दर से शुरू करके 20–25 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। फसल की उंचाई के अनुसार ट्रैप को समय–समय पर खिसका कर उपर बांधना चाहिए जिससे चारे (ल्यूर) की सुगंध हवा में अच्छी तरह फैल सके। कीट विशेष के जीवन चक्र को ध्यान में रखते हुए फसल में ट्रैप लगाने चाहिए। उदाहरण स्वरूप धान की फसल में तना छेदक कीट के प्रबंधन के लिए रोपाई के एक दो सप्ताह बाद ट्रैप लगाना चाहिए।वर्तमान समय में निम्न प्रमुख कीटों के ल्यूर बाजारों में उपलब्ध हैं और कीटों की प्रजाति को ध्यान में रखते हुए ल्यूर का चयन करें।

क	नाशीकीट	फीरोमोन ल्यूर
1.	फल भेदक (हेलिकोवर्पी)	हेलिल्यूर
2.	कपास की गुलाबी सूंडी	गासिपल्यूर
3.	पीला तना भेदक	सिरपोफेगाल्यूर
4.	श्राइनोसिरस बीटिल	श्राइनोसिरस ल्यूर
5.	रेड पाम वीविल	रेड पाम वीविल फीरोमोन
6.	शकरकंद वीविल	शकरकंद वीविल फीरोमोन
7.	सफेद गिडर भृंग	एविसोल
8.	गन्ने का प्ररोह भेदक	गन्ने का प्ररोह भेदक (आई एन बी फीरोमोन)
9.	फल मक्खी	मिथाइल युजिनाल
10.	बैगन का फल एवं प्ररोह भेदक	ल्यूसी ल्यूर

प्रौढ़ कीटों की उपस्थिति का आंकलन करते हुए इन फीरोमोन ट्रैप के उपयोग से कीटों का प्रबंधन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

फीरोमोन ल्यूर बदलना

फीरोमोन ल्यूर अलग–अलग मात्रा में उपलब्ध हैं। 3

मिलीग्राम वाले फीरोमोन ल्यूर को 15 दिन के अंतराल पर एंव 5 मिलीग्राम वाले फीरोमोन ल्यूर को एक महीने के अंतराल पर बदलना चाहिए। यह ध्यान रहे कि कीट प्रजाति के अनुसार ही ल्यूर का चयन किया जाये। यदि फीरोमोन ट्रैप के माध्यम से नाशीजीवों का प्रबंधन किया जाये तो इससे प्रति हेक्टेयर लगभग 600–800 रूपये खर्च आता है। फसल कटने पर ट्रैप को खेत से उतारकर अगली फसल में भी प्रयोग किया जा सकता है जिससे केवल नया ल्यूर ही खरीदने के लिए (रुपया 15/ल्यूर) व्यय करना होगा और आगामी फसल के खर्चे में 500 रुपये की कमी आयेगी। फीरोमोन ल्यूर प्रजाति विशेष होता है जो विषाक्त नहीं होता एंव लक्षित कीटों के अतिरिक्त शेष जीवधारियों एंव वातावरण के लिए सुरक्षित होता है।

इस प्रकार प्रारम्भिक स्तर पर ही कीट की उपस्थिति का ज्ञान होने से रासायनिक उपाचार पर कम लागत से कीट का प्रबंध किया जा सकता है जिससे खेत के लाभकारी कीटों का संरक्षण होगा और वातावरण एंव खाद्यान्न में भी रोका जा सकेगा।

फीरोमोन ल्यूर की उपलब्धता

वर्तमान समय में फीरोमोन ट्रैप ल्यूर देश में निर्मित किये जा रहे है जिनकी कीमत 10–15 रूपये प्रति ल्यूर है। एन सी एल पूणे एंव वी आर सी एल, मुम्बई द्वारा ल्यूर निर्मित करने की स्वदेशी तकनीक विकसित कर ली गई है। पेस्टकन्ट्रोल इंडिया भी इस प्रकार के ल्यूर उपलब्ध कराती है। परिणाम स्वरूप आई0पी0एम0 के अंतर्गत ये ल्यूर फीरोमोन ट्रैप द्वारा कीट प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

इसके अतिरिक्त स्टिकी ट्रैप की भीतरी सतह पर बीच में प्राजाति विशेष के ल्यूर को गोंद पर चिपका कर इसे फीरोमोन ट्रैप के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। स्टिकी ट्रैप की भांति बांस के डण्डे पर फसल की सतह से एक फुट की उंचाई पर लगाकर प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार किसान कम लागत में वातावरण एंव जीवधारियों के लिये सुरक्षित इन फीरोमोन ट्रैप का उपयोग कर हानिकारक कीटों से अपनी फसल को बचा सकते हैं।

विशेष बाते

- ल्यूर को 15 दिन के अन्तराल पर बदलते रहें।
- ट्रैप को दो से तीन दिन पर निरिक्षण करके पकड़े गये कीटों की संख्या की समीक्षा करे।
- ट्रैप के निरीक्षण के समय यह सुनिश्चित कर लें कि ल्यूर यथा स्थान लगा है अथवा नहीं।

ट्रैप में फंसे कीटों की संख्या के आधार पर कीट प्रबंधन हेतु उपयुक्त साधनों तथा परजीवी, परभक्षियों को खेत में छोड़ना, जैविक/रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करें।

कृषिवानिकी में पोपलर की खेती

• विशाल जौहर[1], संग्राम चव्हाण[2], छवि सिरोही[3], उथप्पा ए आर[4], अभिषेक कुमार[5] एवं गौरी रावले[2]

[1]बागवानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, लवली प्रॉफेशनल विश्वविद्यालय, फगवाड़ा
[2]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे
[3]वानिकी विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
[4]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय तटीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गोवा
[5]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

दुनिया भर में पोपलर को परिदृश्य एवं कृषि के लिए ख्याति प्राप्त है, यह वातावरण को बहुत लाभ पहुँचाता है, जैसे मृदा में कार्बन को बांध कर रखता है, तलछट से बहने को रोकता है तथा मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है। इसकी जीवन अवधि कम तथा नमी एवं प्रकाश में अच्छी समृद्धि होती है। पोपलर को वनपीपल भी कहा जाता है तथा इसका उत्पादन 60 घन मी/हे./वर्ष है। कृषिवानिकी में इसका विशेष महत्व है क्योंकि यह बहुत तेजी से बढ़त लेता है। इसकी लकड़ी बहुत हल्की तथा यह पर्णपाती वृक्ष है। अतः सर्दियों (दिसम्बर–मार्च) में पत्ते विहित रहता है और रबी फसलों को अन्तः फसलो के रूप में उगाया जा सकता है। खरीफ में चारा देने वाली व छाया सहन करने वाली फसले जैसे हल्दी, अदरक इत्यादि को उगाया जा सकता है। शुरूआती 2– 3 वर्षों तक गन्ने की खेती भी की जा सकती है। 6 से 8 वर्षों में यह कटाई के लिए तैयार हो जाता है। इसकी लकड़ी को कागज, पेंसिल, माचिस की तीली, प्लाईवूड एवं फलों की पेटियां बनाने में उपयोग किया जाता है। पोपलर को किसान भाई कृषि फसलों के साथ साथ लगाकर इसका उत्पादन बढ़ा सकते है। पोपलर की कई किस्में है जो निम्न प्रकार है। उदय, क्रांति, बहार, एल–34, एल–39, एस–7, सी–15, जी–3, जी–48 तथा पोपलर का पेड अन्य वानिकी प्रजातियों से ज्यादा लकड़ी देता है, फसलों को कम नुकसान करता है। इसके पत्ते खेत की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं तथा बाजार में इसकी अच्छी कीमत मिलती है। मुख्यतः किसान भाई पोपलर को खेतों की मेढों पर उगाते है, जो हवा रोकने का काम करते है तथा कृषि फसलों को तेज हवा से ज्यादा नुकसान नहीं होता है, पोपलर आश्रय देने का काम भी करता है। इसका उपयोग जैवईंधन में किया जाता है, क्योंकि यह अन्य वृक्षों की अपेक्षा कम समय में ज्यादा बायोमास का उत्पादन करता है तथा इसमें सेल्युलोस की ज्यादा व लिगनिन की मात्रा कम होती है।

नर्सरी – पोपलर के पौधे कलम द्वारा तैयार किये जाते है और कलम लगाने का कार्य 15 जनवरी से 15 फरवरी तक पूर्ण कर देना चाहिए। कलम लगाने से पूर्व खेत में 80–100 क्विंटल गोबर की खाद के साथ 125 कि0ग्रा0 सुपर फास्फेट, 50 कि0ग्राम जिंक सल्फेट तथा 50 कि0ग्रा0 म्यूरेट ऑफ पोटाश मिलानी चाहिए और फिर क्यारियां तैयार करनी चाहिए। अगर दीमक की समस्या हो तो क्लोरपाइरिफॉस 0.2 प्रतिशत की दर से कलम लगाते समय नर्सरी में प्रयोग करना चाहिए। कलमें हमेशा एक वर्ष पुराने पौधों से तैयार करनी चाहिए तथा ऊपरी व निचला भाग छोड़कर मध्य भाग से तैयार करनी चाहिए। कलम सदैव लम्बे, सीधे व स्वस्थ पौधों से लेनी चाहिए तथा इसकी लम्बाई 20–25 से.मी. तथा गोलाई 3–5 से.मी. होनी चाहिए और 3–4 आखें प्रति कलम होनी चाहिए। कलमों को 50 से.मी x 50 से.मी. की दूरी पर इस प्रकार लगानी चाहिए कि एक आंख भूमि के बाहर रहे। पौधशालाओं में कलमों की देखभाल एक वर्ष तक करनी चाहिए।

पोपलर की नर्सरी

पोपलर की 3–4 मीटर पौध का वृक्षारोपण

पौधारोपण

पौधशाला में एक साल बाद पौधों की लम्बाई 3–4 मीटर लम्बी हो जाती है तो वृक्षारोपण के लिए तैयार हो जाते है। वृक्षारोपण का उचित समय 15 जनवरी से 15 फरवरी तक होता है। पौधा लगाने से पहले 1 मीटर गहरा गड्ढा खोदकर मिट्टी बाहर निकाल लें और 5 कि.ग्राम गोबर की खाद, 50 ग्राम सुपर फास्फेट तथा दीमक के बचाव के लिए 0.1 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफोस मिट्टी में मिलाए। गड्ढों में पौधों को सीधा खड़ा करना चाहिए तथा उसके पश्चात् मिट्टी के मिश्रण को धीरे–धीरे गड्ढों में भरकर पैरों से अच्छी तरह दबा देना चाहिए तथा पौधे लगाने के बाद गड्ढे में पानी अवश्य देना चाहिए। मेढ़ों पर लगाते समय पौधों की पौधे से दूरी 3 मीटर रखनी चाहिए। कृषिवानिकी में कतार से कतार 5 मीटर एवं पौधे से पौधे की दूरी 4 मीटर रखे। कृषिवानिकी में पौधों की कतार की दिशा उत्तर से दक्षिण की ओर होनी चाहिए ताकि फसलों को पर्याप्त मात्रा में सूर्य की रोशनी मिल सके। पहले वर्ष में कोई भी फसल उगाई जा सकती है लेकिन उसके बाद पानी, धूप व खुराक के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। खरीफ में छाया में उगाने वाली फसलों को उगाना चाहिए जैसे हल्दी, अदरक तथा चारे वाली फसलें (लोबिया व ज्वार)। रबी मौसम में पोपलर के पत्ते गिर जाते है जिससे फसलों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। पोपलर के साथ फसल उगाने के लिए बीज की 25 प्रतिशत मात्रा बढ़ाकर लगानी चाहिए।

सिंचाई एवं खाद

जुलाई और सितम्बर के महीनों में सिंचाई के साथ 100 ग्राम यूरिया प्रति पौधों के हिसाब से हर वर्ष देना चाहिए। पौधारोपण के बाद पानी लगाना चाहिए तथा उसके 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करे। गर्मियों में 7–10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

कटाई–छंटाई व खरपतवार नियन्त्रण

पोपलर की अच्छी कीमत प्राप्त करने के लिए पौधों की सावधानीपूर्वक कटाई–छटाई करनी चाहिए जिससे पौधे सीधे व लम्बे हो। दूसरे से चौथे वर्ष तक 1/3 व पांच से सात वर्षों तक आधे भाग तक छटाई करे। कटाई–छटाई की प्रक्रिया अक्टूबर से दिसम्बर तक करनी चाहिए। कटाई–छटाई के बाद घावों पर बोर्डो पेस्ट लगानी चाहिए जिससे लकड़ी खराब न हो। पौधों के चारों तरफ 0.5 मीटर तक कोई खरपतवार न आने दें। निराई–गुडाई द्वारा खरपतवार निकालने चाहिए।

सरसों +पोपलर कृषिवानिकी

गेंहू+पोपलर कृषिवानिकी

मुख्य कीट व बिमारियां

दीमक पौधों की जड़ों को खाकर नुकसान पहुँचाती है। लक्षण दिखते ही सिंचाई कर देनी चाहिए तथा पौधारोपण के समय क्लोरोपाइरिफास का प्रयोग करना चाहिए। तना व टहनी छेदक के लिए तने पर छेद में मिट्टी का तेल डालना चाहिए। बडे वृक्षों में थाईमेट–10जी, 30–50 ग्राम तक डाले तथा पानी लगा दें। पत्तों को खाने वाले कीट का प्रकोप भी पाया जाता है। इसके लिए कार्बारिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए। जड़ गलन रोग से बड़ा वृक्ष सूख जाता है। इसके लिए पौधों की जड़ों व तनों में कोई भी कटाव नहीं लगना चाहिए तथा रोग ग्रसित पौधों को जड़ों समेत निकालकर जला देना चाहिए।

पैदावार

यह वृक्ष 6–8 वर्ष की अवधि में कटाई के लिए तैयार हो जाता है। कटाई के समय पेड़ की गोलाई 90 से.मी. से कम नहीं होनी चाहिए। 90 से.मी. गोलाई वाले वृक्ष से लगभग 3–4 क्विंटल लकडी प्राप्त होती है तथा इसके अतिरिक्त 5–10 किलोग्राम पत्तिया प्रतिवर्ष मिल जाती है जो चारे के रूप में तथा कार्बनिक खाद में प्रयोग की जा सकती है।

पोपलर की नर्सरी भी किसान भाई उगा सकते है। एक एकड से 5000 तक पौधे तैयार हो जाते है जो कि 10–15 रूपये प्रति पौधा तक बिक जाता है। इस तरह किसान भाई पोपलर की नर्सरी बेचकर एक एकड़ से 30–35 हजार रूपये तक का मुनाफा प्राप्त कर सकता है।

समेकित कृषि प्रणाली अपनाएं–बेहतर लाभ पाएं

● संजीव कुमार, शिवानी, अजय कुमार, मणिभूषण एवं अनुप दास

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

समेकित या समन्वित कृषि पद्धति ऐसी पद्धति है जो एक किसान के पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों (भूमि, जल, श्रम, उर्जा एवं पूंजी) का वास्तविक आकलन करती है एवं उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग स्थानीय वातावरण, मिट्टी, उर्जा, जल की उपलब्धता इत्यादि एवं किसान की आर्थिक एवं सामाजिक पहलुओं को ध्यान में रखकर करने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रणाली में यह भी ध्यान रखा जाता है कि एक घटक का अवशिष्ट दूसरे घटक के लिए उपयोगी हो ताकि उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग कर ज्यादा से ज्यादा आमदनी प्राप्त की जा सके। उदाहरणतः धान के पुआल का उपयोग मशरुम उत्पादन में किया जा सकता है, व मशरुम उत्पादन के बाद पुनः इसका उपयोग धान में किया सकता है। इस तरह से एक चक्र का निर्माण होता है जिसे पोषकद्रव्य चक्र कहते हैं। जिससे चक्र में शामिल प्रत्येक घटकों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है।

नयी उन्नत कृषि तकनीकों की सार्थकता तभी है जब कृषक समुदाय उन्हे अपनायें, अन्यथा वे तकनीकी रूप से सबल होते हुए भी सीमित मूल्यों की रह जाती हैं। परम्परागत अनुसंधान तथा प्रसार के प्रयासों से विकसित एवं हस्तांतरित नई कृषि तकनीके बड़े पैमाने पर भिन्नता रखने वाले कृषि जलवायु तथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत खेती करने वाले कृषकों में एक समान रूप से अपनायी नहीं जाती हैं । यदि मूलभूत तौर पर कृषि जलवायु तथा सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियों पर जिसमें कृषक खेती करते हैं, की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाए, तो अनुसंधान केन्द्रों पर विकसित एवं हस्तांतरित तकनीकों को किसानों की आवयश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त नहीं पाया जा सकता। सीमित संसाधनों एवं कम अनुकूल प्राकृतिक वातावरण में खेती करने वाले छोटे किसान प्रायः कई कारणों से नई तकनीकों को नहीं अपनाते हैं। जिनमें से कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

- ❖ नई तकनीकों के विषय में जागरूकता का अभाव (निरक्षरता / उपेक्षा)
- ❖ अप्रभावी प्रसार सेवाएं
- ❖ नई तकनीकें किस परिस्थिति में विकसित की गई है उसे प्रस्तुत न करना
- ❖ आवश्यक कृषि सामग्रियों पर खर्च करने के लिए संसाधनों का अभाव
- ❖ समय पर खाद, बीज इत्यादि का उपलब्ध नहीं हो पाना

कभी–कभी एक और कारण यह भी सुनने को मिलता है कि अनुशंसित तकनीकें किसानों एवं उनके वातावरण के लिए ही उपयुक्त नहीं है। सामान्यतः किसान ऐसी तकनीके ढूंढते हैं जिससे उनकी आमदनी में बढ़ोतरी हो और साथ ही साथ जोखिम का दायरा उनकी परिस्थितियों एवं प्रबंधन के अंर्तगत सीमित हो। 'हरित क्रांति' मुख्यतः समृद्ध किसानों तथा संसाधन सम्पन्न क्षेत्रों, जिनमें अधिक कृषि उत्पादन की स्पष्टतया अधिक क्षमता थी, तक ही सीमित रह गई। परम्परागत तकनीक–विकास तथा हस्तांतरण मॉडल जो विकासशील देशों में अपनाये गए है उन्हें अधिकांश किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ पाया गया है। उत्पाद आधारित पारम्परिक कृषि अनुसंधान में कृषि प्रणाली दृष्टिकोण का अभाव है। अनुसंधान केन्द्रों में चलाए जाने वाले कार्यक्रम ऐसी परिस्थिति में चलाये जाते हैं जो किसान के खेतों में नहीं पाये जाते तथा इनमें किसानों की भागीदारी भी बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं के बराबर होती है। जटिल, विविधतापूर्ण तथा जोखिम भरी परिस्थितियों में खेती करने वाले छोटे संसाधनहीन किसानों की समस्याओं को हल करने के लिए परम्परागत, उत्पाद आधाारित अनुसंधान एवं प्रसार नीतियों की असफलता के फलस्वरूप एक अधिक वृहत, सुनियोजित, कृषक केन्द्रित तथा अनतर आयामी दृष्टिकोण का अर्विभाव हुआ जिसे कृषि अनुसंधान प्रणाली के नाम से जाना गया। इसका उद्देश्य कृषि प्रणलियों की स्पष्ट जानकारी के आधार पर उनके लिए उपयुक्त कृषि तकनीकों का विकास तथा प्रसार

करना है।

समेकित कृषि प्रणाली के मूल घटक

एक समेकित कृषि प्रणाली में विभिन्न कृषि और गैर–कृषि घटकों का एकीकरण शामिल है। इस प्रणाली में विभिन्न घटकों को इस तरह से एकीकृत किया जाता है कि प्रकृतिक संसाधनों का उपयोग अधिक से अधिकतम हो और नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव कम से कम हो।

समेकित कृषि प्रणाली के मूल घटक

समेकित कृषि प्रणाली के मूल घटक इस प्रकार हैं

1. फसलः इसमें विभिन्न फसलों जैसे अनाज, दलहन, सब्जियां, फल और जड़ी–बूटियों की खेती शामिल है। मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने, कीट और बीमारियों को कम करने के लिए विभिन्न फसल प्रणालियों, जैसे अंतरफसल और फसल चक्र का उपयोग किया जाता है।

2. पशुधनः समेकित कृषि प्रणाली के पशुधन घटक में विभिन्न प्रकार के पशुधन का पालन– पोषण शामिल है जैसे कि गाय, बकरी, भेड़,सूअर और मुर्गी। पशुधन आय का एक मुख्य स्रोत प्रदान करता एवं इनके अपशिष्टों का उपयोग फसलों के लिए उर्वरक के रूप में किया जा सकता है।

3. वृक्षः एक ही भूमि पर कृषि के साथ–साथ वृक्षों को भी शामिल कर कुल आय को बढ़ाने की विधि को कृषि वानिकी कहा जाता है। वृक्ष लकड़ी, ईंधन और फल जैसे कई लाभ प्रदान करते हैं और मिट्टी के कटाव को रोकने और जल संसाधनों के संरक्षण में भी मदद करते हैं।

4.मछलीः मछली पालन समेकित कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है। मछली प्रोटीन का स्रोत प्रदान करती है और उर्वरक के रूप में मछली के अपशिष्ट का उपयोग मिट्टी की उर्वरता में सुधार करने में भी मदद करता है।

5. मधुमक्खी पालनः शहद, मोम और अन्य मधुमक्खी उत्पादों के उत्पादन के लिए मधुमक्खी का पालन किया जाता है। मधुमक्खियाँ फसलों के परागण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

6. कृमिः पशुधन से प्राप्त अपशिष्टों एवं फसल के अवशेषों का उपयोग केंचुओं की मदद से वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन के लिए किया जाता है, जो पोषक तत्वों से भरपूर जैविक उर्वरक है।

7. जैव–उर्जाः उर्जा के उत्पादन के लिए बायोमास जैसे फसल अवशेष, पशु अपशिष्ट और लकड़ी के उपयोग को जैव–उर्जा कहा जाता है, जो जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करने में मदद कर सकता है और किसानों के लिए आय का एक स्रोत भी प्रदान कर सकता है।

समेकित कृषि प्रणाली से फायदे

- समेकित कृषि प्रणाली प्रति हेक्टेयर भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान करता है। सीमित भूमि पर फसलों का विविधिकरण एवं कृषि के साथ अन्य घटकों का समावेश करने से प्रति ईकाई भूमि की उत्पादकता बढ़ती है।

- एक ही भूमि से ज्यादा से ज्यादा उत्पादन लेने के क्रम में कम से कम हमें 2.2 प्रतिशत अधिक रासायनिक खाद, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि का इस्तेमाल करना पड़ता है जिससे मिट्टी प्रदूषित और बीमार हो जाती है। समेकित कृषि प्रणाली को अपनाने से घटक अवशिष्टों के बारम्बार उपयोग से हमारी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा स्वतः ही बढ़ जाती है जिसके फलस्वरुप मिट्टी से लम्बे समय तक अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

- समेकित कृषि प्रणाली में एक घटक के अवशिष्ट का उपयोग दूसरे घटक में निवेश के रुप में किया जाता है जिससे कि पोषक तत्वों का पुनः प्रयोग हो जाता है तथा इससे दूसरे पदार्थों पर हमारी निर्भरता कम हो जाती है एवं हमारे उत्पादन पर आनेवाले व्यय में भी कमी हो जाती है।

❖ समेकित कृषि में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण व विटामिन आदि पोषक तत्वों का उत्पादन एक ही भूमि पर हो जाता है ताकि यह कृषक परिवार के कुपोषण सम्बन्धित बीमारियों से निदान पाने में लाभकारी हो सके।

❖ आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक खादों, कीटनाशकों आदि का अन्धाधुन्ध प्रयोग हो रहा है, परिणामतः मिट्टी व पर्यावरण प्रदूषित हो रहे हैं। समेकित कृषि प्रणाली में एक घटक का अविशष्ट दूसरे घटक द्वारा उपयोग में लिया जाता है जिससे रासायनिक खादों एवं अन्य रासायनिक पदार्थों पर हमारी निर्भरता कम हो जाती है तथा भूमि व पर्यावरण का संरक्षण लम्बे समय तक होता रहता है।

❖ परम्परागत कृषि द्वारा अनाज के पकने व कटने के समय ही आमदनी होती है जबकि समेकित कृषि के विभिन्न घटकों को कृषि के साथ शामिल करने से पूरे वर्ष आमदनी की निरन्तरता बरकरार रहती है। ये घटक दुग्ध–उत्पादन, कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन, खुंभ उत्पादन, फल–सब्जी उत्पादन, रेशम उत्पादन, लाह उत्पादन, मत्स्य उत्पादन आदि हो सकते हैं।

❖ चूँकि समेकित कृषि में सम्पूर्ण भूमि का समुचित उपयोग किया जाता है जैसे – खेत की मेड़ों, नालियों, तालाब के घेराबंदी वाले क्षेत्रों में भी सब्जी, फल, फूल आदि लगाये जाते हैं तथा चारा उत्पादन समेकित कृषि का एक मुख्य अंश है; अतः इस प्रणाली में साल भर चारा फसल की उत्पादन की व्यवस्था होती है ताकि पशुओं को ताजा एवं हरा चारा आसानी से उपलब्ध हो जाए।

❖ वर्ष 2020 तक जलावन की लकड़ी की मांग करीब 400 लाख घन मीटर हो जायेगी। वर्त्तमान में हमारी उत्पादकता केवल 20 लाख घन मीटर ही है। इमारती लकड़ियों की मांग भी करीब 64.4 लाख घन मीटर हो जाएगी जबकि वर्त्तमान में इसकी उत्पादकता केवल 11 लाख घन मीटर ही है। साफ जाहिर है कि अगले–दो दशकों में हमें इंधन व लकड़ी की कमी से जूझना है। समेकित कृषि में यदि कृषि–सह–वानिकी के अर्न्तगत उपयोगी वृक्षों को लगाया जाए तो यह फसल के साथ इन वृक्षों / पौधों द्वारा उपर्युक्त समस्या पर निदान पाया जा सकता है क्योंकि जिस रफ्तार से जंगलों की कटाई हो रही है यदि उस पर नियंत्रण न रखा गया तो भावी पीढ़ी के विनाश के लिए हम खुद ही उत्तरदायी होंगे।

❖ यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्ष 2030 तक ऊर्जा की कमी होना निश्चित है अतः उर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों के उत्पादन एवं उपयोग का ज्ञान 2–3 दशक के अन्दर हो जाना चाहिए। समेकित कृषि में विभिन्न अपशिष्टों द्वारा बायोगैस का उत्पादन संभव है जो ऊर्जा का एक ठोस वैकल्पिक स्त्रोत है। हालांकि यह पूर्ण रुप से फॉसिल उर्जा की कमी को पूरा करने में सक्षम नहीं है पर कुछ हद तक यह वैकल्पिक ऊर्जा देने में सक्षम है।

❖ कृषि फसलों के साथ अन्य घटकों के समायोजन से श्रमिकों की माँग भी बढ़ती है। चूंकि ये घटक वर्ष भर गतिशील होते हैं अतः समेकित कृषि में श्रमिक नियोजन की क्षमता बढ़ जाती है जो कि बेरोजगारी दूर करने में मददगार है।

❖ धनाभाव के कारण प्रायः छोटे और सीमान्त किसान नवीन तकनीकों के उपयोग से वंचित रहते हैं। समेकित कृषि प्रणाली में विभिन्न घटकों द्वारा वर्ष भर आय प्राप्त होती है अतः छोटे और सीमान्त किसान भी धीरे–धीरे नई तकनीकों को अपनाने में सक्षम हो जाते हैं।

❖ जो किसान लम्बे समय तक कृषि के साथ अन्य घटकों का समायोजन करते हैं जैसे बागवानी, खुंभ उत्पादन, रेशम या लाह उत्पादन, कुक्कुट या मधुमक्खी पालन, स्पॉन उत्पादन, पशुधन उत्पादन, बायोगैस उत्पादन आदि। उस घटक के बारे में पूर्ण विशिष्टता प्राप्त हो जाती है जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि होती है फलस्वरुप कृषक अपने बच्चों को शिक्षित करने में सक्षम हो जाते हैं।

भारत के मैदानी इलाकों के छोटे और सीमांत किसानों के लिए समेकित कृषि प्रणाली मॉडल

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना ने पूर्वी क्षेत्र के मध्य सिंचित और निचली सिंचित भूमि क्षेत्रों के लिए स्थान विशिष्ट समेकित कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया है (तालिका 1)। इन मॉडलों में, फसल, पशुधन, मत्स्य पालन, बागवानी तथा कृषि के अन्य उद्यमों के तहत क्षेत्र का आवंटन इस तरह से किया गया है कि यह कृषक परिवारों (पोषण और आय) और प्रणाली (पोषक तत्व/संसाधन पुनर्चक्रण) की मांग और जरूरतों को पूरा कर सके। इन समेकित कृषि प्रणाली मॉडल ने न केवल आय (लाभः लागत अनुपात 1.8–2.4) बढ़ाई बल्कि अतिरिक्त रोजगार (85–200 श्रम–दिन) भी उत्पन्न किया। इसके साथ ही कृत्रिम उर्वरकों के उपयोग में 22–30 प्रतिशत की कमी पाई गयी एवं मृदा में कार्बन की मात्रा में 6–11 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई। समेकित कृषि मॉडलों से आय में धान–गेंहू फसल चक्र के अपेक्षाकृत 87–352 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज की गयी तथा सभी मॉडलों में कार्बन डाईआक्साइड उत्सर्जन की मात्रा भी नकारात्मक पाई गयी।

एक एकड़ समेकित कृषि मॉडल (फसल +फल/सब्जी + बकरी + कुक्कुट + मशरूम)

निष्कर्ष

कृषि उत्पादों के पुनर्चक्रण और उपलब्ध संसाधनों के कुशल उपयोग के माध्यम से उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने के लिए समेकित कृषि प्रणाली एक आशाजनक दृष्टिकोण है। यह कृषक समुदायों के लिए साल भर रोजगार के अवसर पैदा करता है और बेहतर आर्थिक और पोषण सुरक्षा प्रदान करता है। समेकित कृषि प्रणाली में कृषि के विभिन्न घटकों के समायोजन के कारण जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कमतर पाया गया है। यह पर्यावरणीय गुणवत्ता और पारिस्थितिक स्थिरता को भी बनाए रखता है। कृषि के साथ अन्य घटकों के समायोजन से किसान अधिक लाभ प्राप्त करेंगे जिससे न सिर्फ उनकी जीवन शैली में बदलाव होगा बल्कि समाज का ढ़ाँचा सुदृढ़ होगा तथा हमारा देश और ज्यादा समृद्ध हो पायेगा।

समेकित कृषि प्रणाली

तालिका 1. समेकित कृषि मॉडल आधारित खाद्य उत्पादन प्रणाली

समेकित कृषि मॉडल	घटक	क्षेत्र (वर्ग मी.)	औसत आमदनी (समेकित कृषि)(रू.)	औसत आमदनी (धान–गेंहू)(रू.)	उर्वरक बचत(%)	अतिरिक्त रोजगार (श्रम–दिन)
सब्जी आधारित	सब्जी + मछली+ बतख + बकरी	2000	52,000–58,000	15,000–18,000	18.5	56
पशुधन आधारित	फसल+ फल/सब्जी+बकरी+ मशरूम	4000	80,000–1,10,000	30,000–35,000	22.7	135
तालाब आधारित	फसल+ फल/सब्जी +गाय+मछली/बतख	8000	1,50,000–2,02,000	60,000–70,000	28.4	234
तालाब आधारित (बाढ़ प्रवृत्त)	फसल+फल/सब्जी+ मछली/बतख	8000	1,28,000–1,48,000	42,000–50,000	16.5	148

लबलब बीन (सेम): पूर्वी भारत में विविधता और महत्व

• कुमारी शुभा[1], मीनू कुमारी[2], शिवानी[1], अरबिन्द कुमार चौधरी[1], संजीव कुमार[1], अजित पाल[1] एवं उमेश कुमार मिश्र[1]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर–कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची

सेम, लबलब बीन या हाइसिंथ बीन या भारतीय बीन (लैबलैब पर्पुरियस एल) एक सब्जी है जो दलहनीय वंश का हिस्सा है। यह प्राचीनतम फलीय पौधा में से एक है और इसका प्रारंभिक उत्पादन एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के सूखे क्षेत्रों में हुआ था। भारत में, यह विभिन्न हिस्सों में पाया जाता है, लेकिन खासकर यह दक्षिण, पूर्व और उत्तर–पूर्वी भागों में उत्पादन किया जाता है।सेम की उत्पादकता और उत्पादन का प्रमुख स्रोत भारत में कर्नाटक है, जहां यह खाद्य संसाधन के रूप में महत्वपूर्ण है। यह फसल आमतौर पर खाद्य, चारा और हरी खाद के रूप में बोई जाती है। यह तापमान और फोटोपेरियड से संवेदी होता है। इसके पोषण एवं जलवायु अनुकूल गुणो कें कारण इसे देश के अन्य हिस्से में भी अपनाया जा रहा है।

सेम की मुख्य खासियत यह है कि लोह तत्व से परिपूर्ण एवं अन्य चिकित्सीय गुणों के कारण यह सेहत के लिए फायदेमंद है। इसके अपरिपक्व फलियाँ और बीज सब्जी के रूप में सेवन किए जाते हैं और पके बीज पूरे साल दाल के रूप में खाये जाते हैं। इसमें प्रमुख जैविक तत्वों जैसे कि प्रोटीन (20–25%), एमिनो एसिड, विटामिन (ए, सी, और रिबोफ्लेविन) और खनिजों (कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, सल्फर व फॉस्फेरस) की अच्छी मात्रा पाई जाती है। इसके अतिरिक्त, सेम में कई चिकित्सीय गुण भी होते हैं। इसमें कैंसर के खिलाफ लड़ने वाले फ्लेवोनॉयड किएविटोन मौजूद होता है। इसके अलावा, बीज में टायरोसिनेस मानवों में उच्च रक्तचाप के इलाज के लिए उपयोगी होती है। अधिकतर मानव जीवन और खाने की आदतों के बदलते पैटर्न के कारण, कम कैलोरी और कम चर्बी वाले शाकाहारी भोजन का सेवन लोगों के बीच बढ़ता जा रहा है। इस संदर्भ में, सेम खाद्यता के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। पूर्वी भारत मे इसकी विविधता को फोटो 1 के माध्यम से दिखया गया है। इसकी उन्नत कृषि के लिए कुछ मुख्य बिन्दुओ के बारे में तालिका 1 मे बताया है।

निष्कर्ष

पूर्वी भारत में सेम स्थानिक मिट्टी और जलवायु अनुकूल होने के कारण काफी जैव विविधता प्रदर्शित करता है। इसके साथ ही न्यूनतम लागत के साथ उगाई जा सकती हैं। सेम, वर्तमान उत्पादन प्रणालियों की विविधता को बढ़ाने की क्षमता रखता है और इसके परिणामस्वरूप जलवायु प्रतिकूल परिस्थिति मे भी अच्छी आय दे सकता है। स्थानीय सब्जियों की खेती जैसे की सेम करने वाले गरीब छोटे किसानों को उन्नत कृषि को समझने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है, ताकि उनकी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। धारात्मक रूप से पोषक तत्व से भरपूर सेम में मानव पोषण को सुधारने में एक अहम् भूमिका रखता है।

तालिकाः 1 सेम की उन्नत खेती के लिए आवश्यक जानकारी

बुआई का समय	**खंभेदारः**15 जुलाई से 10 अगस्त **झड़ीदारः** सितम्बर के अंतिम सप्ताह से अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक
बीज दर तथा दूरी	**बीज दरः** **खंभेदारः** 30–35 किग्रा/हे. **झड़ीदारः** 50–60 किग्रा/हे.
बीज दूरी	**दूरीः** **खंभेदारः** पंक्ति–पंक्ति 2.5 मी.,पौधा– पौधा 1मी. **झड़ीदारः** पंक्ति–पंक्ति 60 सेमी.,पौधा–पौधा 45 सेमी.
खाद और उर्वरक	बीज बोने से 15 दिन पहले 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में मिला दें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश को 40:30:30 किग्रा/हेक्टेयर के अनुपात में डाला जाता है।
खरपतवार नियंत्रण के उपाय	तीन से चार बार हाथ से निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है।बीज बोने के 40 दिन बाद एक गुड़ाई और मिट्टी चढ़ा दें।इसके बाद 25–30 दिनों के अंतराल पर दो से तीन बार हाथ से निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है।
पौध संरक्षण	दिसंबर के दूसरे सप्ताह से जनवरी के अंतिम सप्ताह तक 20 दिनों के अंतराल पर डाइथेन जेड–78 या डाइथेन एम–45 / 1.5 ग्राम/लीटर पानी के 2–3 छिड़काव से पत्ती धब्बा और एन्थ्रेक्नोज रोगों का नियंत्रण।जलवायु की स्थिति के आधार पर जनवरी के दूसरे सप्ताह से जनवरी के अंतिम सप्ताह तक 15 दिनों के अंतराल पर साइपरमेथ्रिन के 2 मिलीलीटर/लीटर के 2–3 छिड़काव से एफिड्स पर नियंत्रण करें। फली छेदक को जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी के अंतिम सप्ताह तक 15 दिनों के अंतराल पर 1.5 मिली/लीटर पानी की दर से रोगोर या 0.5 मिलीग्लीटर पानी की दर से इंडोक्साकार्ब के 3 छिड़काव से नियंत्रित करें।
सिंचाई की मात्रा एवं समय	खेत में नमी के स्तर के आधार पर नवंबर से दिसंबर के महीने में फूल आने, फल लगने के समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती है।
फलियों की तुड़ाई	फल लगने के 25 दिन बाद खाने योग्य फलियों की तुड़ाई करें

आत्मनिर्भर बिहार हेतु मखाना का महत्व

• धीरज कुमार सिंह, अभय कुमार, उज्ज्वल कुमार, अनिर्बन मुखर्जी एवं रोहन कुमार रमण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

मखाना को फॉक्सनट के रूप में भी जाना जाता है। यह निम्फेसी परिवार से संबंधित एक जलीय फसल है। यह मुख्य रूप से दक्षिण पूर्व और पूर्वी एशियाई देशों में मिलाता है जैसे भारत चीन, नेपाल, बांग्लादेश, जापान, रूस, कोरिया, आदि। भारत में इसकी खेती बिहार, असम, मणिपुर, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और ओडिशा जैसे कुछ राज्यों तक सीमित है। मखाना परंपरागत रूप से स्थिर बारहमासी जल निकायों जैसे तालाबों, भूमि अवसादों, झीलों, खाइयों या गीली भूमि में 4 से 6 फीट तक स्थिर उथले पानी की गहराई में उगाया जाता है। वैसे तो इसे तालाबों में पारंपरिक तरीके से उगाया जाता है परन्तु पिछले कुछ वर्षो में निचली भुमि वाले खेतों में 1.5–2.5 फीट पानी भरकर इसका उत्पादन किसानों द्वारा किया जा रहा है। मखाना लावा एक पौष्टिक आहार है जिसमें भरपूर मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा कई खनिज लवण जैसे पोटाशियम, सोडियम, कैल्सियम एवं फासफोरस पाया जाता है। पॉप्ड मखाने में 12.8% नमी, 76.9% कार्बोहाइड्रेट, 9.7% प्रोटीन, 0.1% वसा, 0.5% कुल खनिज, 0.02% कैल्शियम, 0.9% फॉस्फोरस और 0.004 % आयरन होता है। यह भारतीय घरों में बहुत लोकप्रिय है और बड़े पैमाने पर तले हुए स्नैक्स, सब्जी करी, मीठे दलिया आदि के रूप में इसका सेवन किया जाता है। नवरात्र, कोजागरा, ईद और शादी के मौसम जैसे विभिन्न त्योहारों के दौरान मखाने की खपत बढ़ जाती है क्योंकि इसका उपयोग विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया जाता है और भक्तों द्वारा अपने उपवास के दौरान गैर–अनाज भोजन के रूप में इसका सेवन किया जाता है।

बिहार के मानचित्र में मखाना उत्पादक जिले (हरे रंग में)

बिहार में मखाना उत्पादन

बिहार में कृषि विकास की अपार सम्भावनाए हैं। उत्तरी बिहार के ज्यादातर क्षेत्रों में पानी कि कोई कमी नहीं होती और बरसात के दिनों में कई जलीय फसल जैसे मखाना, सिंघारा आदि फसलों की खेती की जाती है। आत्मनिर्भर बिहार के लिए मखाना एक महत्वपूर्ण फसल है क्योंकि सम्पुर्ण भारत के 80–85 प्रतिशत मखाना की खेती बिहार में की जाती है। विशेषकर उत्तरी बिहार में मखाना की खेती कैश क्रोप के रूप में की जाती है। बिहार में लगभग 35224 हेक्टेयर क्षेत्रफल में मखाने की खेती होती है जिससे लगभग 56389 टन मखाना बीज (गुड़ी) का उत्पादन होता है। यदि मखाना लावा की बात करें तो लगभग 40 प्रतिशत रिकवरी के साथ इस बीज से करीब 23656 टन लावा प्राप्त किया जाता है।

खेत में मखाना की फसल

मखाना का पौष्टिक लावा

निम्नलिखित सारणी में जिलावार मखाना की खेती में क्षेत्रफल, बीज उत्पादन तथा मखाना लावा उत्पादन का विवरण दिया गया है। यह देखा जा सकता है कि मखाना उत्पादक जिलों में मिथिलांचल तथा कोसी क्षेत्र के जिलों का बोलबाला है। कुल 11759 टन बीज उत्पादन के साथ कटिहार सर्वाधिक मखाना बीज का उत्पादन करता है जबकि पूर्णिया (11653 टन), दरभंगा (7421 टन) तथा मधुबनी (7281 टन) क्रमशः दूसरे तीसरे तथा चौथे स्थान पर हैं। पोप्ड मखाना (लावा) के उत्पादन में पुर्णिया जिला 5234 टन के साथ पहले स्थान पर है। कोसी क्षेत्र के सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, अररिया एवं किशनगंज जिलों में भी मखाना की अच्छी खेती की जाती है।

सारणीः बिहार में जिलावार मखाना बीज व लावा का उत्पादन

क्र.	प्रमुख मखाना उत्पादक जिले	क्षेत्रफल (हे.)	कुल बीज उत्पादन (टन में)	कुल लावा उत्पादन (टन में)
1	दरभंगा	4389	7421.4	2969
2	मधुबनी	4160	7280.7	3012
3	सितामढी	146	277.4	112
4	पुर्णिया	5549	11652.9	5234
5	कटिहार	6043	11759	4858
6	सहरसा	4443	5267	2167
7	सुपौल	5463	5182.8	2260
8	मधेपुरा	2461	2907.39	1188
9	अररिया	1427	2639.95	1056
10	किशनगंज	1143	2000.25	800
	कुल	35224	56388.8	23656

मखाना उत्पादन बढ़ाने हेतु संस्थागत प्रयास

मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा में स्थित है जो कई वर्षो से मखाना अनुसंधान एवं इसके विस्तार हेतू कार्य कर रहा है। इस केन्द्र द्वारा उन्नत किस्म स्वर्ण वैदेही का विकास किया गया है जिसकी उत्पादन क्षमता 3 टन प्रति हैक्टेयर तक है। किसान भाइयों तक पहुँचाने के लिए इस किस्म का बीज उन्हे दरभंगा, मधुबनी, सुपौल, सहरसा, कटिहार एवं पूर्णिया जिलों में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से तथा सीधे भी वितरित किया जाता है। इन जिलों के लगभग 5000 किसानों को ये उन्नत बीज दिये गए हैं जिससे उनकी पैदावार में 20–25 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई है। बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर द्वारा भी मखाना की उन्नत किस्म सबौर मखाना–1 का विकास किया गया है। जिसकी उत्पादन क्षमता और पॉप रिकवरी काफी अच्छी है।

साथ ही साथ प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से उन्हे मखाना उत्पादन की उन्नत तकनीक विषय पर मखाना अनुसंधान केन्द्र दरभंगा एवं भोला पासवान शास्त्री कॉलेज, पूर्णिया द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है जिससे मखाना की उत्पादकता बढ़े एवं किसान भाई ज्यादा से ज्यादा लाभ कमायें। मखाना अनुसंधान केन्द्र ने मखाना सह मछली पालन विषय पर भी तकनीकी विकसित की है जिसे दरभंगा, मधुबनी, सुपौल, सहरसा, कटिहार एवं पूर्णिया जिलों के किसानों तक पहुँचाया जा रहा है। लगभग 20000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में इस तकनीक का उपयोग किसान भाई कर रहे हैं। साथ ही साथ मखाना बीज की ग्रेडिंग के लिए एक सीड ग्रेडर भी संस्थान द्वारा तैयार किया गया है जो किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा। संस्थान ने मखाना के वैल्यू एडेड प्रोडक्ट जैसे मखाना खीर मिक्स, मखाना पाउडर जैसे उत्पाद बनाये है। इन प्रसंस्कृत उत्पादों को कई प्राइवेट कंपनियां जैसे शक्ति सुधा इंडस्ट्रीज, मिथिला मखाना आदि बाजार में ला चुकी है तथा ये धीरे धीरे उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। वर्तमान में मखाना लावा में पाये जाने वाले एन्टी ऑक्सीटेंड एवं एन्टी एजिंग प्रोपर्टी पर अनुसंधान कार्य चल रहा है।

मखाना किसानों हेतु प्रभावी मार्केटिंग तथा निर्यात के अवसर

बाजार में उपलब्ध मखाना के विभिन्न कंपनियों के उत्पाद

मखाना के वैल्यू चेन या मूल्य श्रृंखला के अध्ययन से पता चला है कि किसान भाइयों को ग्राहक मूल्य का केवल 27–30 प्रतिशत हिस्सा ही मिल पाता है जबकि बचे हुए 70 प्रतिशत भाग बिचौलियों तथा मार्केटिंग खर्च में चला जाता है। इसका मुख्य कारण कम कीमत पर किसानों द्वारा मखाना बीज की बिक्री तथा मखाना लावा के प्रसंस्करण में भाग नहीं लेना है। किसानो को कम से कम ग्राहक मूल्य का आधा भाग मिलना ही चाहिए जिसके लिए उन्हें एकत्रित

होना होगा। किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से यदि बीजों को प्रसंस्कृत कर लावा के रूप में बेचा जाए तो निश्चित ही ग्राहक मूल्य में उनकी हिस्सेदारी 50% तक बढ़ सकती है।

वर्तमान में हमारे देश से लगभग 200 टन मखाना का निर्यात मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, बांग्लादेश, पाकिस्तान और खाड़ी देशों जैसे संयुक्त अरब अमीरात,कतर, कुवैत, सऊदी अरब आदि को किया जाता है। इस प्रकार कुल मखाना उत्पादन का 1 प्रतिशत से भी कम हिस्सा निर्यात हो रहा है जबकि निर्यात की असीम संभावनाएं है। मखाना के गुणों को देखते हुए भविष्य में इसकी मांग काफी बढ़ सकती है। बिहार राज्य का इस समय मखाना उत्पादन में एकाधिपत्य है जिसका भरपूर फायदा किसान भाई उठा सकते हैं। यदि सरकार का सहयोग तथा अनुसंधान संस्थानों द्वारा नई किस्मों और तकनीकों का विकास और अंगीकरण हो तब अगले 5–10 साल में मखाना का उत्पादन हम दोगुना कर सकते हैं तथा इसका निर्यात तो 10 गुना तक बढ़ सकता है जिससे न सिर्फ किसानों को फायदा होगा बल्कि बिहार राज्य एवं देश भी बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित कर आत्मनिर्भर बन सकता है। एक जिला एक उत्पाद के अंतर्गत बिहार के 6 मखाना उत्पादक जिलों को चुना गया है जिसमे किसानो तथा व्यापारियों को हर संभव सहायता दी जा रही है। वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार ने वर्ष 2020 में न्यूट्री एक्सपोर्ट प्रोमोशन बोर्ड का गठन किया जिसमें मखाना को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मखाना क्लस्टर के विकास के लिए केंद्र सरकार ने 2000 करोड़ रुपये के योजना को मंजूरी दी है। इसके अलावा अगस्त, 2022 को मिथिला मखाना को जीआई टैग भी प्रदान किया गया है, जो उत्पाद को बेहतर मूल्य प्राप्ति, विपणन और निर्यात के लिए विशिष्टता प्रदान करता है।

पूर्णिया स्थित मखाना प्रसंस्करण स्थल

आत्म निर्भर बिहार हेतु मखाना के लिए भविष्य रणनीति

मखाना के क्षेत्र में उत्पादन, पैदावार तथा निर्यात के क्षेत्र में असीम वृद्धि की संभावना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है। सभी रेखांकित जिलों में मखाना के संसाधन के मानचित्रण (रिसोर्स मैपिंग) और आसपास के जिलों में इसकी खेती की संभावनाओं की खोज करनी होगी जिससे इसके क्षेत्रफल को बढ़ाया जा सके। मखाना में उन्नत बीज की बहुत कमी है। ऐसे में पारंपरिक प्रजनन विधि के माध्यम से नई किस्म के बीज का विकास होने से उत्पादकता में अच्छी वृद्धि हो सकती है। साथ ही साथ एक वर्ष में दो फसलें लेने की संभावनाओं की खोज भी आवश्यक है। मखाना के व्यापार को सूखे मेवे के व्यापार से जोड़ कर देखते हुए इसके आपूर्ति श्रृंखला और मूल्य श्रृंखला को मजबूत बनाना होगा। दोनों ही केंद्र तथा राज्य सरकार को मखाना की खेती और व्यापार पर अनुदान एवं सहयोग प्रदान करना होगा क्योंकि ज्यादातर मखाना के किसान मछुआरे होते है जिनकी सामाजिक व आर्थिक हालत ठीक नहीं होती। मखाना के निर्यात प्रोत्साहन हेतु सेंट्रल लेवल बोर्ड बनाने की आवश्यकता है जिससे निर्यात को बढ़ाया जा सके।

वैल्यू एडेड प्रोडक्ट के लिए घरेलु एवं विदेशी बाजार में अपार संभावनाएं हैं। अतः हमें प्रोसेसींग इंडस्ट्रीज को बढ़ावा देना होगा। साथ ही ऐसी मशीनरी विकसित करनी होगी जिससे मखाना की तुड़ाई एवं प्रसस्करंण में आसानी हो। आत्मनिर्भर बिहार के सपने को साकार करने हेतु मखाना की फसल के क्षेत्र विस्तार एवं उत्पादकता बढ़ाने पर विशषे ध्यान देने की जरूरत है।

मत्स्य पालन में अजोला का महत्त्व

• विवेकानन्द भारती, कमल शर्मा, तारकेश्वर कुमार, एस. के. अहिरवाल, जसप्रीत सिंह एवं अमरेन्द्र कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

आधुनिक समय में मत्स्य पालन तेजी से बढ़ने वाला व्यावसाय उभर कर सामने आया है, जो उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन प्रदान करती है। हालाँकि, मत्स्य पालन में कृषि की अपेक्षा अधिक लाभ होता है, लेकिन यह लाभ किफायती दर पर उपलब्ध आहार पर निर्भर करता है। पौष्टिक जलीय आहार मछलियों के स्वास्थ्य और उसके शारीरिक विकास दर को तय करता है। उत्कृष्ट अमीनो एसिड, उच्च पाचनशक्ति, उत्तम स्वाद, और पोषण–विरोधी कारकों की अनुपस्थिति अच्छे मत्स्य आहार में उपयोग होने वाले प्रोटीन के महत्वपूर्ण घटक हैं। आवश्यक एमिनो एसिड, वसीय अम्ल, खनिज, विटामिन (कोलीन, बायोटिन और विटामिन बी, ए, डी, और ई), और ओमेगा–3 एमिनो एसिड (एन–3) की उपस्थिति के कारण फिशमील मत्स्य पालन में उपयोग किया जाने वाला प्रोटीन का प्राथमिक स्रोत माना जाता है (तालिका–1)। लगातार फिशमील की कीमत में वृद्धि मत्स्य पालन के विस्तार में बाधा उत्पन्न कर रही है। सामान्य तौर पर मत्स्य पालन में केवल आहार का खर्च कुल परिचालन लागत का लगभग 50–60 प्रतिशत होता है, जहाँ प्रोटीन पूरक आहार लागत का प्रमुख हिस्सा होता है। अतः मत्स्य पालन के विस्तार को और अधिक गति प्रदान करने के लिए उच्च लागत वाले पारंपरिक फिशमील की आवश्यकता है, जिसमें पादप–आधारित प्रोटीन जैसे सोयाबीन, गेहूँ, मक्का, कपास इत्यादि का उपयोग किया जाता है ।

तालिका 1– अजोला की रासायनिक संरचना

क्रमांक	पोषक तत्व	प्रतिशत मात्रा (सूखा वजन)
1.	प्रोटीन	20–30
2.	एमिनो एसिड	7–10
3.	नाइट्रोजन मुक्त पदार्थ	30.0–47.0
4.	ईथर	2.37–6.70
5.	राख	15.7–19.9
6.	रेशा	12.6–17.5
7.	कैल्शियम	0.80–2.22
8.	फॉस्फोरस	0.35–1.29
9.	मैगनीशियम	0.25–0.65
10.	सोडियम	0.49–1.24
11.	पोटैशियम	2.19–4.93
12.	मैंगनीज (पी.पी.एम.)	83.9–2418
13.	लोहा (पी.पी.एम.)	283–1569
14.	तांबा (पी.पी.एम.)	9.10–26.2
15.	कैरोटीन (पी.पी.एम.)	206–632
16.	जिंक (पी.पी.एम.)	30.02–87.59

अजोला (अजोला पिंनाटा) एक स्वतंत्र रूप से तैरने वाला, तेजी से बढ़ने वाला छोटा जलीय फर्न है, जो पानी की सतह पर सघन रूप में उपलब्ध होता है। साधरणतः एजोला लंबाई में 1.5 से 3.0 सेंटीमीटर और चौड़ाई 1 से 2 सेंटीमीटर तक होती है, जो तने, पत्तियों और जड़ों में विभक्त होती है। अजोला पत्तियों में सायनोफाइसियन शैवाल, अनाबेना एजोलाए निवास करती है, जो एजोला को वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अमोनियम आयन के रूप में स्थिर करने में सक्षम बनाती है। अजोला को नियंत्रित वातावरण में न्यूनतम स्थल और कम लागत के साथ अल्प समय में उगाया जा सकता है। इसमें प्रकाश संश्लेषण के दौरान ऑक्सीजन का उत्पादन करने के अलावा, वातावरणीय नाइट्रोजन और कार्बन–डाई–ऑक्साइड का उपयोग कर क्रमशः कार्बोहाइड्रेट और अमोनिया उत्पन्न करने की सक्षमता है। धान की खेत में नाइट्रोजन उर्वरकों के स्थान पर अजोला का उपयोग किया जा सकता है। यह सिंचित धान के खेतों में वाष्पीकरण की दर को कम करता है। अजोला के आहार पर जलपक्षी, मछली, झींगा, घोंघे, केकड़े, बत्तख, मुर्गियाँ, सुअर, मवेशी और भैंस को पाला जा सकता है।

1. अजोला संवर्धन तकनीक

एजोला कम से कम 5 इंच पानी की गहराई में उग सकता है, जैसे (1) गड्ढों, (2) कंटेनरों, या (3) तालाबों में आदि। लेकिन अजोला संवर्धन के स्थान का क्षेत्रफल और आकार उसकी उपयोगिता की मात्रा और उसके लिए उपलब्ध

जगह पर निर्भर करता है। चूँकि संसाधन–विहीन स्थिति और कम निवेश में भी इसका संवर्धन किया जा सकता है, अतः छोटे, सीमान्त, भूमिहीन तथा साधन–विहीन किसान संवर्धन भी इस तकनीक को अपना सकते हैं। गड्ढों और कंटेनरों में अजोला के संवर्धन के लिए निम्नलिखित चरण हैं चित्रः–1

- 2 मीटर लंबाई, 1 मीटर चौड़ाई और 20 सेंटीमीटर गहराई का एक गड्ढा तैयार करें तथा गड्ढे आकारगोलाकार या आयताकार हो सकता है। इसके लिए 500 लीटर उथले का फाइबर–प्रबलित प्लास्टिक (एफआरपी) टैंक की व्यवस्था करें।
- टैंक या गड्ढे के ऊपर प्लास्टिक की चादरें बिछाएँ
- 8–10 किलो मिट्टी और 1.5–2 किलो पुराना गोबर मिलाकर गड्ढे या एफआरपी टैंक में फैला दें।
- बिना क्लोरीन वाला (डी–क्लोरिनेटेड) नल का पानी भरें और तीन दिनों के लिए छोड़ दें।
- 20 ग्राम एसएसपी डालें और एक दिन के लिए छोड़ दें।
- 100 ग्राम अजोला संरोपण करें।
- 15 दिनों तक वृद्धि होने दें और छान लें।
- उपरोक्त प्रक्रियाओं को बार–बार दुहराएँ।

चित्रः–1.एफआरपी टैंक में एजोला संवर्धन की प्रक्रिया

2. मत्स्य पालन में अजोला का उपयोग

अजोला का उपयोग या तो ताजा चारा या सूखे अवस्था में मत्स्य आहार के अन्य सामग्री के साथ किया जा सकता है। आंशिक रूप से अजोला उपयोग करके मछली के लिए आहार तैयार करने के लिए प्रत्येक प्रजाति के लिए अजोला की मात्रा अलग अलग होती है (तालिकाः–2)। अजोला की उच्च पोषक संरचना के कारण, मछली की फ्राई अवस्था और फिंगरलिंग भी अजोला आहार का सेवन करने पर शारीरिक विकास और जीवित रहने के मामले में बहुत अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

तालिकाः –2. मछली के आहार में अजोला की मात्रा

क्रमांक	मछली	अजोला प्रतिशत
1.	कतला	20–50
2.	रोहू	50
3.	मृगाल	10–25
4.	लेबियो फिम्ब्रियेटस	40
5.	कालबासु	30
6.	कॉमन कार्प	40
7.	गिफ्ट तिलापिया	10–20
8.	तिलापिया मोज़ाम्बिक	20
9.	नाइल तिलापिया	20–25
10.	सिल्वर बार्ब	25
11.	ग्रास कार्प	30
12.	पंगेसियस	10

अजोला के सेवन से मछली की रोग प्रतिरोधक क्षमता में प्रभावी ढंग से सुधार होता है, जिससे मछली रोग प्रतिरोधी बन जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसके जीवित रहने की दर में वृद्धि होती है। अजोला में उपस्थित अधिक मात्रा में आवश्यक एमीनो एसिड, विटामिन, खनिज और कैरोटीनॉयड प्रतिरक्षा और पाचन तंत्र को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। अजोला में उपस्थित फिनोल सामग्री, कैरोटीनॉयड, फ्लेवोनोइड और टैनिन भी मछली में एंटीऑक्सिडेंट और इम्यूनोस्टिमुलेंट का कार्य करता है। उदाहरण के लिए, नाइल तिलापिया द्वारा अज़ोला के सेवन से इसकी सक्रिय प्रतिरक्षा प्रणाली में सुधार के कारण स्ट्रेप्टोकोकस एग्लैक्टी संक्रमण में कमी हो जाता है। अजोला मछली के शारीरिक विकास और आंतों के एंजाइमों की अभिक्रिया, जैव रासायनिक गुण, ऑक्सीडेटिव प्रतिक्रियाओं और मांस की गुणवत्ता में सुधार करता है।

मछली के आहार में अजोला शामिल करने से आहार की लागत कम हो जाती है,क्योंकि मछली उत्पादन की उच्च लागत और किसानों के लाभ में कमी के लिए वाणिज्यिक–आहार की लागत महत्वपूर्ण रूप से जिम्मेदार होता है। मछली के लिए सस्ता आहार सामग्री मत्स्य पालकों को अधिक लाभ प्राप्त करने में मदद करता है। नाईल तिलापिया के पलान में 25 प्रतिशत वाणिज्यिक–आहार का प्रतिस्थापन अजोला द्वारा करने से

मत्स्य पालक को 22 प्रतिशत अधिक राजस्व प्राप्त हो सकता है।

चित्र:2 मछली पर अजोला आहार का प्रभाव

यदि ताजा अजोला का उपयोग मछली को खिलाने के लिए किया जाता है, तो अजोला की कुल मात्रा मछली बायोमास के 10 प्रतिशत के रूप में दी जानी चाहिए। इसलिए, अजोला उत्पादन का क्षेत्र मछली को खिलाने के लिए अजोला के उपयोग की विधि पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यदि एक तालाब में 10 ग्राम वजन का 10000 अंगुलिकाओं को रखे गए हैं, तो मछली का कुल बायोमास =(10000x10ग्राम)/1000=100 किलोग्राम, ताजा अजोला की दैनिक आवश्यकता 100x10ग्राम/100=10 किलोग्राम है। इसलिए, मछली भंडारण के समय अजोला उत्पादन क्षेत्र की आवश्यकता कम–से–कम 15–20 वर्ग मीटर होती चाहिए। अजोला उत्पादन के लिए प्रमुख पर्यावरणीय घटक सूर्य प्रकाश, तापमान और पीएच, जिसकी मात्रा तालिका:–3 में दर्शाया गया है।

तालिका:–3 अजोला के लिए पर्यावरणीय आवश्यकताएँ

क्रमांक	कारक	वांछनीय मात्रा
1.	पानी की सतह	10–15 सेमी
2.	सूर्य प्रकाश	आंशिक छाया
3.	तापमान	20–35 डिग्री सेल्सियस
4.	सापेक्षिक आर्द्रता	80–90 प्रतिशत
5.	पी.एच	5–7.2
6.	फॉस्फोरस	20 किग्रा/हेक्टेयर

पादप कोशिका में उच्च मात्रा में फाइबर और स्टार्च होता है। मांसाहारी मछलियों में इन कोशिका भित्ति को तोड़ने वाले एंजाइमों की कमी के कारण फाइबर घटक वाला आहार अपचनीय होता है। इसके अतिरिक्त, एंजाइम अवरोधक, फेनोलिक यौगिक, लेक्टिन और ऑलिगोसेकेराइड जैसे पोषण–विरोधी कारक पौधे–आधारित प्रोटीन स्रोतों में उच्च मात्रा में मौजूद होते हैं, जिन्हें मत्स्य आहार में शामिल करने से पहले थर्मल या रासायनिक प्रसंस्करण द्वारा नष्ट कर दिया जाना चाहिए।

चित्र:–3.मत्स्य आहार से पोषण–विरोधी घटक हटाने की विधियाँ

अजोला वायुमंडलीय (CO_2)और नाइट्रोजन (N_2) को क्रमशः कार्बोहाइड्रेट और अमोनिया में परिवर्तित कर सकता है। जब ये यौगिक कार्बन और नाइट्रोजन में विघटित होते हैं, तो मिट्टी के रासायनिक शक्तिमें वृद्धि हीती हैं। इसके अतिरिक्त, अजोला को तालाब में हरी खाद के रूप में उपयोग किय जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप 60–80प्रतिशत नाइट्रोजन उर्वरक की आवश्यकता में कमी आ सकती है। अजोला मच्छर प्रतिरोधी के रूप में कार्य करने के अलावा मच्छरों की आबादी को रोक सकता है। अजोला द्वारा मच्छर के प्रजनन क्षमता में भी कमी आ जाती हैं। अतः इस अजोला में लिग्निन, सेल्युलोज, नाइट्रोजन, प्रोटीन, कच्चे फाइबर और ठोस सहित सूक्ष्म तत्वों की एक समृद्ध संरचना है, इसका उपयोग बायोगैस उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। प्राकृतिक संसाधन का उपयोग करके मच्छरों से होने वाली बीमारियों को फैलने से रोका जा सकता है और अधिक टिकाऊ भविष्य तथा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। मत्स्य आहार में अजोला का उपयोग जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को बिना नुकसान पहुँचाये मत्स्य पालन को लाभकारी बनाने में मदद करता है (चित्र:–4)।

चित्र:4 अजोला का योगदान मात्स्यिकी की पारिस्थितिकी तंत्र में

हिन्दी पखवाड़ा–2023

● अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

शुभारंभ

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में दिनांक 14.09.2023 को हिंदी दिवस के आयोजन के साथ हिन्दी पखवाड़ा–2023 समारोह का शुभारंभ हुआ। कार्यक्रम का शुभारंभ संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया। संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिंदी दिवस के सुअवसर पर बधाई देते हुए डॉ. दास ने बताया कि हिंदी संवाद का सरलतम माध्यम है और यह देशवासियों को एक सूत्र में बांधती है। केंद्रीय सरकार के कर्मचारी होने के नाते यह हम सब की जिम्मेदारी है कि हम सारे कार्यालयी कार्यक्रम हिंदी में ही करें। हमारा संस्थान 'क' क्षेत्र में आता है, जिसके कारण यह संवैधानिक आवश्यकता भी है कि हम अपने सभी कार्यालयी कार्य 100% हिंदी में ही करें, ताकि राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा दिए गए लक्ष्य को पूरा कर सकें। डॉ. दास ने इस बात पर जोर दिया कि संस्थान के सभी प्रकाशन हिंदी में हो, ताकि यह किसानों एवं अन्य हितधारकों तक पहुंच सके।

डॉ. आशुतोष उपाध्याय, उपाध्यक्ष, संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने अपनी स्वरचित कविता के साथ संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिंदी दिवस के सुअवसर पर बधाई दी। उन्होंने कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में राजभाषा हिंदी के महत्त्व पर चर्चा की। उन्होंने हिंदी पखवाड़ा के दौरान संस्थान में आयोजित होने वाली विभिन्न प्रतियोगिताओं के बारे बताया । कार्यक्रम के दौरान विभिन्न प्रभागाध्यक्षा/ अनुभागाध्यक्षों ने भी राजभाषा पर अपने–अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम में सरस्वती वंदना और हिंदी गीत आकर्षण के केंद्र रहे। डॉ. मनीषा टम्टा, वैज्ञानिक ने मंच का संचालन किया। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

।

समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में दिनांक 29.09.2023 को हिन्दी पखवाड़ा – 2023 का समापन कार्यक्रम हर्षोल्लास के साथ संपन्न हुआ। डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक के स्वागत भाषण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ, जिसमें उन्होंने हिंदी पखवाड़ा के दौरान संस्थान में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के बारे में विस्तृत जानकारी दी ।

इस समापन समारोह की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास ने की । इस अवसर पर मुख्य तिथि के रूप में भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र के निदेशक डॉ. बिकाश दास मौजूद थे।

अपने उद्‌बोधन में डॉ. अनुप दास ने कहा कि हिंदी दिवस/ पखवाड़ा/मास के आयोजन का मुख्य उद्देश्य लोगों को यह एहसास दिलाना है कि जब तक वे हिंदी का उपयोग पूरी तरह से नहीं करेंगे तब तक हिंदी भाषा का विकास नहीं हो सकता । हिंदी सिर्फ भाषा ही नहीं है, बल्कि हम भारतीयों की पहचान भी है। यह हमारे हृदय से जुड़ी है। हिंदी के आधार पर विभाजित क्षेत्र के अनुसार हमारा संस्थान "क" क्षेत्र में आता है । अतः हमारी नैतिक एवं संवैधानिक जिम्मेदारी बनती है कि हम अपने संपूर्ण कार्यालय संबंधी कार्य हिंदी में ही करें। उन्होंने कहा, " मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि हम नई अनुसंधान प्रौद्योगिकियों और तकनीकों का हिंदी माध्यम से प्रचार–प्रसार करके हिंदी को विश्व भाषा का गौरव प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे एवं इस संबंध में वैज्ञानिक, तकनीकी एवं प्रशासनिक संवर्ग के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग अपेक्षित है"।

बिकास दास, निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र ने बताया कि हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसमें सभी भाषाओं को समाहित करने की क्षमता है। राजभाषा हिंदी में काम करना सरल और सुबोध है । हिंदी में कार्यालयीन कार्य किए जाएं, तो निश्चित रूप से राष्ट्र हित में सराहनीय कदम होगा ।

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के उपाध्यक्ष डॉ. आशुतोष उपाध्याय ने बताया कि कृषि जगत की जानकारियों को किसानों तक पहुंचाने के लिए हिंदी सरल और समृद्ध माध्यम है। हिंदी भाषा के विकास एवं प्रचार हेतु सदैव तत्पर रह। डॉ. उपाध्याय ने इस अवसर पर अपनी स्वरचित कविता भी सुनाई।

कार्यक्रम के दौरान विभिन्न प्रभागाध्यक्षा/अनुभागाध्यक्षों ने भी राजभाषा हिंदी पर अपने–अपने विचार साझा किए।

कार्यक्रम में डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक, डॉ. रजनी कुमारी,

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं श्रीमती उषा किरण, तकनीशियन ने "देश रंगीला" गीत से सभागार में उपस्थित लोगों का दिल जीत लिया। कार्यक्रम में डॉ. बिकास दास, निदेशक, भा.कृ. अनु.प.– राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, डॉ. रोहन कुमार रमण, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. अभिषेक कुमार, वैज्ञानिक एवं डॉ. मनीषा टम्टा, वैज्ञानिक के हिंदी गीत भी आकर्षण के केंद्र रहे।

इसके उपरांत पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताएं, जैसे, निबंध प्रतियोगिता, यूनिकोड टंकण प्रतियोगिता, व्याकरण प्रतियोगिता, प्रश्नमंच प्रतियोगिता, आशुभाषण प्रतियोगिता, स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता एवं अंताक्षरी प्रतियोगिता के सभी विजेताओं को प्रमाण पत्रों एवं नकद पुरस्कारों से नवाजा गया एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं के निर्णायकों को भी सम्मानित किया गया। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक ने मंच का संचालन किया एवं श्रीमती प्रभा कुमारी, सहायक प्रशासनिक अधिकारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया। हिंदी पखवाड़ा –2023 को सफल बनाने में डॉ. शंकर दयाल, प्रधान वैज्ञानिक, डॉ. पंकज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, डॉ. रजनी कुमारी, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. तारकेश्वर कुमार, वैज्ञानिक, डॉ. कुमारी शुभा, वैज्ञानिक, डॉ. मनीषा टम्टा, वैज्ञानिक एवं उमेश कुमार मिश्र, हिंदी अनुवादक की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही।

नारी

● ऋषिका कुमारी
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

नारी है संसार बसाती,
घर खुशियों से स्वयं सजाती ।
धड़कन है और जान है नारी ।
हर घर की मुस्कान है नारी ।।
कभी समस्या का मूल है नारी ,
तो कभी समाधान है नारी ।
सोचूं तो ऐसा लगता है,
सृष्टि की सृजनहार है नारी ।।
पुरुषों से आगे है नारी,
देश की भी शान है नारी ।
ये नारी नहीं, मां शक्ति की रूप है।
इसके बिना है सब अधूरे,
जैसे किसानों की जरूरत,
अच्छी बारिश और धूप है ।।
नारी है महान,
नारी देश की शान ।
जान–पहचान या हो अंजान ,
सदा करो नारी का सम्मान ।।

भाग्य

● तानिया ठाकुर
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भाग्य
तानिया ठाकुर
उसने सारा दिन काम किया ,
और सारी रात काम किया !
उसने खेलना छोड़ा,
और मौज मस्ती छोड़ी !
उसने ज्ञान के ग्रंथ पढ़े
नई बातें सीखी,
दिल में विश्वास और हिम्मत लिए
वह आगे बढ़ा !
और जब वह सफल हुआ
लोगों ने उसे भाग्यशाली कहा !!

बेटियाँ

● तानिया ठाकुर
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

बोये जाते हैं बेटे और उग जाती है बेटियाँ,
खाद पानी बेटों को और लहराती बेटियाँ!
एवरेस्ट की ऊंचाइयों तक धकेले जाते हैं बेटे ,
और चढ़ जाती है बेटियाँ !
पढ़ाए जाते हैं बेटे, और पढ़ जाती है बेटियाँ,
रुलाते हैं बेटे और आंसू पोंछती है बेटियाँ!
गिराते हैं बेटे, संभाल लेती है बेटियाँ !
जीवन तो बेटों का, और मारी जाती है बेटियाँ !!

सोचता हूँ

● आशुतोष कुमार
छात्र, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

जिनके सिर ढँकने के लिए
छतें होती हैं
वही रखते हैं छाते
इस शहर के लोगों के पास जो छाता है
उसमें कोई एक ही आता है
इसलिए
सोचता हूँ
मैं लूँगा
तो लूँगा आसमान
कि जिसमें सब आ जाएँ
और बाहर खड़ा भीगता रहे
बस मेरा अकेलापन

शिक्षा एक उम्मीद

● अंशु
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

जीवन की कठिनाइयों से जूझते, खुशियों को त्यागते हुए
पढ़ाई की राह पर रहते हैं, बलिदान पूर्वक
संघर्ष से भरा इनका जीवन, हर मोड़ के साथ आती है
एक नई चुनौतीय
ज्ञान का हाथ पकड़, आकाश को छूने का हुनर रखते हैं
जीवन की किताबों के बजाय काम का दामन पकड़ते हैं
पढ़ाई ना रह जाए अधूरी, हर अथक प्रयास करते हैं
अध्ययन का बोझ उठाते हैं वे धैर्य से
सपनों के उड़ान भरे पंख लहराते हैं
अपनी मेहनत से अपना भविष्य सजाते हैं
विद्या की रोशनी से अपने जीवन के अंधकार को दूर भागते हैं
समाज की सोचों से जूझते हैं, वे हमेशा
अपने सपनों के खातिर सबसे लड़ जाते हैं
अपने सपनों को पूरा करने का दृढ़ संकल्प रखते हैं !!

लक्ष्य, लक्ष्य, लक्ष्य क्या है लक्ष्य

● आदित्य मिश्रा
छात्र, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

जब हमारा सोच

परिणाम में परिवर्तित होता है? जब हमारा, दुःख सुख में परिवर्तित होता है, जन दुविधाओं की एक श्रृंखला से, उम्मीद की किरण खीलती है !

समस्याओं की अनेक विपदाओं से, अनिवार्य की एक कहानी लक्ष्य, की अंधेरे, संघर्ष और मेहनत की एक खानी है !!

जिंदगी एक नजरिया

● अमन
छात्र, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

समंदर की चाह रखने वाला,
आज बूँद की तलाश में खुश है।
सपनों की नदियों में बहने वाला,
आज एक छोटी सी असल जिंदगी में खुश है।
मंजिल ढूंढते ढूंढते जरूरतों ने बदल दिए हैं इनके भी मैंने
कुछ ऐसी,
कि आज वो गरम खाना खाने वाला,
सुखी रोटी में भी खुश है !
ख्वाहिशें इसकी भी थी बहुत सी,
पर ये अपने जरुरत के..दिखाये उस जख्म से ही खुश है।

जिंदगी

● राखी
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

जिंदगी एक अनमोल सफर, जिंदगी से प्यार करो !
हर लम्हे में छुपी है खुशियां,
बस उसे खुलकर जियो! चुनौतियों से नहीं घबराना,
उसका डट कर सामना करो !
हर पल होगा बेहतरीन ,
उस पल का इंतजार करो ,
बस रब पर भरोसा और वक्त पर ऐतबार करो !!

तू खेल मुसाफिर

● मन्नत
छात्रा, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

क्या खेल है इस धरती का,
तू देख मुसाफिर, तू खेल मुसाफिर ।

पल में कोई अपना लगता है,
पल में कोई पराया ।
पल में जग अच्छा लगता है,
पल में सब कच्चा ।।

जग की पल दो पल की बातें,
तू छोड़ मुसाफिर, तू खेल मुसाफिर ।

अजब है इस दुनिया की रीति,
हंस चुगे हैं दाना ,कौवा खाए हैं मोती ।
पर उस हरि की है बस एक ही नीति,
जिसने जैसी है बोई उसने वैसी है काटी ।।

उस हरि की इस प्रित की रीति,
तू समझ मुसाफिर, तू खेल मुसाफिर ।

जीवन की घटा को सूर्य बनकर हटा तू,
मुसीबत की अंधकार को प्रकाश बनकर मिटा तू।
परेशानियों की चट्टान को बादल बनकर चिढ़ा तू,
हौसले की जोत को विश्वास से जला तू ।।

फिर जीत की उड़ान की गाथा ,
तू सुन मुसाफिर, तू सुन मुसाफिर !
क्या खेल है इस धरती का ,
तू देख मुसाफिर, तू खेल मुसाफिर !!

कर्मभूमि

● आशुतोष कुमार
छात्र, आई.ए.आर.आई.–पटना हब, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

मुश्किलें आ खड़ी हुई हैं,
तेरी लगन की राह में !
ये साजिशों का जाल है,
राजनीति की पनाह में !
तू चल बिना डरे, तेरी वजूद है पुकारती !
आसमां है देखता , ये धरा भी है जानती !!

समाज है ये जल रहा ,
आंसुएं बरस रही
इन आंसुओं की चाह पर,
ये आग भी न बुझ रही !
इस आग को बुझाओ तुम,
हर बुराई को मिटाओ तुम !
जनता है बस ये चाहती ,
अब शक्ति को दिखाओ तुम !!

शायद, समय वो आ गया ,
बादल घना भी छा गया !
सच्चाई से मुख मोड़कर,
है बुराई सबको भा गया !
समाज के ईमान पर है,
उठ रही उंगलियां !
झुकी अगर ईमान आज,
गिरेंगी बस तो बिजलियां !!

जो चाहता उन्नत यहां,
हो शिक्षित सबका जहां !
विकास की गंगा बहे,
एक बूंद भी गिरे जहां !
क्या व्यंग है देखो मगर,
बेड़ियों ने जकड़ा उसे !
अब धरा भी कंपकपाएगी,
एक भूकंप तो जरूर आएगी !!

अपने इस सफर में तू ,
हिम्मत को बना हमसफर तू !
तोड़ दे इन बेड़ियों को,
जला दे जो ये जाल है !
आरती की लौ नहीं ,
तू क्रोध की मशाल है !!

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

अखबारों की नजर से

कृषि अनुसंधान परिषद का 23वाँ स्थापना दिवस समारोह आज

राष्ट्रीय खबर

पटना : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर का 23वाँ स्थापना दिवस संस्थान के नवनियुक्त निदेशक डॉ. अनूप दास के नेतृत्व में आज मनाया जाएगा। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि कृषि विभाग के सचिव डॉ. एन सरवन कुमार एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. रामेश्वर सिंह एवं बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल के कुलपति डॉ बी.एस. महापात्रा उपस्थित रहेंगे। साथ ही, कृषक-वैज्ञानिक संगोष्ठी में दीघा विधानसभा क्षेत्र के विधायक डॉ. संजीव चौरसिया मुख्य अतिथि के रूप में मौजूद रहेंगे। भारत सरकार के आह्वान पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स (मोटा अनाज) वर्ष घोषित किया है, इसको ध्यान में रखते हुए स्थापना दिवस व्याख्यान भी मिलेट्स के महत्त्व एवं उपयोगिता पर डॉ. ए. विलास टोनापी, पूर्व निदेशक, भारतीय कदन्न संस्थान, हैदराबाद द्वारा दिया जाएगा। इस अवसर पर देश के विभिन्न भागों से ख्याति प्राप्त कृषि वैज्ञानिकों के भाग लेंगे।

web : www.rashtriyakhabar.com
epaper.rashtriyakhabar.com

राष्ट्रीय खबर — पटना आस-पास

हर्षोल्लास के साथ मना पूर्वी अनुसंधान परिसर का 23वाँ स्थापना दिवस

सम्मानित हुए कृषि के क्षेत्र उत्कृष्ट कार्य करने वाले किसान व संबंधित अधिकारी

पौधों के हर बदलाव की माप होगी सटीक

कृषि अनुसंधान परिषद में तस्व विज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना

डा. अनूप दास ने पदभार संभाला

दैनिक भास्कर | पटना 23-07-2023

धान परती भूमि प्रबंधन और देसी मवेशियों के संरक्षण पर बिहार में आईसीएआर रिसर्च करेगा

इस साल के रिसर्च प्रोजेक्ट में जलवायु अनुकूल खेती, जैविक व प्राकृतिक खेती भी शामिल रहेगी

भास्कर न्यूज | पटना

पानी की कमी की वजह से बिहार की 1 करोड़ 10 लाख हेक्टेयर भूमि धान की खेती के बाद वियान हो जाती है। इस परती जमीन पर एक साथ कई तरह की फसलों की खेती की जाए और पैदावार बढ़ाई जाए, इसके लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईसीएआर) रिसर्च करेगा। आईसीएआर पूर्वी प्रक्षेत्र ने इस रिसर्च प्रोजेक्ट का नाम धान परती भूमि प्रबंधन नाम दिया है। यानी आने वाले दिनों में सुखाड़ जैसी स्थिति में भी ऐसी जमीन सोना उगलेगा। कृषि वैज्ञानिकों की टीम नालंदा, नवादा, शेखपुरा, औरंगाबाद, जहानाबाद, गया और अरवल में रिसर्च करेंगे। इसमें कौन सी तकनीक अपनाएं, कौन सी वेराइटी लगाएं, इसको लेकर जमीन से लेकर किसानों के साथ काम किया जाएगा। इस काम में बक्सर कृषि विज्ञान केन्द्र, सबौर, राजेन्द्र केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा के कृषि वैज्ञानिक शामिल होंगे। हाल में ही चार दिवसीय रिसर्च काउंसिल की बैठक में इन प्रोजेक्ट को हरी झंडी मिली है। आईसीएआर पूर्वी प्रक्षेत्र के निदेशक डॉ अनूप दास बताते हैं कि परती जमीन में कम पानी में उपजने वाली फसलों पर रिसर्च किया जाएगा। तिलहन, दलहन, सहित कई तरह की फसलें कैसे लगायी जा सकती है। उत्पादन से लेकर उत्पादकता बढ़ाने पर रिसर्च होगा। उन्होंने बताया कि इस साल जल उत्पादकता, जलवायु अनुकूल खेती, जल जीवन हरियाली, जैविक व प्राकृतिक खेती के साथ देसी मवेशियों के संरक्षण पर रिसर्च होगा। देसी मवेशियों में बकरी, गाय, भैंस का रजिस्ट्रेशन से लेकर उन्हें बचाने के लिए रिसर्च होगा। आईसीएआर की शाखा रांची में 55 प्रकार की सब्जियों और फलों पर रिसर्च किया गया है।

जल उत्पादकता प्रबंधन के रिसर्च पर जोर : बिहार पानी का धनी राज्य है, लेकिन पानी का सही तरीके से इस्तेमाल नहीं होने के कारण हम कई फसलों की खेती नहीं कर पाते हैं। मत्स्य, मवेशी, मखाना के सब्जियों की खेती को बढ़ावा देने के लिए रिसर्च होगा। निदेशक ने बताया कि सोलर पावर से एनर्जी वाटर एप्लिकेशन का इस्तेमाल किया जाएगा। इस तकनीक में स्प्रिंकलर से कम खर्च में अधिक से अधिक जमीन पर सिंचाई की जाती है। आईसीएआर राज्य सरकार के साथ जलवायु अनुकूल खेती और जल जीवन हरियाली के लिए एक हजार हेक्टेयर जमीन पर काम कर रहा है।

कोर्ट नोटि

Thursday, 19-10-2023 www.bhandaphor.in

कृषि अनुसंधान परिसर, पटना में तीन दिवसीय प्रशिक्षण का हुआ समापन

आईएआरआई - पटना हब ने अपना यूजी, पीजी और पीएचडी कार्यक्रम शुरू किया

25 यूजी, 2 पीजी और 2 पीएचडी छात्रों के आईएआरआई, पटना हब में शामिल होगी

भाकृअनुप
ICAR

राँची - भास्कर

उपलब्धि - ...

स्वादिष्ट व्यंजन के पीछे किसानों की मेहनत, हम इतना उत्पादन बढ़ाएं कि आयात न करना पड़े : मुंडा

कृषि प्रौद्योगिकी संस्थान परिसर में म्यूजियम बनाने की मांग

अब तक 50 सब्जियों व 5 फलों की उन्नत बीज विकसित की

प्रगतिशील किसान बोले - पलांडू अनुसंधान केंद्र से किसानों को बहुत लाभ

किसानों की वजह से ही हमारा अस्तित्व : अर्जुन

■ पलांडू स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कार्यक्रम में शामिल हुए केंद्रीय कृषि मंत्री अर्जुन मुंडा

■ झारखंड के किसानों को प्राकृतिक और वैज्ञानिक तरीकों से खेती करने की दी सलाह, कहा - इसमें है फायदा

कृषि विज्ञान केंद्र, प्रशासनिक भवन का लोकार्पण, कृषक संगोष्ठी और प्रदर्शनी का आयोजन

450 से अधिक किसानों ने लिया भाग

■ हाईटेक नर्सरी का भी हुआ उद्घाटन

सूखे से जूझ रहे किसानों के लिए मददगार होगी लेवा सिंचाई तकनीक, 15-20 मिनट में दो कट्ठे ज़मीन की पटवन हो जाएगी

भंडाफोड

24X7 ख़बर आपकी, नज़र हमारी।

23 फरवरी 2023 पटना

'टर्मिनल उच्च तापमान' आपकी गेहूं की फसल को प्रभावित कर सकता है, सतर्क रहें

पटना : वर्तमान में, पूर्वी राज्यों में तापमान अचानक बढ़ रहा है, (औसतन दिन का तापमान लगभग 33° से०) जबकि रबी की अच्छी फसल के लिए कुछ और ठंडे दिनों की आवश्यकता है। तापमान में यह वृद्धि और जलवायु में परिवर्तन पौधों की वृद्धि और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कई रबी फसलों, विशेष रूप से गेहूं की उत्पादकता में भारी नुकसान होता है। निदेशक, आईसीएआर-आरसीईआर, पटना फरवरी के महीने की इस मौजूदा स्थिति से बहुत चिंतित हैं और उन्होंने बताया कि तापमान में प्रत्येक 1 डिग्री की वृद्धि से गेहूं का उत्पादन 6-10 % तक कम हो सकता है। इसके अलावा, आने वाले दिनों में भी तापमान और बढ़ने की उम्मीद है। यह लगातार तीसरा वर्ष है जब यह घटना देखी जा रही है। पिछले 4-5 दिनों से सभी पूर्वी राज्यों में तापमान सामान्य से 3-4 डिग्री ज्यादा दर्ज किया जा रहा है। इस वर्ष गेहूँ की फसल की बुवाई और वृद्धि अब तक संतोषजनक रही है, लेकिन गेहूँ और अन्य रबी फसलों की सर्वोत्तम उपज प्राप्त करने के लिए किसानों को अपनी फसलों पर सावधानीपूर्वक नज़र रखनी होगी। ठंडे मौसम की फसलों में बढ़ते तापमान के प्रभाव को कम करने के लिए कुछ प्रभावी रणनीतियाँ अपनाने की आवश्यकता है। उन्होंने बताया कि 0.2% पोटैशियम ऑर्थोफॉस्फेट (KH2PO4) या 0.2 प्रतिशत पोटैशियम नाइट्रेट (KNO3) का उपयोग करने अथवा दोनों को लने में गांठ और शीर्ष निकलने के चरण में पुष्पन के बाद पत्तों पर छिड़काव करने से गेहूं में गर्मी के प्रति सहनशीलता में वृद्धि होगी और एक आदर्श उपज स्तर 35-40 क्विंटल/है० तक प्राप्त करने में सहायक होगी। दोपहर के समय जब हवा शांत होती है, तब सभी ठंडे मौसम वाली फसलों में हल्की सिंचाई की जानी चाहिए ताकि उपज के नुकसान को कम किया जा सके। उन्होंने आगे बताया कि तापमान में अचानक वृद्धि के कारण भूरा रतुआ रोग लगने की सम्भावना है, गेहूं में भूरे रतुआ को नियंत्रित करने के लिए प्रोपिकोनाजोल 25 ई सी 200 लीटर पानी में 15 दिनों के अंतराल पर डालें। मसूर और चना में थायोफनेट मिथाइल 70% डब्लू पी @ 2.0-2.5 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव तापमान में वृद्धि के कारण जड़ सड़न और उकठा रोग को नियंत्रित करने में बहुत प्रभावी पाया गया है। उन्होंने किसानों को फसल संबंधित किसी भी समस्या के निवारण हेतु कृषि विशेषज्ञों, कृषि विज्ञान केंद्रों, कृषि विश्वविद्यालयों और अन्य स्रोतों से भी परामर्श लेने का सुझाव दिया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की बैठक में परियोजनाओं की शोध उपलब्धियां प्रस्तुत की गयी

पटना (आससे)। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना की अनुसंधान परामर्शदात्री समिति की १९वीं बैठक का आयोजन दिनांक १८-१९ मई को डा. के.डी.कोकाटे, पूर्व उपमहानिदेशक (कृषि विस्तार), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली की अध्यक्षता में किया गया। बैठक में समिति के अन्य सदस्यडा. मसूद अली, पूर्व निदेशक, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर, डा. एसडी सिंह, पूर्व सहायक महानिदेशक (मत्स्य विज्ञान), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली, प्रोफेसर के.एन.तिवारी, आईआईटी, खड़गपुर एवं डा. एस.कुमार, पूर्व प्रमुख, भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिषद अनुसंधान केंद्र, रांची मौजूद थे। बैठक में विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष, अनुसंधान केंद्र, रांची, कृषि विज्ञान केंद्र, बक्सर कृषि विज्ञान केंद्र, रामगढ़ एवं मखाना अनुसंधान केंद्र, दरभंगा के प्रमुखों ने भाग लिया और विभिन्न परियोजनाओं की शोध उपलब्धियों को प्रस्तुत किया।

समिति के अध्यक्ष डा. के.डी. कोकाटे ने राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों प्राथमिकताओं के साथ संस्थानों के अनुसंधान कार्यों को संरेखित करने के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने जी-२० बैठक में चर्चा किये गये चार प्रमुख विषयों जैसे खाद्य और पोषण सुरक्षा, किसानों को लाभ देनेवाली टिकाऊ तकनीक को बढ़ावा देने, डिजिटल कृषि और साझेदारी को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। डा. कोकाटे ने संस्थान को अन्य राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थानों और विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर काम करने का सुझाव देते हुए एक सहयोगी दृष्टिकोण का प्रस्ताव रखा। यह सामूहिक प्रयास संस्थान को अत्यावश्यक चुनौतियों से निपटने और इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों की उन्नति में योगदान देने में सक्षम करेगा। समिति के अन्य सदस्यों ने भी अपने-अपने विशेषज्ञता के क्षेत्र में संस्थान के चल रहे और भविष्य में अनुसंधान और विकासात्मक कार्यक्रमों के लिए रचनात्मक इनपुट, उपयोगी सुझाव और मार्गदर्शन दिये। इस अवसर पर डा. कमल शर्मा, सदस्य सचिव, अनुसंधान परामर्शदात्री समिति ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना के निदेशक डा. अनुप दास ने अनुसंधान परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष और सदस्यों का स्वागत किया और संस्थान की अनुसंधान उपलब्धियों, प्रबंधन के मुद्दों के साथ साथ संस्थान द्वारा सामना किये जा रहे समस्याओं के बारे में एक संक्षिप्त प्रस्तुति दी। समिति के अध्यक्ष और सदस्यों ने संस्थान के प्रक्षेत्रों, परीक्षण प्रक्षेत्र और प्रयोगशालाओं का भी दौरा किया, जहां संबंधित प्रभागों के प्रमुखों एवं वैज्ञानिकों ने अनुसंधान प्रगति के बारे में बताया।

भाकृअनुप
ICAR

सराहनीय : स्वच्छ एवं हरित परिसर तथा भोजन की शून्य बर्बादी पहल की शुरुआत

राष्ट्रीय खबर

कृषि सचिव ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद पटना के शोध का किया अवलोकन

कृषि विकास के लिए एक गांव का गोद लें वैज्ञानिक : अग्रवाल

पूर्वी अनुसंधान परिसर का स्थापना दिवस मना जलवायु अनुकूल व प्राकृतिक खेती से मिट्टी की सेहत सुधारें : डॉ सरवन

प्रगतिशील कृषकों को मिला सम्मान

नवीनतम शोध को मूर्त रूप देने हेतु पटना में कृषि वैज्ञानिकों का जमावड़ा

'कम से कम एक पौधा लगाने का संकल्प लें'

(आज समाचार सेवा)

आर्यावर्त
www.liveaaryaavart.com

पटना : किसान दिवस के अवसर पर किसान-वैज्ञानिक-विद्यार्थी संवाद आयोजित

› राष्ट्रीय किसान दिवस समारोह में सामान्य किसान बने मुख्य अतिथि

पटना, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में दिनांक 23 दिसंबर 2023 को बड़े ही उत्साह के साथ राष्ट्रीय किसान दिवस मनाया गया | कार्यक्रम की शुरुआत दीप प्रज्वलन एवं आईसीआर गीत के साथ हुई | इस कार्यक्रम में उपस्थित सामान्य किसानों में से बक्सर के एक वरिष्ठ किसान श्री यमुना यादव जी को कार्यक्रम का मुख्य अतिथि बनाया गया | साथ ही महिला कृषक श्रीमती उषा देवी एवं युवा किसान श्री राजन सिंह को भी विशिष्ट अतिथि के रूप में मंच पर स्थान दिया गया है |

संस्थान के निदेशक डॉ.अनुप दास ने सभी किसानों को संबोधित करते हुए उन्हें राष्ट्रीय किसान दिवस के सुअवसर पर हार्दिक शुभकामनाएं दी | उन्होंने अपने संबोधन में बताया कि किसान हमारे अन्नदाता हैं और हर कोई व्यक्ति जो अन्न का एक दाना भी उपजाता है, वह भी एक किसान है | उन्होंने कहा कि कृषि अनुसंधान, किसान एवं युवाओं को एक साथ मिलकर आगे बढ़ना है, जिससे देश का संपूर्ण विकास हो, साथ ही डॉ. दास ने खाने की बर्बादी को रोकने पर जोर दिया एवं किसानों को समेकित कृषि प्रणाली, जल संरक्षण तकनीक, फसल विविधीकरण आदि तकनीकों को अपनाने की

भंडाफोड
24X7 खबर आपकी, नजर हमारी।

कड़ी मेहनत, ईमानदारी और निष्ठापूर्वक कार्य करें : डॉ. मंगला राय

भंडाफोड
BhandaPhor
24X7 खबर आपकी, नजर हमारी।
05 Jun 2023 Patna

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना ने विश्व पर्यावरण दिवस मनाया

पटना : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में मिशन लाइफ के तहत संस्थान के निदेशक डॉ. अनूप दास की अगुवाई में विश्व पर्यावरण दिवस मनाया गया। इस अवसर पर डॉ. दास ने संस्थान मुख्यालय परिसर में वृक्षारोपण किया एवं कर्मचारियों को संबोधित करते हुए कहा कि आज पूरा विश्व ... सागवान और महोगनी के पौधे वितरित किए गए। किसानों को संबोधित करते हुए कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. मोनोबुल्लाह, प्रधान वैज्ञानिक ने बताया कि पर्यावरण की रक्षा करना हमारी जिम्मेदारी है एवं यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर के आस-पास कम से कम एक वृक्ष लगाने का संकल्प ले, तो निश्चय ही हमारा पर्यावरण

भंडाफोड
24X7 खबर आपकी, नजर हमारी।
07 अक्टूबर 2023, पटना

कृषि अनुसंधान परिषद पटना में चला स्वच्छता महाअभियान

पटना शनिवार 14:10:2023 5

न्यूज फटाफट

कृषि अनुसंधान परिषद में चित्रकला प्रतियोगिता आयोजित

राष्ट्रीय खबर

पटना : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर में विशेष स्वच्छता अभियान 3.0 के अंतर्गत 13 अक्टूबर को बीएमपी 05 उच्च माध्यमिक विद्यालय के कक्षा नवम् एवं दशम् के विद्यार्थियों के लिए स्वच्छ भारत विषय पर चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास के मार्गदर्शन में उक्त प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। डॉ. दास ने सभी विद्यार्थियों को स्वच्छता की महत्ता के बारे में बताया एवं अपने घर के आस-पास साफ-सफाई रखने के लिए प्रेरित किया। प्रतियोगिता में कुल 23 विद्यार्थियों ने भाग लिया और अपनी कला के माध्यम से स्वच्छ भारत निर्माण के संदेश दिये। इस दौरान विद्यार्थियों ने स्वच्छता की शपथ भी ली। विद्यार्थियों के साथ विद्यालय की प्रधानाध्यापिका डॉ. प्रतिभा शर्मा एवं शिक्षकगण आलोक रंजन, कुमारी प्रभा एवं कोमल कुमारी उपस्थित थे। प्रतियोगिता संपन्न होने के बाद पुरस्कार वितरण किया गया। कार्यक्रम को सफल बनाने में स्वच्छता अभियान के नोडल अधिकारी डॉ. संजीव कुमार, प्रमुख, फसल अनुसंधान प्रभाग, डॉ. अमिताभ डे, प्रधान वैज्ञानिक सहित अन्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

हिन्दुस्तान www.livehindustan.com

आईसीएआर पूर्वी अनुसंधान परिषद देश के सात राज्यों में कर रहा अध्ययन

उत्पादन बढ़ाने को सात राज्यों में एकफसली भूमि होगी विकसित

हि एक्सक्लूसिव

गया में अध्ययन शुरू

इन राज्यों में हो रहा अध्ययन

दलहन-तिलहन की खेती है संभव

बिहार में घट रही एकफसली भूमि

नमी बनाए रखने पर जोर

दलहन का रकबा तीन मिलियन हेक्टेयर बढ़ेगा

KRISHAK JAGAT
कृषक जगत

कृषि अनुसंधान परिषद पटना में हिन्दी पखवाड़ा का हुआ समापन

30 सितम्बर 2023, पटनाः कृषि अनुसंधान परिषद पटना में हिन्दी पखवाड़ा का हुआ समापन–भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में गत 29 सितम्बर को हिन्दी पखवाड़ा – 2023 का समापन कार्यक्रम संपन्न हुआ।

समारोह की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास ने की।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
वर्ष 2023 में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

स्थापना दिवस

विश्व जल दिवस

विश्व पर्यावरण दिवस

साप्ताहिक संगोष्ठी

स्वतंत्रता दिवस समारोह

राष्ट्रीय किसान दिवस

धान रोपनी

विश्व खाद्य दिवस

विश्व मृदा दिवस

खेल समारोह

सत्यनिष्ठा शपथ

महत्वपूर्ण बैठक/कार्यशाला/संगोष्ठी

गणमान्य अधिकारियों द्वारा प्रक्षेत्र भ्रमण

स्वच्छता अभियान

नोट

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना–800 014 (बिहार)